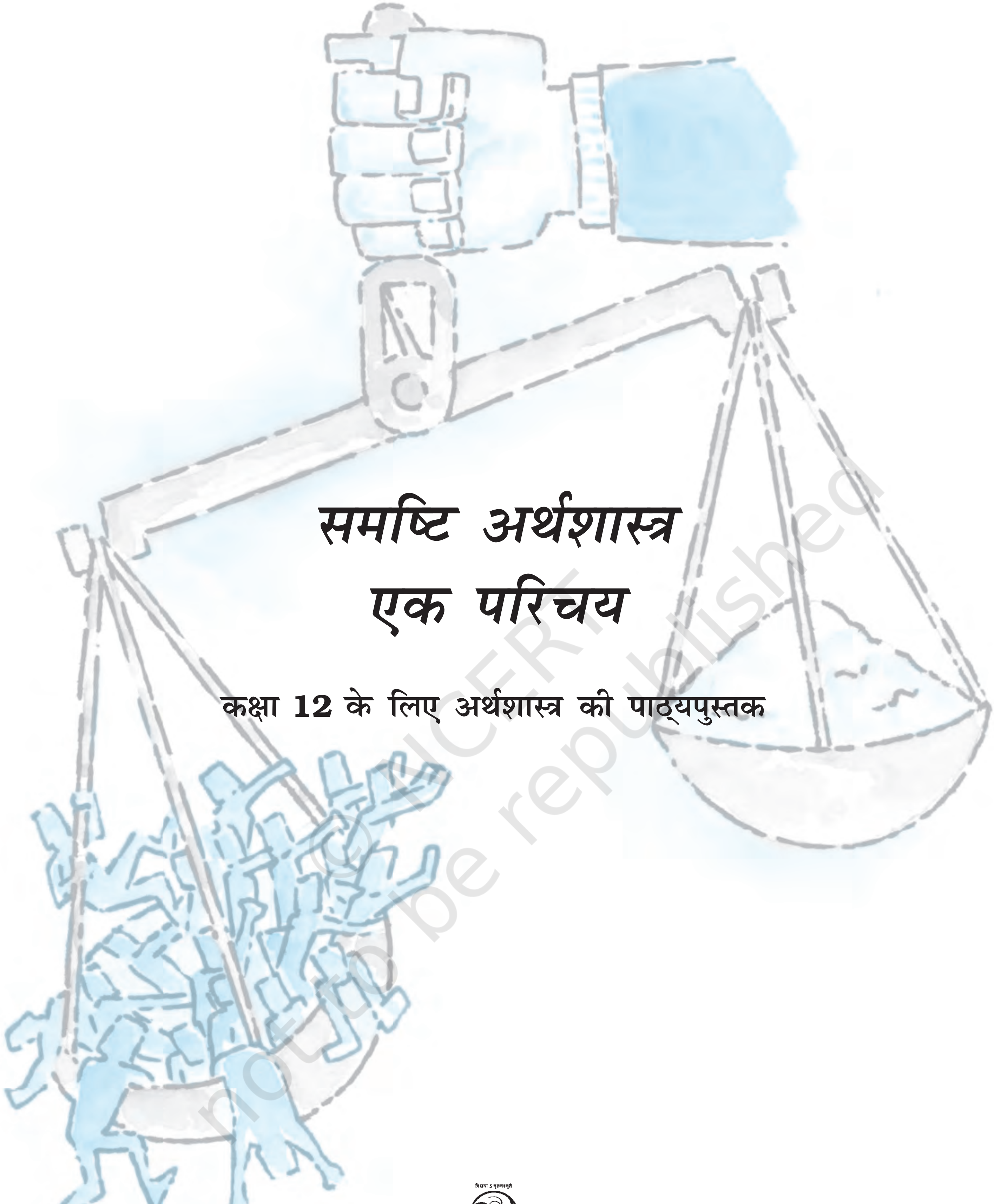

समष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय

कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक

© NCERT
not to be republished

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
मई 2007 वैशाख 1929

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007 कार्तिक 1929
मार्च 2009 फाल्गुन 1930
जनवरी 2010 पौष 1930
जनवरी 2011 पौष 1932
जनवरी 2012 पौष 1933
दिसम्बर 2013 अग्रहायण 1935
जनवरी 2016 पौष 1937
फ़रवरी 2017 माघ 1938
जनवरी 2018 माघ 1939

PD 10T RSP

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007

₹ 65.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा यंग प्रिंटिंग प्रैस, एस-119, साइट-II, हर्षा कम्पाउंड, मोहन नगर इंडस्ट्रियल एरिया, गाज़ियाबाद *(उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।*

ISBN 81-7450-750-7

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : *अरुण चितकारा*
सहायक संपादक : *गोबिंद राम*
उत्पादन सहायक : *सुनील कुमार*

आवरण, सज्जा एवं चित्रांकन
निधि वधवा

कार्टोग्राफ़ी
इरफ़ान

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक विद्यालय और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि विद्यालयों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितनी वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक विद्यालय में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में विचार-विमर्श और ऐसी गतिविधियों को प्राथमिकता देती है जिन्हें करने के लिए व्यावहारिक अनुभवों की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति के अध्यक्ष हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर* और

© NCERT not to be republished

इस पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार तापस मजूमदार, *एमेरिटस प्रोफ़ेसर* की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा मृणाल मीरी, *प्रोफ़ेसर* एवं जी.पी. देशपांडे, *प्रोफ़ेसर* की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

© NCERT
not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

मुख्य सलाहकार

तापस मजूमदार, *एमेरिटस प्रोफ़ेसर,* जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सलाहकार

सतीश जैन, *प्रोफ़ेसर*, आर्थिक नियोजन तथा अध्ययन संस्थान, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सदस्य

देवर्षि दास, *लेक्चरर,* अर्थशास्त्र विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
मालबिका पाल, मिरांडा हाउस, दिल्ली
संमित्रा घोष, सेंट पॉल कॉलेज, सी–19, कोलकाता
सोमयाजीत भट्टाचार्य, किरोरीमल कॉलेज, दिल्ली

सदस्य समन्वयक

जया सिंह, *लेक्चरर*, अर्थशास्त्र, डी.ई.एस.एस., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान देने के लिए शिक्षाविदों तथा विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के प्रति आभार व्यक्त करती है। हम सुब्रतो गुहा, *सहायक प्रोफ़ेसर,* जे.एन.यू. को पूरी पांडुलिपि को आद्योपांत पढ़ने तथा उसमें वांछित परितर्वनों के लिए सुझाव देने हेतु आभार व्यक्त करते हैं। हम सुनील आसरा, प्रबंध विकास संस्थान, गुड़गाँव, हरियाणा को उनके योगदान के लिए धन्यवाद देते हैं। हम अपने सहकर्मियों– नीरजा रश्मि, *रीडर* पाठ्यचर्या समूह; एम.वी. श्रीनिवासन, असीता रविंद्रन, प्रतिमा कुमारी, *लेक्चरर* सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग का उनके द्वारा प्रदत्त सामग्री तथा सुझाव के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

हम स्व. दीपक बैनर्जी, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत) प्रेसीडेंसी कॉलेज, कोलकाता को उनके बेशकीमती सुझावों के लिए सदैव स्मरण रखेंगे। अगर उनका स्वास्थ्य साथ देता तो हम उनके अनुभवों से और भी लाभान्वित होते।

हम इन के प्रति भी आभारी हैं: प्रमोद कुमार झा, *अनुवादक;* श्री कामना नन्द मिश्र, *मुख्य उपसंपादक (पत्रकार),* दैनिक जागरण, नोएडा; रामतप पांडेय, *पूर्व सहायक निदेशक,* वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग; ओ.पी. अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त), मेरठ विश्वविद्यालय; एच.के. गुप्ता, बाबूराम सर्वोदय बाल विद्यालय, शाहदरा, दिल्ली एवं रमेश चन्द्रा, *पूर्व रीडर,* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली।

पुस्तक के विकास में सहयोग के लिए हम सविता सिन्हा, *प्रोफ़ेसर* एवं *विभागाध्यक्ष,* सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने हमें हर संभव सहयोग दिया।

पुस्तक के विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए परिषद् दिनेश कुमार, *प्रभारी,* कंप्यूटर कक्ष, मुक़द्दस आज़म, जय प्रकाश राय, गुरिंदर सिंह तथा अर्चना गुप्ता, *डी.टी.पी. ऑपरेटर;* विनय शंकर पांडेय, सतीश झा एवं अवध किशोर सिंह, *कॉपी एडीटर* तथा बबीता झा, *प्रूफ रीडर* के भी आभारी हैं। प्रकाशन विभाग द्वारा हमें पूर्ण सहयोग एवं सुविधाएँ प्राप्त हुईं, इसके लिए हम उनका भी आभार व्यक्त करते हैं।

इस पाठ्यपुस्तक की समीक्षा ओ.पी.अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त); अर्चना अग्रवाल, *सहायक प्रोफ़ेसर,* हिन्दू कॉलेज; लोकंद्र कुमादत, *सहायक प्रोफ़ेसर,* रामजस कॉलेज, टी.एम. थॉमस, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त), देशबंधु कॉलेज और रश्मि शर्मा, *सहायक प्रोफ़ेसर,* डेल्ही कॉलेज ऑफ़ आर्टस एंड कॉमर्स। इसके योगदान को विधिवत स्वीकार किया गया।

परिषद् तम्पाक्म्यूम अलन मुस्तफ़ा, *जे.पी.एफ़.;* अमजद हुसैन और फरहीन फातिमा, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* का भी आभार व्यक्त करती है, जिन्होंने इस पुस्तक को आकार देने में योगदान दिया है।

© NCERT not to be republished

विषय-सूची

आमुख iii

1. परिचय **1**

1.1 समष्टि अर्थशास्त्र का उद्‌भव 4

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र की वर्तमान पुस्तक का संदर्भ 6

2. राष्ट्रीय आय का लेखांकन **9**

2.1 समष्टि अर्थशास्त्र की कुछ मूलभूत संकल्पनाएँ 9

2.2 आय का वर्तुल प्रवाह और राष्ट्रीय आय गणना की विधि 15

2.2.1 उत्पाद अथवा मूल्यवर्धित विधि 17

2.2.2 व्यय विधि 22

2.2.3 आय विधि 23

2.2.4 साधन लागत, आधारित कीमतें तथा बाज़ार कीमतें 25

2.3 कुछ समष्टि अर्थशास्त्रीय तादात्म्य 26

2.4 मौद्रिक सकल घरेलू और वास्तविक कर 31

2.5 सकल घरेलू उत्पाद और कल्याण 33

3. मुद्रा और बैंकिंग **38**

3.1 मुद्रा के कार्य 38

3.2 मुद्रा की माँग और मुद्रा की पूर्ति 40

3.2.1 मुद्रा की माँग 40

3.2.2 मुद्रा की पूर्ति 40

3.3 बैंकिंग व्यवस्था द्वारा साख सृजन 42

3.3.1 एक काल्पनिक बैंक का चिट्ठा 42

3.3.2 सारा सृजन की सीमाएँ तथा मुद्रा-गुणक 43

3.3 मुद्रा पूर्ति के नियंत्रण के नीतिगत उपकरण 45

4. आय और रोजगार के निर्धारण **56**

4.1 समग्र माँग तथा इसके अवयव 56

4.1.1 उपभोग 57

© NCERT not to be republished

4.2 दो-सेक्टर मॉडल में आय का निर्धारण 59
4.3 लघु अवधि में संतुलन आय का निर्धारण 60
4.3.1 स्थिर कीमत स्तर के साथ समष्टि अर्थशास्त्रीय संतुलन 60
4.3.2 समग्र माँग में परिवर्तन का आय तथा उत्पादन पर प्रभाव 63
4.3.3 गुणक क्रियाविधि 64
4.4 कुछ अन्य संकल्पनाएँ 68

5. सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था 70

5.1 सरकारी बजट-अर्थ तथा इसके अवयव 70
5.1.1 सरकारी बजट के उद्देश्य 70
5.1.2 प्राप्तियों का वर्गीकरण 72
5.1.3 पूँजीगत लेखा 73
5.2 संतुलित, अधिशेष एवं घाटा बजट 75
5.2.1 सरकारी घाटे की माप 76

6. खुली अर्थव्यवस्था – समष्टि अर्थशास्त्र 90

6.1 अदायगी-संतुलन 91
6.1.1 चालू खाता 91
6.1.2 पूँजी खाता 93
6.1.3 अदायगी-संतुलन और घाटा 94
6.2 विदेशी विनिमय बाज़ार 96
6.2.1 विदेशी विनिमय दर 96
6.2.2 विनिमय दर का निर्धारण 97
6.2.3 तिरती और स्थिर विनिमय दर प्रणालियों के गुण और दोष 100
6.2.4 प्रबंधित तिरती 100

शब्दावली 110

© NCERT not to be republished

अध्याय 1

परिचय

व्यष्टि अर्थशास्त्र के मूलभूत अध्ययन से आप अवश्य ही पूर्व परिचित होंगे। इस अध्याय के आरंभ में आपको व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र के बीच अंतर का एक सरलीकृत विवरण प्रस्तुत किया गया, जिससे आप परिचित होंगे।

आप में से जो आगे चलकर उच्चतर अध्ययन में अर्थशास्त्र में विशिष्टता प्राप्त करने का चुनाव करेंगे, वे आज समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन में अर्थशास्त्रियों द्वारा उपयोग किए गए अधिक जटिल विश्लेषणों से अवगत होंगे। किंतु समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के मूल प्रश्न वही रहेंगे। आप पाएँगे कि ये वास्तव में व्यापक आर्थिक प्रश्न हैं, जिनका संबंध सभी नागरिकों से है: क्या संपूर्ण रूप से कीमतें बढ़ेंगी या घटेंगी? क्या संपूर्ण देश में अथवा अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रकों में रोज़गार की दशा बेहतर है अथवा बुरी हालत में? अर्थव्यवस्था अच्छी है अथवा बुरी, इसे प्रदर्शित करने का संकेतक क्या होगा? राज्य कौन-सा कदम उठाएँगे अथवा लोगों की माँग करेंगे जिससे अर्थव्यवस्था की दशा में सुधार हो? ये ऐसे प्रश्न हैं जो हमें देश की पूर्ण रूप से सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के संबंध में विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। समष्टि अर्थशास्त्र में इन प्रश्नों पर जटिलताओं के विभिन्न स्तरों पर विचार किया जाता है।

इस पुस्तक में आपका परिचय समष्टि अर्थशास्त्रीय विश्लेषण के कुछ मूल सिद्धांतों से होगा। जहाँ तक संभव होगा सिद्धांतों का सरल भाषा में वर्णन किया जाएगा। कभी-कभी पाठकों को कुछ कठिनाइयों से परिचय करवाने के लिए प्रारंभिक बीजगणित का प्रयोग किया जाएगा।

यदि हम किसी देश की अर्थव्यवस्था को संपूर्ण रूप से देखें तो हम पाएँगे कि अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं और सेवाओं के निर्गत के स्तरों में एक साथ संचलन की प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के लिए, यदि खाद्यान्न के निर्गत में वृद्धि होती है तो आमतौर पर औद्योगिक वस्तुओं का निर्गत स्तर भी बढ़ता है। औद्योगिक वस्तुओं में भी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्गत में एक साथ वृद्धि या ह्रास की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार से, विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की कीमत में साधारण तथा एक साथ बढ़ने या घटने की प्रवृत्ति होती है। हम भिन्न-भिन्न उत्पादन इकाइयों में रोज़गार के स्तर को भी एक साथ घटते या बढ़ते हुए देख सकते हैं।

यदि किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादन इकाइयों में समस्त निर्गत का स्तर, कीमत स्तर या रोज़गार का स्तर एक-दूसरे से निकट संबंधित हों, तो संपूर्ण

© NCERT not to be republished

अर्थव्यवस्था का विश्लेषण कार्य अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। उपर्युक्त परिवर्तों के संबंध में व्यक्तिगत (असमग्र) स्तर पर विचार करने के बजाय हम अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के एक प्रतिनिधि के रूप में एक वस्तु के बारे में विचार कर सकते हैं। इस प्रतिनिधि वस्तु का उत्पादन स्तर सभी वस्तुओं और सेवाओं के औसत उत्पादन स्तर के अनुकूल होगा। इसी तरह, इस प्रतिनिधि वस्तु का कीमत स्तर अथवा रोज़गार स्तर अर्थव्यवस्था के सामान्य कीमत और रोज़गार स्तर को प्रतिबिंबित करेगा।

समष्टि अर्थशास्त्र में हमने सामान्यतः इस विश्लेषण को सरलीकृत किया है कि एकल काल्पनिक वस्तु पर ध्यान केंद्रित करने पर कैसे देश का **कुल उत्पादन** तथा रोज़गार के स्तर का संबंध उन विशेषताओं (जिन्हें परिवर्ती कहते हैं) जैसे- कीमत, ब्याज दर, मज़दूरी दर, लाभ, इत्यादि से है तथा इससे क्या होता है। हम इसे सरलीकृत करने में सक्षम हैं और इस तरह उपयोगी तरीके से अध्ययन के द्वारा उसका सार प्राप्त करते हैं कि उन अधिसंख्य वास्तविक वस्तुओं के साथ क्या होता है, जो बाज़ार में खरीदी और बेची जाती हैं। क्योंकि सामान्यतः हम देखते हैं कि जो कीमत, ब्याज, मज़दूरी तथा लाभ, इत्यादि के साथ होता है, कमोबेश वही दूसरी वस्तुओं के साथ भी होता है। खासतौर से जब इन गुणों में तेजी से बदलाव आना शुरू हो जाता है, उसी तरह जैसे कि कीमतें बढ़ती हैं। (जिसे मुद्रास्फीति कहा जाता है) या रोज़गार तथा उत्पादन स्तर गिरते जाते हैं (जिसे मंदी कहा जाता है), इन परिवर्तों के संचालन की सामान्य दिशा, सभी व्यक्तिगत वस्तुओं के लिए सामान्यतः उसी प्रकार होती है, जैसे कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था के लिए समस्त रूप से दिखलाई पड़ती है।

हम नीचे देखेंगे कि कभी-कभी हम इस उपयोगी सरलीकरण से विचलन की ओर भी जायेंगे, जब हम यह अनुभव करेंगे कि देश की अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से विभिन्न क्षेत्रकों से मिलकर बनती प्रतीत होती है। कुछ निश्चित उद्देश्यों के लिए अर्थव्यवस्था के दो क्षेत्रकों (उदाहरण के लिए, कृषि या उद्योग) की अंतर्निर्भरता (यह यहाँ तक कि कीमतों के बीच प्रतिद्वंद्विता) या क्षेत्रकों के बीच संबंध (जैसाकि एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में पारिवारिक क्षेत्रक, व्यापारिक क्षेत्रक और सरकार) एक अर्थव्यवस्था को पूर्ण रूप से देखने की अपेक्षा उसे देश के अर्थव्यवस्था की कुछ चीज़ों को और अच्छी तरह से समझने में सहायता मिलती है।

विभिन्न वस्तुओं को छोड़कर प्रतिनिधि वस्तु पर ध्यान केंद्रित करना सुविधाजनक हो सकता है, लेकिन इस प्रक्रिया में किसी वस्तु विशेष के विशिष्ट गुणों की उपेक्षा हो सकती है। उदाहरणार्थ- कृषि और औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन की दशाएँ बिल्कुल भिन्न प्रकृति की होती हैं अथवा यदि सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए एक श्रमिक प्रतिनिधि कोटि को लें, तो हम किसी फर्म के प्रबंधक और लेखाकार के श्रम के बीच भेद नहीं कर पाएँगे। अतः कई मामलों में वस्तु (श्रम अथवा उत्पादन तकनीक) की एकल प्रतिनिधि कोटि के स्थान पर हम विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ ले सकते हैं। उदाहरण के लिए अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उत्पादित सभी प्रकार की वस्तुओं के लिए, प्रतिनिधि के रूप में तीन सामान्य प्रकार की वस्तुएँ ली जा सकती हैं: कृषि वस्तुएँ, औद्योगिक वस्तुएँ और सेवाएँ। इन वस्तुओं की उत्पादन तकनीक और कीमत में अंतर हो सकता है। समष्टि अर्थशास्त्र में यह भी विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है कि विभिन्न वस्तुओं का व्यक्तिगत निर्गत स्तर, कीमतें, रोज़गार का स्तर आदि का निर्धारण कैसे किया जाता है।

यहाँ की गई इस चर्चा और व्यष्टि अर्थशास्त्र के अपने पूर्व अध्ययन से शायद आपको यह समझ में आ गया होगा कि समष्टि अर्थशास्त्र, व्यष्टि अर्थशास्त्र से किस प्रकार भिन्न है। संक्षिप्त सार के रूप में देखें तो व्यष्टि अर्थशास्त्र में आपको "वैयक्तिक आर्थिक एजेंट" (बॉक्स देखिए)

© NCERT not to be republished

और प्रेरणाओं, जिनसे वे चालित होते हैं, की प्रकृति का उल्लेख मिलता है। ये "व्यष्टि" (जिसका अर्थ "छोटा" है) एजेंट हैं अर्थात् उपभोक्ता जो अपनी रुचि और आय के अनुरूप क्रय करने के लिए वस्तुओं के इष्टतम संयोग का चयन करते हैं; उत्पादक जो अपने उत्पादित वस्तुओं से अधिकतम लाभ अर्जित करने के लिए अपनी लागत को कम से कम रखता है और वस्तुओं को बाज़ार में ऊँची से ऊँची कीमत पर बेचता है। दूसरे शब्दों में, व्यष्टि अर्थशास्त्र माँग और पूर्ति के व्यक्तिगत बाज़ारों का अध्ययन है जिसमें "आर्थिक भूमिका निभाने वाला" अथवा निर्णयकर्ता भी व्यक्ति होते हैं (क्रेता या विक्रेता कंपनियाँ भी), जो अपने लाभों को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं (उत्पादक अथवा विक्रेता) और उनके व्यक्तिगत संतुष्टि अथवा कल्याण स्तर (उपभोक्ता के रूप में) पर बड़ी कंपनी भी इस अर्थ में "व्यष्टि" ही है कि उसे अपने शेयर धारकों के हितों में कार्य करना पड़ता है जो कि संपूर्ण देश के हित के लिए नहीं होता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र के लिए "मैक्रो" का तात्पर्य "बड़ा" संपूर्ण देश को प्रभावित करता है जैसे मुद्रा स्फीति अथवा बेरोज़गारी का उल्लेख नहीं हैं या फिर मान लिया गया है। ये ऐसे परिवर्त नहीं हैं कि वैयक्तिक क्रेता अथवा विक्रेता बदल सकते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र, समष्टि अर्थशास्त्र के निकट तब आया, जब उसे सामान्य संतुलन यानी माँग तथा पूर्ति का संतुलन अर्थशास्त्र के प्रत्येक बाज़ार में दिखलाई पड़ा।

समष्टि अर्थशास्त्र में संपूर्ण अर्थव्यवस्था की स्थितियों को संबोधित करने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने भी यह सलाह दी है कि यदि प्रत्येक बाज़ार में क्रेता और विक्रेता अपने निजी हित को ध्यान में रखकर ही निर्णय लेंगे तो अर्थशास्त्रियों को संपूर्ण देश के धन और कल्याण के बारे में अलग से विचार करने की आवश्यकता नहीं होगी। किंतु, अर्थशास्त्रियों ने कालक्रम में यह अन्वेषण किया कि उन्हें आगे देखना होगा।

एडम स्मिथ को आधुनिक अर्थशास्त्र के जनक के रूप में जाना जाता है। (उस समय यह विषय राजनीतिक अर्थशास्त्र के रूप में जाना जाता था)। वे स्कॉटलैंड के निवासी थे एवं ग्लासगो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। उन्हें दार्शनिक शास्त्र में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ था। उनकी प्रकाशित पुस्तक 'एन इन्क्वायरी इन्टू द नेचर एंड काउज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशंस' (1776) विषय की मुख्य व्याख्यात्मक पुस्तक के रूप में जाना जाता है। पुस्तक के अनुच्छेद से ''कसाई, किण्वक एवं नानबाई के परोपकारिता की भावना से हम भोजन की उम्मीद नहीं करते हैं। बल्कि वे भी स्वयं को स्वार्थ की पूर्ति के लिए ऐसा करते हैं। हम अपनी जरूरतों की बात करते हैं न कि मानवता की। यहाँ तक कि उनके स्व प्रेम और उनकी आवश्यकता के लिए भी चर्चा नहीं करते लेकिन उनकी सुविधा के लिये स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था की वकालत जरूर करते हैं।'' स्मिथ से पहले फ्रांस के फिजियोक्रेट्स राजनीतिक अर्थशास्त्र के महान विचारक थे।

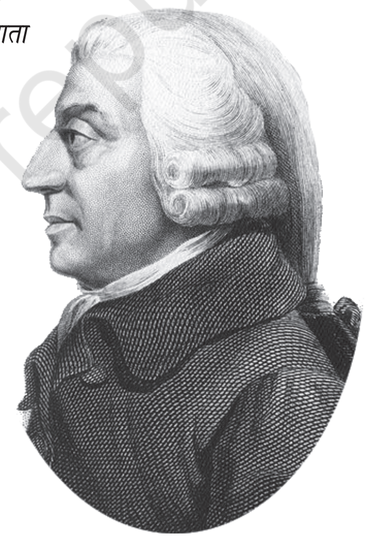

एडम स्मिथ

अर्थशास्त्रियों ने पाया कि प्रथम, कुछ मामलों में बाज़ार विद्यमान नहीं रहता है, द्वितीय कुछ अन्य मामलों में बाज़ार विद्यमान रहता है किंतु संतुलन माँग और पूर्ति का उत्पादन करने में असमर्थ रहता है। तृतीय जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, अधिकांश स्थितियों में समाज (अथवा राज्य अथवा समस्त जनता को) कुछ महत्त्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निःस्वार्थ रूप से (रोज़गार, प्रशासन, प्रतिरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में) कार्य करने का निर्णय लेना पड़ता है जिनके

© NCERT not to be republished

लिए वैयक्तिक आर्थिक एजेंटों के द्वारा लिए गए व्यष्टि अर्थशास्त्रीय निर्णयों के कुछ समस्त प्रभावों में परिवर्तन करना पड़ता है। इन उद्देश्यों के लिए समष्टि अर्थशास्त्र के विद्वानों को करारोपन और अन्य बजट नीतियों और मुद्रा पूर्ति में बदलाव लाने वाली नीतियों, ब्याज दर, मज़दूरी, रोज़गार और निर्गत का बाज़ार में पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना पड़ता है। अतः समष्टि अर्थशास्त्र का मूल व्यष्टि अर्थशास्त्र में होता है। क्योंकि इसमें बाज़ार में माँग और पूर्ति की शक्तियों के समस्त प्रभावों का अध्ययन करना पड़ता है। यदि आवश्यक हुआ तो इन शक्तियों के परिवर्तन के लिए लक्षित नीतियों का भी प्रयोग करना पड़ता है। यह बाज़ार के बाहर समाज की रुचि का अनुकरण करने के लिए होता है। भारत जैसे विकासशील देश में इस प्रकार के चुनाव बेरोज़गारी को दूर अथवा कम करने के लिए, सभी नागरिकों के लिए शिक्षा और प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध कराने, सुशासन प्रदान करने, देश को समुचित प्रतिरक्षा आदि प्रदान करने के लिए इस प्रकार का चयन करना पड़ता है। समष्टि अर्थशास्त्र की दो सामान्य विशेषताएँ हैं, जो उपर्युक्त सूची की स्थितियों में प्रयोग करना स्पष्ट है। संक्षेप में, इनका उल्लेख नीचे किया गया है।

प्रथम, समष्टि अर्थशास्त्र में निर्णयकर्ता अथवा ("आर्थिक भूमिका अदा करने वाले") कौन होते हैं? समष्टि अर्थशास्त्रीय नीतियों का अनुपालन राज्य स्वयं अथवा वैधानिक निकाय जैसे भारतीय रिज़र्व बैंक, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड और इसी प्रकार की संस्था करते हैं। विधि अथवा भारत के संविधान में जैसाकि परिभाषित की गई है कि ऐसे प्रत्येक निकाय को एक अथवा अधिक सार्वजनिक लक्ष्य का अनुपालन करना होगा। ये लक्ष्य उन वैयक्तिक, आर्थिक एजेंटों के लक्ष्य नहीं हैं जो निजी लाभ अथवा कल्याण को अधिकतम करना चाहते हैं। अतः समष्टि अर्थशास्त्र के एजेंट मूल रूप से वैयक्तिक निर्णयकर्ताओं से अलग होते हैं।

द्वितीय; समष्टि अर्थशास्त्र के निर्णयकर्ता क्या करने का प्रयास करते हैं? स्पष्टतः उनको आर्थिक उद्देश्यों के बाहर जाना पड़ता है और जिन सार्वजनिक आवश्यकताओं की चर्चा हमने ऊपर की है, उनके लिए आर्थिक संसाधनों का परिनियोजन करने का निर्णय लेना पड़ता है। इस प्रकार के क्रियाकलाप का लक्ष्य व्यक्ति के निजी हित के लिए नहीं होता है। इनका अनुपालन संपूर्ण देश और उसकी जनता के कल्याण के लिए किया जाता है।

आर्थिक एजेंट

आर्थिक इकाई अथवा आर्थिक एजेंट से हमारा तात्पर्य उन व्यक्तियों अथवा संस्थाओं से है, जो आर्थिक निर्णय लेते हैं। वे उपभोक्ता हो सकते हैं जो यह निर्णय लेते हैं कि क्या और कितना उपभोग करना है। वे वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादक भी हो सकते हैं जो यह निर्णय लेते हैं कि क्या उत्पादन करना है और कितना करना है। वे सरकार, निगम, बैंक जैसी संस्थाएँ भी हो सकती हैं जो विभिन्न प्रकार के आर्थिक निर्णय लेते हैं, जैसे कितना खर्च करना है, साख पर कितना ब्याज दर लेना है, कितना कर लगाना है।

1.1 समष्टि अर्थशास्त्र का उद्‌भव

समष्टि अर्थशास्त्र का एक अलग शाखा के रूप में उद्‌भव ब्रिटिश अर्थशास्त्री **जॉन मेनार्ड कीन्स** की प्रसिद्ध पुस्तक द *जनरल थ्योरी ऑफ इम्प्लॉयमेन्ट, इन्टरेस्ट एंड मनी* के 1936 ई. में प्रकाशित होने के बाद हुआ। कीन्स से पहले अर्थशास्त्र में इस चिंतन का प्राबल्य था कि सारे श्रमिक जो काम करने के इच्छुक हैं, उन्हें काम मिलेगा और सारे कारखाने अपनी पूर्ण क्षमता के साथ कार्य करते रहेंगे। विचारों के इस संप्रदाय को क्लासिकी परंपरा के रूप में जाना जाता है।

© NCERT not to be republished

ब्रिटिश अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स का जन्म 1883 में हुआ था। उनकी शिक्षा किंग्स कॉलेज, कैंब्रिज यूनाइटेड किंगडम में हुई थी और बाद में 'विशेषज्ञ' के रूप में नियुक्त हुए। प्रथम विश्व युद्ध के वर्षों में वे तीक्ष्ण विद्वता के अलावा सक्रिय अंतर्राष्ट्रीय राजनायिक के रूप में भी जुड़े रहे। अपनी पुस्तक 'इकोनॉमिक कंसीक्वेसेज ऑफ द पीस' (1919) में युद्ध की शांति समझौते के भंग होने की भविष्याणी इन्होंने कर दी थी। उनकी पुस्तक 'जनरल थ्योरी ऑफ इंप्लायमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी' (1936) बीसवीं सदी की अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है। कीन्स विदेशी मुद्रा के समझदार सट्टेबाज थे।

जॉन मेनार्ड कीन्स

किंतु, 1929 की **महामंदी** और उसके बाद के वर्षों में देखा गया कि यूरोप और उत्तरी अमरीका के देशों में निर्गत और रोज़गार के स्तरों में भारी गिरावट आयी। इसका प्रभाव दुनिया के अन्य देशों पर भी पड़ा। बाज़ार में वस्तुओं की माँग कम थी और कई कारखाने बेकार पड़े थे, श्रमिकों को काम से निकाल दिया गया था। संयुक्त राज्य अमरीका में 1929 से 1933 तक **बेरोज़गारी की दर** 3 प्रतिशत से बढ़कर 25 प्रतिशत (बेरोज़गारी की दर की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि लोगों की संख्या जो काम करने के इच्छुक हैं किंतु काम नहीं करते हैं, में लोगों की कुल संख्या जो काम करने के इच्छुक हैं और काम करते हैं, से भाग देकर जो भागफल प्राप्त होता है, उस रूप में प्राप्त की जाती है)। उस अवधि के दौरान संयुक्त राज्य अमरीका में समस्त निर्गत में लगभग 33 प्रतिशत की गिरावट आयी। इन घटनाओं ने अर्थशास्त्रियों को नये तरीके से अर्थव्यवस्था के प्रकार्य के संबंध में सोचने को प्रेरित किया। यह सच है कि

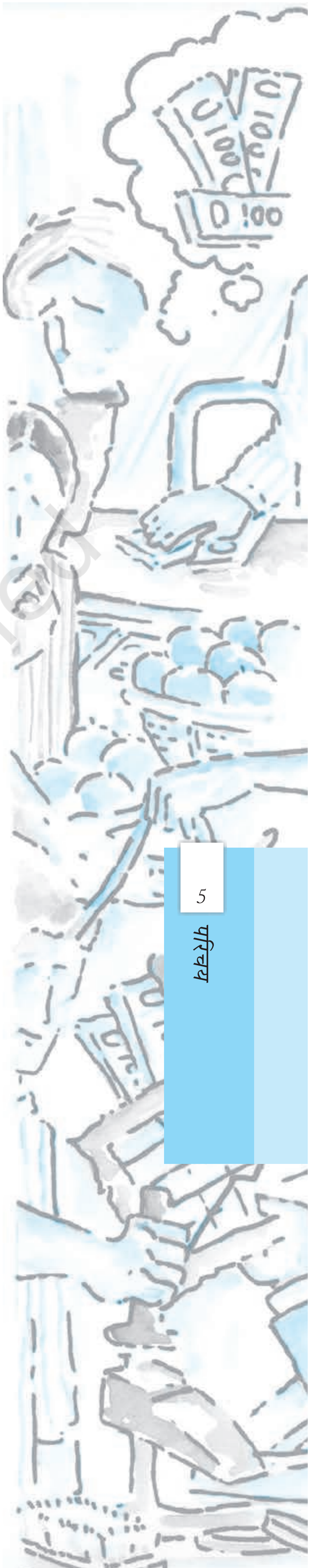

© NCERT not to be republished

जिस अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी लंबी अवधि तक विद्यमान होगी, वहाँ एक सिद्धांत की प्रस्तुति और उसकी व्याख्या की आवश्यकता होगी। कीन्स की पुस्तक इस दिशा में एक प्रयास साबित हुई। अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत उनका दृष्टिकोण अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली तथा विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर-निर्भरता का परीक्षण करना था। समष्टि अर्थशास्त्र जैसे विषय का उद्‌भव हुआ।

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र की वर्तमान पुस्तक का संदर्भ

हम जानते हैं कि अध्ययन के अंतर्गत इस विषय का एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ है। हम इस पुस्तक में **पूँजीवादी देश** की अर्थव्यवस्था के कार्य का परीक्षण करेंगे। पूँजीवादी देश में उत्पादन क्रियाकलाप मुख्य रूप से पूँजीवादी उद्यमियों के द्वारा किये जाते हैं। किसी विशिष्ट पूँजीवादी उद्यम में एक या अनेक **उद्यमी** (उद्यमी ऐसे लोग हैं जो बड़े निर्णयों के नियंत्रण का कार्य करते हैं तथा फर्म या उद्यम के साथ जुड़े बड़े जोखिम का वहन करते हैं) होते हैं। वे उद्यम को चलाने के लिए स्वयं पूँजी की पूर्ति करते हैं या वे पूँजी उधार लेते हैं। उत्पादन के संचालन के लिए उन्हें **प्राकृतिक संसाधनों** की भी आवश्यकता पड़ती है। इनमें कुछ संसाधनों का उपयोग उत्पादन की प्रक्रिया में होता है (जैसे-कच्चे माल) तथा कुछ तो स्थायी पूँजी के रूप में रहता है (जैसे-भूखंड)। उत्पादन के संचालन के लिए उन्हें मानव श्रम के महत्त्वपूर्ण अंश की आवश्यकता होती है, जिसे हम **श्रम** के रूप में सूचित करेंगे। इन तीन प्रकार के उत्पादन के कारकों, जैसे–पूँजी, भूमि, श्रम की सहायता से निर्गत का उत्पादन करने के बाद उद्यमी उत्पाद को बाज़ार में बेचते हैं। इससे प्राप्त मुद्रा को संप्राप्ति कहते हैं। इस संप्राप्ति का कुछ अंश भूमि को उसके उपयोग के लिए अधिशेष के रूप में प्रदान किया जाता है, इसी प्रकार कुछ अंश पूँजी की ब्याज के रूप में तथा कुछ श्रम की मज़दूरी के रूप में प्रदान किया जाता है। शेष संप्राप्ति को उद्यमी की आय कहते हैं जो लाभ कहलाता है। इस लाभ का उपयोग उत्पादक आगे नयी मशीन खरीदने अथवा नये कारखाने लगाने के लिए करते हैं ताकि उत्पादन का विस्तार हो। उत्पादन क्षमता में वृद्धि लाने के लिए जो व्यय किया जाता है, उसे **निवेश व्यय** कहते हैं।

संक्षेप में, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है– वह अर्थव्यवस्था जिसमें अधिकांश आर्थिक क्रियाकलापों के निम्नलिखित अभिलक्षण हों– (अ) उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है (ब) बाज़ार में निर्गत को बेचने के लिए ही उत्पादन किया जाता है (स) श्रमिकों की सेवाओं का क्रय-विक्रय एक निश्चित कीमत पर होता है, जिसे मज़दूरी की दर कहते हैं (श्रम का क्रय-विक्रय जिस दर पर किया जाता है, उसे **श्रमिक की मज़दूरी दर** कहते हैं)।

यदि हम उपरोक्त तीन मानदंडों को विश्व के देशों के संदर्भ में लागू करें तो हम पायेंगे कि पूँजीवादी देश पिछले तीन से चार सौ वर्ष के दौरान अस्तित्व में आए। इसके अतिरिक्त वर्तमान में भी उत्तरी अमरीका, यूरोप और एशिया के कुछ ही देश पूँजीवादी देशों की श्रेणी में आएँगे। कई अल्पविकसित देशों में (खास करके कृषि में) उत्पादन का कार्य किसान परिवारों के द्वारा किया जाता है। मज़दूरी श्रम का प्रयोग कभी-कभार होता है और अधिकतर श्रम कार्य परिवार के सदस्य स्वयं करते हैं। उत्पादन केवल बाज़ार के लिए नहीं होता है, उत्पादन का एक बड़ा अंश परिवार के द्वारा उपभोग में लाया जाता है। प्रायः किसानों के पूँजी स्टॉक में कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं होती है। अधिसंख्य आदिवासी समाज में भूमि का स्वामित्व नहीं होता है। भूमि का स्वामित्व समस्त जनजाती के पास हो सकता है। हमने इस पुस्तक में जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह ऐसे समाजों

not to be republished © NCERT

पर लागू नहीं होता है। किंतु यह सच है कि अनेक विकासशील देशों में जो उत्पादन की इकाइयाँ मौजूद हैं, वह पूँजीवादी सिद्धांतों के अनुरूप हैं। इस पुस्तक में उत्पादन इकाइयों को **फर्म** कहा गया है। किसी फर्म के कारोबार के संचालन का दायित्व उद्यमियों के ऊपर होता है। उद्यमी ही बाज़ार से श्रमिकों को किराये पर लाकर अपने उत्पादन प्रक्रम में नियोजित करता है। इसी प्रकार वह भूमि एवं पूँजी का भी नियोजन करता है। इन आगतों के नियोजन के उपरांत उद्यमी उत्पादन प्रक्रिया का संचालन करता है। उनका उद्देश्य वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन कर (जिसे **निर्गत** कहा जाता है) बाज़ार में उनको बेचना और उससे लाभ प्राप्त करना होता है। इस प्रक्रिया में उसे जोखिम एवं अनिश्चितता का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, वह जिन वस्तुओं का उत्पादन करता है, वह ऊँची कीमत पर नहीं बिक पाती हैं। इससे उद्यमी के लाभ में कमी होती है। ध्यान देने की बात है कि पूँजीवादी देशों में उत्पादन के कारक अपनी आय का सृजन उत्पादन की प्रक्रिया एवं उससे प्राप्त निर्गत को बाज़ार में बेचकर करते हैं।

विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों में निजी पूँजीवादी क्षेत्र के अलावा राज्य में उसके अनुरूप एक संस्था होती है। राज्य की भूमिका कानून बनाने, उसे लागू करने और न्याय दिलाने में होती है। कई ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ राज्य उत्पादन का कार्य भी करता है– कर लगाने और सार्वजनिक आधारभूत संरचनाओं के निर्माण पर व्यय करने के अतिरिक्त राज्य के द्वारा स्कूल–कॉलेज भी चलाए जाते हैं तथा स्वास्थ्य सेवा भी प्रदान की जाती है। जब हम किसी देश की अर्थव्यवस्था का वर्णन करें, तो राज्य के इन आर्थिक प्रकार्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। राज्य को सूचित करने के लिए सुविधा की दृष्टि से हम आगे **सरकार** शब्द का प्रयोग करेंगे।

किसी अर्थव्यवस्था में फर्म और सरकार के अतिरिक्त दूसरा जो बड़ा क्षेत्र होता है, उसे **पारिवारिक** क्षेत्रक कहते हैं। यहाँ परिवार से हमारा तात्पर्य एकल व्यक्तिगत उपभोक्ता, जो अपने उपभोग से संबंधित निर्णय अथवा कई व्यक्तियों के समूह जिसके उपभोग संबंधित निर्णय संयुक्त रूप से लिए जाते हैं, से है। परिवार भी बचत करते हैं और कर अदा करते हैं। उन्हें इन क्रियाकलापों के लिए पैसे कैसे मिलते हैं? हम जानते हैं कि परिवार में कई लोग होते हैं। ये लोग फर्मों में श्रमिकों के रूप में काम करते हैं और मज़दूरी प्राप्त करते हैं। वे सरकारी विभागों में काम करते हैं और वेतन प्राप्त करते हैं। अथवा वे फर्मों के स्वामी भी हो सकते हैं जो लाभ कमाते हैं। फर्मों के उत्पादों की जिस बाज़ार में बिक्री होती है, वह सचमुच परिवार की माँग के बिना कार्य कर ही नहीं सकता है। इसके अलावा, वे भूमि को पट्टे पर देकर अथवा पूँजी को उधार देकर भी ब्याज कमा सकते हैं।

अभी तक हमने देशीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख घटकों का उल्लेख किया है। लेकिन विश्व के सारे देश बाह्य व्यापार भी करते हैं। बाह्य क्षेत्र, हमारे अध्ययन का चौथा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। बाह्य क्षेत्र से व्यापार तीन प्रकार से हो सकता है:

1. जब कोई देश अपनी घरेलू वस्तु विश्व के अन्य देशों में बेचते हैं, तो उसे **निर्यात** कहते हैं।
2. कोई देश जब विश्व के अन्य देशों से वस्तुएँ खरीदता है, तो उसे **आयात** कहते हैं। आयात और निर्यात के आलावा दूसरी तरह से भी विश्व के अन्य देश किसी देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं।
3. किसी देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी पूँजी का भी प्रवाह हो सकता है अथवा कोई देश विदेशों में भी पूँजी का निर्यात कर सकता है।

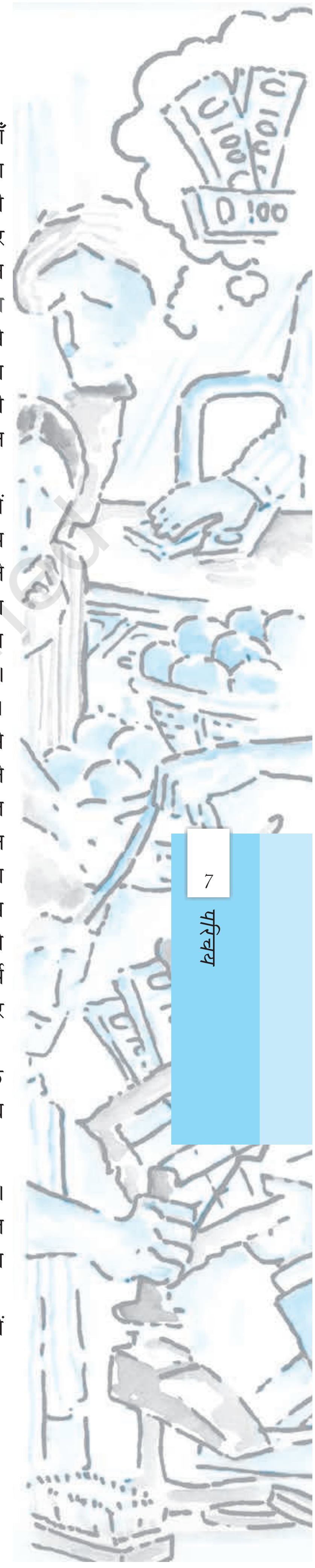

© NCERT not to be republished

सारांश

समष्टि अर्थशास्त्र में किसी अर्थव्यवस्था के समस्त आर्थिक परिवर्तों पर विचार किया जाता है। इसमें उन विविध अंतर-सहलग्नताओं की भी चर्चा है जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों में विद्यमान रहती हैं। इन्हीं कारणों से यह व्यष्टि अर्थशास्त्र से भिन्न होता है; जिसमें किसी अर्थव्यवस्था के खास क्षेत्रक में कार्यप्रणाली का परीक्षण किया जाता है और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रकों को एक समान मान लिया जाता है। समष्टि अर्थशास्त्र का उद्‌भव एक पृथक विषय के रूप में 1930 में कीन्स के कारण हुआ। महामंदी से विकसित देशों को गहरा धक्का लगा और कीन्स को अपनी पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिली। इस पुस्तक में हम प्राय: पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का ही अध्ययन करेंगे। अत: इसमें विकासशील देशों की कार्यप्रणाली को पूर्ण रूप से शामिल करना संभव नहीं होगा। समष्टि अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था को परिवार, फर्म, सरकार और बाह्य क्षेत्रक इन चार क्षेत्रकों के संयोग के रूप में देखा जाता है।

मूल संकल्पनाएँ

ब्याज की दर	मज़दूरी दर
लाभ	आर्थिक एजेंट या इकाइयाँ
महामंदी	बेरोज़गारी की दर
उत्पादन के चार कारक	उत्पादन के साधन
आगत	भूमि
श्रम	पूँजी
उद्यमवृत्ति	निवेश व्यय
मज़दूरी श्रम	पूँजीवादी देश अथवा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था
फर्म	पूँजीवादी फर्म
निर्गत	परिवार
सरकार	बाह्य क्षेत्रक
निर्यात	आयात

अभ्यास

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र में क्या अंतर है?
2. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ क्या हैं?
3. समष्टि अर्थशास्त्र की दृष्टि से अर्थव्यवस्था के चार प्रमुख क्षेत्रकों का वर्णन करें।
4. 1929 की महामंदी का वर्णन करें।

सुझावात्मक पठन

भादुड़ी, ए., 1990, *मेक्रोइकोनॉमिक्स: द डायनॉमिक्स ऑफ कॉमोडिटी प्रोडक्शन,* पृष्ठ 1-27, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली।

मनकीव, एन. जी., 2000, *मेक्रोइकोनॉमिक्स,* पृष्ठ 2-14, मैकमिलन वर्थ पब्लिशर्स, न्यूयार्क।

© NCERT not to be republished

अध्याय 2

राष्ट्रीय आय का लेखांकन

इस अध्याय में हम एक सरल अर्थव्यवस्था की मूल कार्यपद्धति का परिचय प्राप्त करेंगे। इस अध्याय के खंड 2.1 में हमने कुछ प्रारंभिक विचारों का उल्लेख किया है, जिसके साथ हम कार्य करेंगे। अध्याय के खंड 2.2 में हमने वर्तुल पथ पर अर्थव्यवस्था के क्षेत्रकों से गुजरने वाली संपूर्ण अर्थव्यवस्था की समस्त आय का हम कैसे आकलन कर सकते हैं, इसका वर्णन किया है। इसी खंड में राष्ट्रीय आय की गणना की तीन विधियों का भी उल्लेख है; नामत: उत्पाद विधि, व्यय विधि एवं आय विधि। अंतिम खंड 2.3 में राष्ट्रीय आय की विविध उपकोटियों का वर्णन है। इसमें विभिन्न कीमत सूचकांकों जैसे–सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक, उपभोक्ता कीमत सूचकांक, थोक कीमत सूचकांकों की परिभाषा दी गई है और किसी देश के समस्त कल्याण के सूचक के रूप में उस देश के सकल घरेलू उत्पाद को लेने में जो समस्याएँ आती हैं, उन पर चर्चा की गई है।

2.1 समष्टि अर्थशास्त्र की कुछ मूलभूत संकल्पनाएँ

आधुनिक अर्थशास्त्र को एक विषय के रूप में स्थापित करने वाले अर्थशास्त्रियों में अग्रणी एडम स्मिथ ने अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति को 'एन इनक्वायरी इंटू द नेचर एंड काउजेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशंस' का नाम दिया। किसी राष्ट्र की आर्थिक संपत्ति का सृजन कैसे होता है? देश अमीर अथवा गरीब कैसे बनते हैं? ये अर्थशास्त्र के कुछ केंद्रीय प्रश्न हैं? ऐसा नहीं है कि जिन देशों को खनिज अथवा वन अथवा अधिक उपजाऊ भूमि जैसी प्राकृतिक संपदा उपहार स्वरूप प्रकृति से प्राप्त हुई है, वे देश प्राकृतिक रूप से सबसे धनी हैं। वास्तव में संसाधन संपन्न अफ्रीका और लैटिन अमरीका विश्व के सबसे गरीब देश हैं, जबकि अनेक समृद्ध देशों के पास कोई प्राकृतिक संपदा नहीं है। एक समय था, जब प्राकृतिक संसाधनों के कब्जे को सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता था, लेकिन तब भी उत्पादन प्रक्रम के द्वारा संसाधन का रूपांतरण होता था।

आर्थिक संपत्ति अथवा किसी देश के धनी होने के लिए उसके पास केवल संसाधनों का होना आवश्यक नहीं है, मुख्य बात यह है कि इन संसाधनों का उपयोग कैसे किया जाये जिससे उत्पादन का प्रवाह उत्पन्न हो तथा उस प्रक्रम से कैसे आय और संपत्ति का सृजन किया जाये।

© NCERT not to be republished

आइए, अब उत्पादन के इस प्रवाह पर विचार कीजिए। उत्पादन के इस प्रवाह की उत्पत्ति कैसे होती है? उत्पादन के प्रवाह का सृजन करने के लिए लोग अपनी ऊर्जाओं को एक सामाजिक और तकनीकी ढाँचे के अंतर्गत प्राकृतिक और मानव-निर्मित वातावरण में एक साथ लगाते हैं।

हमारी आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन के इस प्रवाह की उत्पत्ति लाखों छोटे-बड़े उद्यमों के द्वारा वस्तुओं – वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से होता है। इनमें बड़ी संख्या में लोगों को नियोजित करने वाले बड़े-बड़े निगमों से लेकर एकल उद्यमी व्यवसाय शामिल हैं। लेकिन उत्पादन के बाद इन वस्तुओं का क्या होता है? हर वस्तु के उत्पादकों को अपने निर्गत को बेचने की प्रवृत्ति होती है। इसीलिए पिन अथवा बटन जैसे-लघुत्तम मदों से लेकर वायुयान, ऑटोमोबाइल, बड़ी मशीनरी अथवा कोई विक्रय योग्य सेवा जैसे-डॉक्टर, वकील अथवा वित्तीय सलाहकार की सेवा तक, सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन उपभोक्ताओं को बेचने के लिए किया जाता है। उपभोक्ता कोई व्यक्ति हो सकता है अथवा उद्यम, उनके द्वारा क्रय की जानेवाली वस्तु अथवा सेवा अंतिम रूप से अथवा अग्रिम उत्पादन के लिए प्रयुक्त हो सकती है। जब इसका प्रयोग अग्रिम उत्पादन के लिए किया जाता है, तब अक्सर यह विशेष वस्तु अपनी विशेषता खो देती है तथा उत्पादन प्रक्रिया के द्वारा किसी दूसरी वस्तु के रूप में रूपांतरित हो जाती है। कपास उत्पादक किसान धागा तैयार करने वाली मिल को कपास बेचते हैं, जहाँ कपास से धागे तैयार किये जाते हैं; इन धागों को कपड़ा मिल को विक्रय किया जाता है जहाँ उत्पादन प्रक्रम के द्वारा इसका रूपांतरण कपड़े में होता है तथा इस कपड़े को अन्य उत्पादन प्रक्रम के द्वारा पहनने योग्य कपड़े में रूपांतरित किया जाता है। अब यह कपड़ा उपभोक्ताओं को अंतिम उपयोग हेतु विक्रय के लिए तैयार होते हैं। अतः वस्तु की ऐसी मद या प्रकार जिनका अंतिम उपयोग उपभोक्ताओं के द्वारा होता है अर्थात जिन्हें पुनः उत्पादन प्रक्रम के किसी चरण से गुजरना नहीं पड़ता है अथवा जिनमें पुनः कोई परिवर्तन नहीं होता है, उन्हें **अंतिम वस्तु** कहते हैं।

इसे हम अंतिम वस्तु क्यों कहते हैं? क्योंकि एक बार इनका विक्रय होने के बाद यह सक्रिय आर्थिक प्रवाह से बाहर हो जाता है। अब किसी भी उत्पादक के द्वारा इसमें कोई बदलाव नहीं किया जाएगा। यद्यपि अंतिम क्रेता के द्वारा रूपांतरण किया जा सकता है। वस्तुतः कई अंतिम वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जिनका उपभोग के दौरान रूपांतरण होता है। अतः चाय पत्ती का उपभोग हम उसी रूप में नहीं करते, जैसाकि हम खरीदते हैं बल्कि इसका उपयोग पेय चाय के रूप में होता है, जिसका उपभोग किया जाता है। इस तरह हमारे रसोईघर में प्रायः भोजन पकाने के प्रक्रम के माध्यम से कच्चे खाद्य पदार्थ को खाने योग्य बनाया जाता है। किंतु घर में भोजन पकाने का कार्य आर्थिक कार्यकलाप के अंतर्गत नहीं आता है, यद्यपि उत्पाद के रूप में इसमें परिवर्तन होता है। घर में बनाया गया भोजन बाज़ार में विक्रय हेतु नहीं जाता है, यद्यपि यदि इसी प्रकार के भोजन बनाने या चाय बनाने का काम किसी जलपान-गृह में किया जाये, जहाँ कि इन पकाए गए पदार्थों का विक्रय उपभोक्ताओं को किया जाता है, तब वही मदें जैसे कि चाय पत्ती, अंतिम वस्तु कहलायेंगी तथा आगतों के रूप में गिनी जायेगी, जिससे कि आर्थिक मूल्यवर्द्धन होता है। अतः कोई वस्तु अपनी प्रकृति के कारण नहीं बल्कि उपयोग की आर्थिक प्रकृति के दृष्टि से अंतिम वस्तु बनती है।

अंतिम वस्तुओं को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है: **उपभोग वस्तुएँ और पूँजीगत वस्तुएँ**। आहार और वस्त्र जैसी वस्तुएँ तथा मनोरंजन जैसी सेवाओं का उपभोग उसी समय होता है, जब अंतिम उपभोक्ताओं के द्वारा उनको क्रय किया जाता है। इन्हें उपभोग वस्तुएँ या उपभोक्ता वस्तुएँ कहते हैं (इसमें सेवाएँ भी सम्मिलित हैं, किंतु सुविधा की दृष्टि से हम उन्हें उपभोक्ता वस्तुएँ कहते हैं)।

इसके बाद कुछ अन्य प्रकार की भी वस्तुएँ होती हैं, जो टिकाऊ प्रकृति की होती है और उत्पादन प्रक्रम में उनका प्रयोग होता है। ऐसी वस्तुओं में औज़ार, उपकरण और मशीन आते हैं। यद्यपि अन्य साध्य, वस्तुओं का निर्माण तो करते हैं लेकिन उत्पादन प्रक्रम में इनके खुद के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है। ये अंतिम वस्तुएँ भी हैं, किंतु यहाँ अंतिम रूप से उपयोग की जाने वाली अंतिम वस्तु नहीं हैं। ऊपर हमने जिन अंतिम वस्तुओं की चर्चा की है उनसे भिन्न ये किसी भी उत्पादन प्रक्रम का निर्णायक आधार होती हैं, जिससे उत्पादन में मदद मिलती है और उत्पादन संभव हो पाता है। इन वस्तुओं से पूँजी के एक भाग का निर्माण होता है जो कि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण कारक है। इसमें एक उत्पादक उद्यमी ने निवेश किया है तथा वे उत्पादन प्रक्रम में उत्पादन चक्र को जारी रखने हेतु इसे सक्षम बनाता है। ये पूँजीगत वस्तुएँ हैं तथा इनमें क्रमश: टूट-फूट होती रहती है, अत: समय-समय पर इसमें मरम्मत की जाती है अथवा कालांतर में बदल दी जाती है। किसी अर्थव्यवस्था द्वारा धारित पूँजी के स्टॉक को बचाया जाता है, उसे कायम रखा जाता है और आंशिक या पूर्ण रूप से पुन: नया किया जाता है और यही इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है, जिसका अनुकरण किया जायेगा।

यहाँ यह याद रहे कि कुछ वस्तुएँ जैसे टेलीविजन सेट, ऑटोमोबाइल, घरेलू कंप्यूटर यद्यपि अंतिम उपभोग की वस्तुएँ हैं, फिर भी उनमें एक समान विशेषता होती है जो पूँजीगत वस्तु जैसी होती है। ये वस्तुएँ टिकाऊ भी हैं। अर्थात ये तुरंत अथवा अल्पकालिक उपभोग में नष्ट नहीं होती है। इनका जीवन काल आहार और वस्त्र जैसी वस्तुओं की अपेक्षा लंबा होता है। उपयोग होने पर इनमें भी टूट-फूट होती है और मरम्मत अथवा पुर्जों के बदलने अर्थात मशीन की तरह इनकी भी सुरक्षा, रख-रखाव और पुन: नवीकरण की आवश्यकता होती है। इसीलिए, हम इन वस्तुओं को **टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ** कहते हैं।

अत: किसी अर्थव्यवस्था में एक दी हुई कालावधि में उत्पादित सारी अंतिम वस्तुएँ या सेवाओं पर यदि हम विचार करें तो वे या तो उपभोग की वस्तुओं (टिकाऊ तथा गैर-टिकाऊ) के रूप में होती हैं या पूँजीगत वस्तुओं के रूप में। अंतिम वस्तुओं में आर्थिक प्रक्रम के अंतर्गत पुन: कोई परिवर्तन नहीं होता है।

अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन कि एक बड़ी मात्रा अंतिम उपभोग के रूप में समाप्त नहीं होती है और ये पूँजीगत वस्तुएँ भी नहीं हैं। इन वस्तुओं का उपयोग अन्य उत्पादक आगत सामग्री के रूप में कर सकते हैं, जैसे ऑटोमोबाइल निर्माण के लिए इस्पात की चादर का उपयोग और बर्तन बनाने के लिए ताँबे का प्रयोग। ये **मध्यवर्ती वस्तुएँ** हैं जो प्राय: अन्य वस्तुओं के उत्पादन में कच्चे माल अथवा आगत के रूप में प्रयुक्त होती है। *ये अंतिम वस्तुएँ नहीं हैं।*

अब अर्थव्यवस्था में उत्पादन के समान प्रवाह के संदर्भ में विभक्त जानकारी के लिए हमें अर्थव्यवस्था में अंतिम रूप से उत्पादित वस्तुओं के समान स्तर के परिमाणात्मक माप की आवश्यकता होती है। हालाँकि परिमाणात्मक आकलन को प्राप्त करने के क्रम में–अर्थव्यवस्था में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं की माप के लिए यह स्पष्ट है कि हमें *सामान्य मापदंड* की आवश्यकता होती है। कपड़े की माप के लिए जिस मीटर का प्रयोग किया जाता है, उससे हम टनों में चावल को नहीं माप सकते हैं और ना ही ऑटोमोबाइल अथवा मशीन की गिनती कर सकते हैं। इसीलिए एक सामान्य माप के पैमाने के लिए मुद्रा का प्रयोग होता है। चूँकि इनमें से प्रत्येक वस्तु का उत्पादन विक्रय के उद्देश्य से किया जाता है, इसीलिए इन विभिन्न *वस्तुओं के मौद्रिक मूल्य के कुल योग से अंतिम निर्गत की मात्रा प्राप्त होती है।* लेकिन, हम केवल अंतिम वस्तु का मूल्यांकन क्यों करते हैं? निश्चित रूप से मध्यवर्ती वस्तुएँ किसी उत्पादन प्रक्रम की महत्त्वपूर्ण आगत है और इन वस्तुओं के उत्पादन में मानव शक्ति और पूँजी स्टॉक का एक

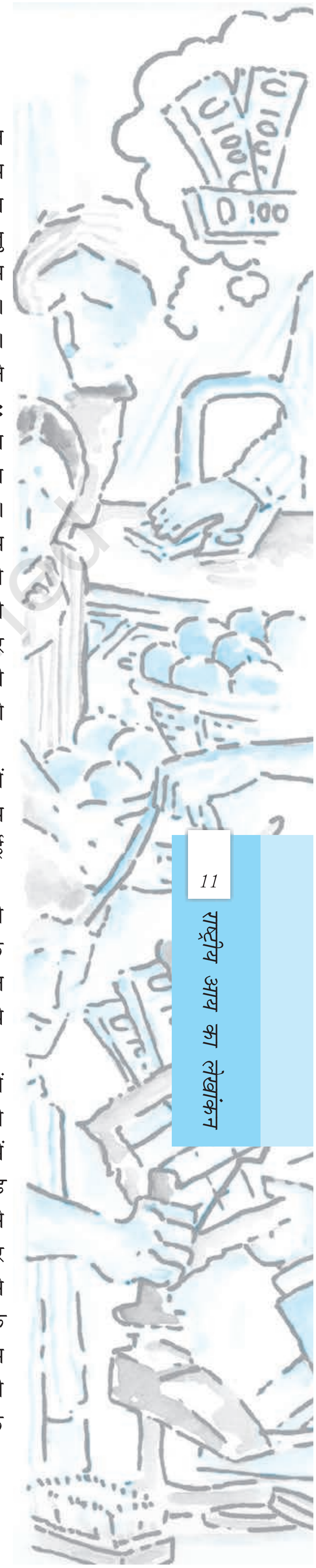

© NCERT not to be republished

महत्त्वपूर्ण भाग शामिल होता है। चूँकि हम निर्गत के मूल्य का उपयोग करते हैं, इसीलिए हमें यह समझना चाहिए की अंतिम वस्तु के मूल्य में मध्यवर्ती वस्तु का मूल्य भी शामिल होता है। अलग से उनकी गणना करने पर *दुबारा गणना* करने से बचा जा सकता है। जबकि मध्यवर्ती वस्तुओं पर विचार करने से कुल आर्थिक कार्यकलाप का पूरा विवरण प्राप्त हो सकता है, फिर भी उनकी गणना से हमारे आर्थिक कार्यकलाप का अंतिम मूल्य अतिश्योक्ति पूर्ण होगा।

इस स्तर पर **स्टॉक** और **प्रवाह** की संकल्पना का परिचय प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण है। अक्सर हम सुनते हैं कि किसी का औसत वेतन 10,000 रुपए है अथवा इस्पात उद्योग का निर्गत इतने टन अथवा इतने रुपए मूल्य में है। लेकिन यह कथन अधूरा है क्योंकि यह स्पष्ट नहीं है कि जिस आय की बात कही गई है, वह वार्षिक है अथवा मासिक या दैनिक और इससे अवश्य ही एक बड़ी भिन्नता उत्पन्न होती है। कभी-कभी जब संदर्भ परिचित हो तो हम कल्पना करते हैं कि कालावधि ज्ञात है, इसीलिए उसका उल्लेख नहीं करते हैं। किंतु ऐसे सारे कथनों में अंतर्निहित एक निश्चित समयावधि होती है, अन्यथा ऐसे कथन अर्थहीन हैं। अत: आय अथवा निर्गत अथवा लाभ ऐसी संकल्पना है, जिससे तभी अर्थ निकलता है जब अवधि निर्धारित हो। इनको प्रवाह कहते हैं, क्योंकि ये एक समयावधि के लिए होते हैं। अत: हमें इनके परिमाणात्मक माप प्राप्त करने के लिए एक समयावधि अंकित करनी पड़ती है। चूँकि किसी अर्थव्यवस्था में अधिकांश लेखांकन कार्य वार्षिक होते हैं, इसीलिए इनमें से अधिकांश को वार्षिक रूप में ही अभिव्यक्त किया जाता है, जैसे– वार्षिक लाभ अथवा उत्पादन। **प्रवाह को एक समयावधि के लिए पारिभाषित किया जाता है।**

इसके विपरीत, अंकित समयावधि में एक बार उत्पादित पूँजीगत वस्तुएँ अथवा टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं में ना तो टूट-फूट होती है और ना ही उनका उपभोग होता है। वास्तव में, पूँजीगत वस्तुएँ हमें उत्पादन के विभिन्न चक्रों में सेवाएँ प्रदान करती हैं। फैक्ट्री के भवन और मशीन विशिष्ट समयावधि से असंबद्ध होते हैं। अगर किसी नई मशीन को शामिल किया जाता है, तब उसमें सम्मिलन अथवा कमी हो सकती है अथवा मशीन अनुपयोगी होती है तथा उसे बदला नहीं जाता है, इसे स्टॉक कहते हैं।

स्टॉक की परिभाषा किसी निश्चित समय पर की जाती है। किंतु हम एक निर्धारित समय अवधि में *स्टॉक में परिवर्तन* का मूल्यांकन कर सकते हैं, जैसे इस वर्ष कितनी नई मशीनें शामिल की गई। अत: स्टॉक में इस प्रकार के परिवर्तन, प्रवाह हैं, जिनका मूल्यांकन एक निर्देशित समयावधि में किया जा सकता है। कोई खास मशीन अनेक वर्षों तक (यदि टूट-फूट न हो) पूँजी स्टॉक का हिस्सा हो सकती है, लेकिन वह मशीन पूँजी स्टॉक में शामिल नई मशीन के प्रवाह का केवल एक वर्ष के लिए हिस्सा हो सकती है।

स्टॉक परिवर्तों और प्रवाह परिवर्तों के बीच अंतर को समझने के लिए, मान लीजिए कि एक नल से किसी हौज को भरा जा रहा है। नल से प्रति मिनट जितना पानी हौज में भरा जा रहा है, वह प्रवाह है। लेकिन जितना पानी टैंक में किसी समय विशेष में उपलब्ध होता है, वह स्टॉक संकल्पना है।

हम अंतिम निर्गत के माप की चर्चा करते हैं, हमारे अंतिम निर्गत का हिस्सा पूँजीगत वस्तुएँ भी होती हैं जिससे अर्थव्यवस्था[1] के **सकल निवेश** की रचना होती है। इनमें मशीनें, औज़ार और

[1] अर्थशास्त्रियों ने निवेश को इस तरह से परिभाषित किया है। इसे निवेश के समान अभिप्राय के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए, जिसमें मुद्रा के द्वारा भौतिक तथा वित्तीय परिसंपत्तियों की खरीद को प्रयोग में लाया जाता है। अतएव, निवेश शब्द का प्रयोग शेयरों अथवा परिसंपत्तियों की खरीद अथवा यहाँ तक बिना नीति के संबंध में भी जैसा कि अर्थशास्त्री निवेश को परिभाषित करते हैं, इसका कोई संबंध नहीं है। हमारे लिए निवेश सदैव पूँजी निर्माण है, पूँजीगत स्टॉक में सकल अथवा निवल सम्मिलन।

© NCERT not to be republished

उपकरण; भवन, कार्यलय का स्थान, गोदाम या आधारभूत संरचना, जैसे–सड़क, सेतु, हवाईअड्डा या घाट आदि हो सकते हैं। किंतु एक वर्ष में उत्पादित सारी पूँजीगत वस्तुओं से पूर्व से विद्यमान पूँजी स्टॉक में अतिरिक्त वृद्धि नहीं होती। पूँजीगत वस्तुओं के वर्तमान निर्गत का एक महत्त्वपूर्ण अंश विद्यमान पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक के अंश के रख-रखाव और प्रतिस्थापन में चला जाता है। यही कारण है कि पूर्व से विद्यमान पूँजी स्टॉक में टूट-फूट होती है और उसके रख-रखाव एवं प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है। इस वर्ष उत्पादित पूँजीगत वस्तुओं का एक हिस्सा विद्यमान पूँजीगत वस्तुओं के प्रतिस्थापन में चला जाता है और इससे पूँजीगत वस्तुओं के पहले से विद्यमान स्टॉक में कोई अभिवृद्धि नहीं होती है और इसके मूल्य को निवल निवेश के माप को प्राप्त करने के लिए सकल निवेश से घटाने की आवश्यकता होती है। पूँजीगत वस्तुओं की नियमित टूट-फूट का समायोजन करने के क्रम में सकल निवेश के मूल्य से किए गए लोप को **मूल्यह्रास** कहते हैं।

अतः अर्थव्यवस्था में पूँजीगत वस्तुओं में नए योग का माप निवल निवेश अथवा नई पूँजी रचना के द्वारा होता है, जिसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है:

निवल निवेश = सकल निवेश – मूल्यह्रास

इस संकल्पना की जिसे मूल्यह्रास कहते हैं, इसकी थोड़ी विस्तार में जाँच कीजिए। मान लीजिए, कोई फर्म नई मशीन में निवेश करती है, यह मशीन अगले 20 वर्षों तक कार्य कर सकती है जिसके बाद इसकी मरम्मत अथवा इसे बदलने की ज़रूरत हो सकती है। जिसे हम कल्पना कर सकते हैं कि यदि प्रत्येक वर्ष के उत्पादन प्रक्रम में मशीन का धीरे-धीरे घिसावट हो रहा हो, तो मानो प्रत्येक वर्ष इसके वास्तविक मूल्य में 20वें भाग के बराबर मूल्यह्रास होता है। अतः 20 वर्ष के बाद प्रतिस्थापन के लिए थोक निवेश पर विचार करने के बदले हम प्रतिवर्ष वार्षिक मूल्य के ह्रास लागत पर विचार कर सकते हैं। एक सामान्य समझ जिसमें मूल्यह्रास शब्द का प्रयोग तथा उसकी संकल्पना को लिया गया है- वह है किसी विशिष्ट पूँजीगत वस्तु का प्रत्याशित जीवनकाल। जैसे, मशीन के संदर्भ में दिया गया 20 वर्षों का उदाहरण। अतः मूल्यह्रास किसी पूँजीगत वस्तु की टूट-फूट के लिए वार्षिक भत्ता है।[2] दूसरे शब्दों में, यह वस्तु के उपयोग के वर्षों की संख्या से लागत में भाग देने पर प्राप्त होता है।[3]

ध्यातव्य है कि मूल्यह्रास एक लेखांकन संकल्पना है। कोई वास्तविक व्यय वास्तव में प्रत्येक वर्ष नहीं होता किंतु मूल्य का लेखांकन हर वर्ष होता है। किसी अर्थव्यवस्था में हजारों उद्यम हैं जिनके पास उपकरणों के अलग-अलग जीवन काल होते हैं। किसी वर्ष-विशेष में कुछ उद्यम वास्तव में बड़ी मात्रा में प्रतिस्थापन व्यय करते हैं। अतः हम कल्पना कर सकते हैं कि वास्तविक प्रतिस्थापन व्यय का स्थिर प्रवाह होगा जो उस अर्थव्यवस्था में होने वाले वार्षिक मूल्यह्रास की मात्रा के लेखांकन से थोड़ा बहुत संगत होगा।

अब यदि हम किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित कुल अंतिम निर्गत पर एक दृष्टि डालें, तो हम देखेंगे कि उपभोक्ता वस्तुओं (और सेवाओं) और पूँजीगत वस्तुओं के निर्गत होते हैं। उपभोक्ता

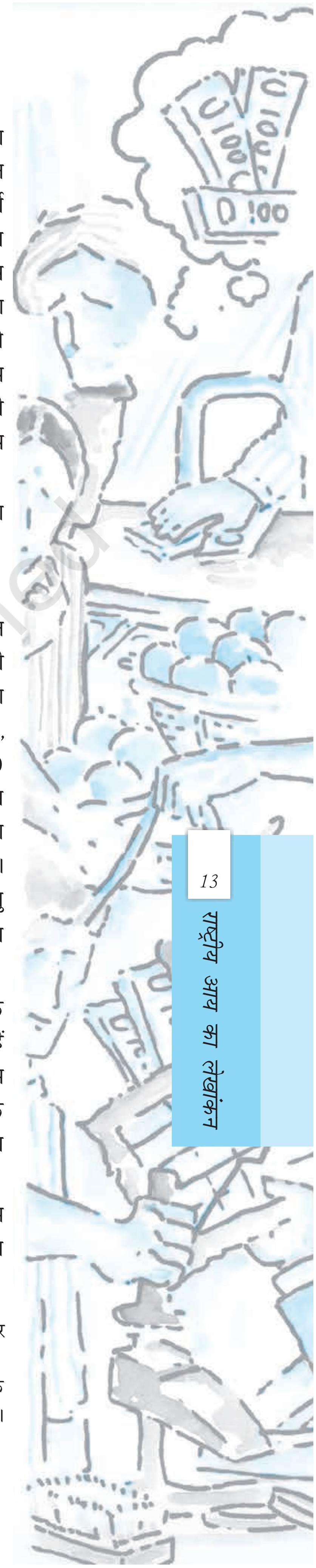

© NCERT not to be republished

[2] मूल्यह्रास, अप्रत्याशित अथवा अचानक हुए विनाश या पूँजी का दुरूपयोग जो कि दुर्घटना, प्राकृतिक आपदा या फिर इस तरह की अन्य बाह्य परिस्थितियों के कारण होता है, नहीं कहा जाता है।

[3] इसके बजाय यहाँ हम परिसंपत्तियों के मूल मूल्यों के आधार पर एक सरल पूर्वधारणा का निर्माण कर रहे हैं, कि मूल्यह्रास की दर स्थिर है। वास्तविक कार्य व्यवहार में मूल्यह्रास का परिकलन करने के अन्य तरीके हो सकते हैं।

वस्तुओं से अर्थव्यवस्था की संपूर्ण आबादी के उपभोग का संवर्धन होता है। अंतिम वस्तुओं का दूसरा हिस्सा पूँजीगत वस्तुएँ हैं, जिसका क्रय व्यापारी या उद्यमी करते हैं; वे इसका उपयोग या तो उद्योग रख-रखाव के लिए या पूँजी स्टॉक में हुए टूट-फूट के लिए या अपने पूँजी स्टॉक में अतिरिक्त वृद्धि के लिए करते हैं। एक विशिष्ट समयावधि जैसे किसी एक वर्ष में अंतिम वस्तुओं का कुल उत्पादन चाहे तो उपभोग के रूप में होगा या निवेश के रूप में। इसका तात्पर्य है कि यहाँ उपभोग और निवेश के बीच में अदला-बदली होती है। यदि किसी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता वस्तु का उत्पादन अधिक होगा तो पूँजीगत वस्तुओं का कम अथवा इसके विपरीत उत्पादन हो सकता है।

ऐसा सामान्यत: देखा गया है कि पूँजीगत वस्तुएँ जितनी परिष्कृत होंगी, वस्तु के उत्पादन के लिए श्रमिक की क्षमता बढ़ेगी। परंपरागत बुनकर को एक साड़ी बनाने में महीनों लगेगा लेकिन आधुनिक मशीनों के द्वारा एक दिन में हजारों साड़ियाँ तैयार की जाती हैं। पिरामिड अथवा ताजमहल जैसे ऐतिहासिक स्मारक को बनाने में दशकों लगे लेकिन आधुनिक निर्माण मशीनरी से कुछ ही वर्षों में गगनचुंबी इमारतें बनाई जा सकती हैं। पूँजीगत वस्तुओं के अधिक उत्पादन करने वाले नये प्रकारों के कारण उपभोक्ता वस्तुओं के अधिक उत्पादन में मदद मिलेगी।

क्या यहाँ हम स्वयं परस्पर विरोधी विचार धारण नहीं कर रहे हैं? पीछे हमने देखा कि एक अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तुओं का कुल निर्गत का एक छोटा हिस्सा उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन के लिए उपलब्ध होता है, जब उत्पादन का अधिकांश हिस्सा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में व्यय किया जाता है। और अब हम यह कह सकते हैं कि अधिक पूँजीगत वस्तुओं का तात्पर्य अधिक उपभोक्ता वस्तुएँ हैं। यद्यपि यहाँ कोई विरोधाभास नहीं है। यहाँ समय का क्या महत्व है? अर्थव्यवस्था के किसी खास अवधि में दिए गए कुल उत्पादन स्तर पर, यह सत्य है कि अधिक पूँजीगत वस्तुएँ कम उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करेंगी। लेकिन अधिक पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन का तात्पर्य है कि भविष्य में श्रमिकों के पास कार्य करने के लिए अधिक पूँजीगत औजार होंगे। हमने देखा कि यह एक उच्च क्षमता वाले अर्थव्यवस्था में समान संख्या में श्रमिक उत्पादन करते हैं। यह कुल निर्गत अधिक होती है जब हम इसकी तुलना कम पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन से करते हैं। यदि कुल निर्गत अधिक है तो निश्चित रूप से उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा अधिक हो जाएगी। इस प्रकार आर्थिक चक्र मात्र अधिक पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन ही नहीं करती है बल्कि इसमें विस्तार भी करती है। यह संभव है कि चर्चा में दूसरे वर्तुल प्रवाह को भी हम ले सकते हैं।

किसी व्यक्ति के पास वस्तुओं को खरीदने की क्षमता आय से आती है। आय की प्राप्ति कोई व्यक्ति श्रमिक (मज़दूरी) अथवा उद्यमी (लाभ) अथवा भूस्वामी (लगान) अथवा पूँजीधारी (ब्याज) के रूप में प्राप्त करता है। संक्षेप में, उत्पादन के कारकों के स्वामी के रूप में लोग जो आय प्राप्त करते हैं, उनका उपयोग वे वस्तु और सेवाओं की अपनी माँग की पूर्ति के लिए करते हैं।

यहाँ हम एक वर्तुल प्रवाह को देख सकते हैं, जो बाज़ार के माध्यम से सुगम बनता है। उत्पादन प्रकम के संचालन के लिए उत्पादन के कारकों की माँग जो फर्म करती है, उससे लोगों के अदायगी का सृजन होता है, फलत: वस्तुओं और सेवाओं की लोगों की माँग से फर्म के लिए अदायगी का सृजन होता है और इससे उनके द्वारा उत्पादित उत्पादों की बिक्री होती है।

© NCERT not to be republished

अत: समाज का उपभोग का कार्य और उत्पादन जटिलतापूर्वक एक-दूसरे से जुड़े होते हैं और वास्तव में यहाँ एक प्रकार का वर्तुल कार्योत्पादन होता है। अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रक्रम से उनके लिए कारक आदयगी का सृजन होता है, जो उसमें संलग्न होते हैं और उत्पादन के निर्गत के रूप में वस्तुओं और सेवाओं का सृजन होता है। इस प्रकार सृजित आय से अंतिम उपभोग की वस्तुओं को खरीदने की शक्ति की रचना होती है और इस प्रकार व्यवसायी के द्वारा उनकी बिक्री संभव होती है, जो उनके उत्पादन का मुख्य उद्देश्य है। उत्पादन प्रक्रम में निर्मित पूँजीगत वस्तुएँ भी उत्पादकों को आय–मज़दूरी, लाभ, इत्यादि का अर्जन करने योग्य बनाती है। पूँजीगत वस्तुओं से किसी अर्थव्यवस्था के पूँजी स्टॉक में या तो योग होता है अथवा स्टॉक कायम रहता है और इससे अन्य वस्तुओं का उत्पादन संभव होता है।

2.2 आय का वर्तुल प्रवाह और राष्ट्रीय आय गणना की विधि

पूर्व खंड में अर्थव्यवस्था के संबंध में जो वर्णन किया गया, उससे हम कुल मिलाकर यह जानने में सक्षम हो गए हैं कि कोई सरल अर्थव्यवस्था सरकार, बाह्य व्यापार अथवा किसी बचत के बिना किस प्रकार कार्य करती है। फर्म, परिवारों को उसके उत्पादक कार्यकलाप, जिसका वह निष्पादन करता है, के लिए भुगतान करती है। जैसाकि हमने पहले ही उल्लेख किया है कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के दौरान चार प्रकार के मौलिक योगदान किये जा सकते हैं। (क) मानवीय श्रम का योगदान, जिसका पारिश्रमिक मज़दूरी कहलाता है। (ख) पूँजी का योगदान, जिसका पारिश्रमिक ब्याज है। (ग) उद्यमवृत्ति का योगदान, जिसका पारिश्रमिक लाभ है। (घ) स्थिर प्राकृतिक संसाधनों (जिसे भूमि कहा जाता है) का योगदान, जिनका पारिश्रमिक लगान है।

इस सरलीकृत अर्थव्यवस्था में सिर्फ एक तरीका है, जिसमें परिवार अपनी आय का निपटान कर सकते हैं। नामत: वह अपनी समस्त आय को घरेलू फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय कर सकते हैं। उनकी आय के निपटान के अन्य मार्ग बंद रहते हैं। परिवार बचत नहीं करते हैं और वह न ही सरकार को कोई कर अदा करते हैं, क्योंकि यहाँ कोई सरकार नहीं है और ना ही वे वस्तुओं का अयात करते हैं, क्योंकि इस सरलीकृत अर्थव्यवस्था में कोई बाह्य व्यापार नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन के कारक अपने पारिश्रमिक का उपयोग उन वस्तुओं और सेवाओं के क्रय पर करता है, जो उत्पादन में सहायक होते हैं। अर्थव्यवस्था के परिवारों का समस्त उपभोग फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर हुए समस्त व्यय के बराबर होता है। अत: विक्रय संप्राप्ति के रूप में अर्थव्यवस्था की समस्त आय उत्पादकों के पास पुन: वापस आ जाती है। इस व्यवस्था में किसी प्रकार का लीकेज़ नहीं होता है अर्थात फर्म द्वारा कारक अदायगी (उत्पादन के चारों कारकों द्वारा अर्जित पारिश्रमिक का कुल योग) के रूप में वितरित राशियों का कुल योग और उनके द्वारा विक्रय संप्राप्ति के रूप में प्राप्त समस्त उपभोग मूल्य में कोई अंतर नहीं होता है।

अगली अवधि में फर्म वस्तुओं और सेवाओं का पुन: उत्पादन करती है तथा उत्पादन के कारकों को पारिश्रमिक प्रदान करती हैं। इन पारिश्रमिकों का उपयोग पुन: वस्तुओं और सेवाओं के क्रय के लिए होगा। अत: हम कल्पना कर सकते हैं कि अर्थव्यवस्था की समस्त आय हर वर्ष दो क्षेत्रकों फर्म और परिवार के बीच वर्तुल पथ पर प्रवाहमान रहेगी। इसे निम्नांकित रेखाचित्र 2.1में प्रदर्शित किया गया है। जब आय को फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय किया जाता है, तो यह समस्त व्यय के रूप में फर्म को प्राप्त होती है। चूँकि व्यय का मूल्य वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य के बराबर होना चाहिए, इसीलिए हम समस्त आय की माप फर्म के द्वारा

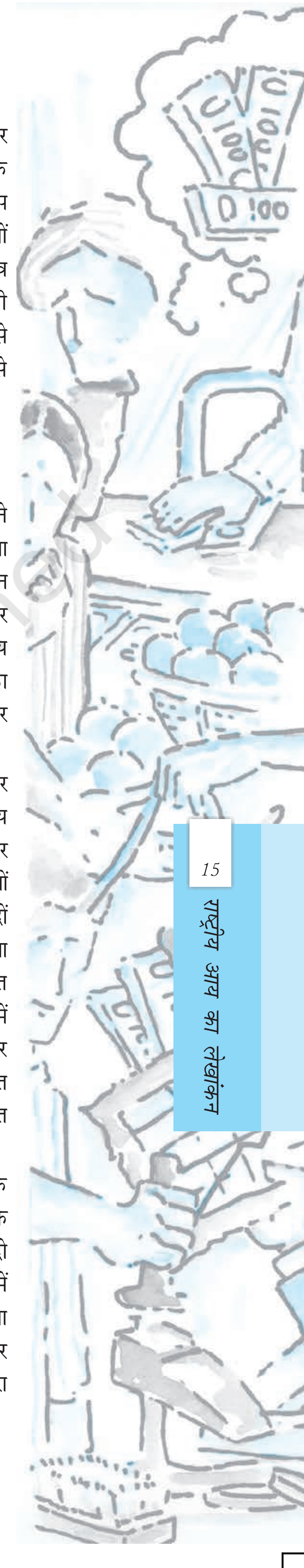

© NCERT not to be republished

उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य की गणना करके करते हैं। जब फर्म द्वारा प्राप्त समस्त संप्राप्ति का भुगतान उत्पादन के कारकों को किया जाता है, तो यह समस्त आय का रूप ले लेती है।

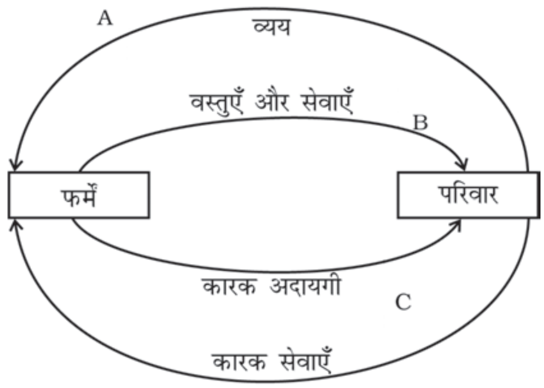

रेखाचित्र 2.1: सरल अर्थव्यवस्था में आय का वर्तुल प्रवाह

रेखाचित्र 2.1 में सबसे ऊपरी तीर, जो परिवार को फर्म से जोड़ती है फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के क्रय पर परिवार के व्यय को प्रदर्शित करता है। दूसरा तीर जो फर्म को परिवार से जोड़ता है, ऊपर के तीर का प्रतिरूप है। यह फर्म से परिवार की तरफ प्रवाहमान वस्तु और सेवाओं को बतलाता है। दूसरे शब्दों में, यह वह प्रवाह है जो कि परिवार व्यय करके फर्मों से प्राप्त करते हैं। संक्षेप में, ऊपर के दो तीर वस्तुओं और सेवाओं के बाज़ार को प्रदर्शित करते हैं–ऊपर का तीर वस्तुओं और सेवाओं की अदायगी के प्रवाह को, नीचे का तीर वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार, रेखाचित्र के निचले भाग के दो तीर उत्पादन बाज़ार के कारकों को प्रदर्शित करता है। सबसे नीचे का तीर जो परिवार को फर्म से जोड़ता है, परिवार द्वारा फर्म को प्रदान की गई सेवा को संकेतित करता है। इन सेवाओं का उपयोग करके फर्म निर्गत का निर्माण करती हैं। इसके ऊपर का तीर जो फर्म को परिवार से जोड़ता है, फर्म द्वारा परिवार को उनकी सेवा के लिए किये गये भुगतान को प्रदर्शित करता है।

चूँकि वस्तु और सेवाओं के समस्त मूल्य को प्रदर्शित करते हुए मुद्रा का एक ही परिमाण वर्तुल पथ पर गमन करता है। यदि हम वस्तु और सेवाओं के समस्त मूल्यों का एक वर्ष के दौरान आकलन करना चाहें, तो आरेख में निर्देशित किसी भी बिंदु-रेखाओं पर अंकित प्रवाह का वार्षिक मूल्य की माप कर सकते हैं। यदि हम सभी फर्मों द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्यों का मूल्यांकन करते हुए (A पर) प्रवाह का मापन कर सकते हैं। यह विधि **व्यय विधि** कहलायेगी। यदि हम (B पर) सभी फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के समस्त मूल्यों की माप करते हैं, यह विधि **उत्पाद विधि** कहलायेगी। C पर सभी कारक अदायगियों के कुल योग का मापन **आय विधि** कहलायेगी।

अवलोकन कीजिए कि अर्थव्यवस्था का समस्त व्यय उत्पादन के कारकों द्वारा अर्जित समस्त आय के बराबर होना चाहिये (A और C पर प्रवाह समान है)। अब मान लीजिए कि किसी समय विशेष में परिवार फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु और सेवाओं पर अधिक व्यय करने का निर्णय लेते हैं। कुछ देर के लिए, हम इस प्रश्न को छोड़ दें कि अतिरिक्त व्यय के लिए उनके पास मुद्रा कहाँ से आयेगी, क्योंकि वे पहले ही अपनी पूरी आय व्यय कर चुके हैं (वे अतिरिक्त व्यय को करने के लिए उधार ले सकते हैं)। अब यदि वह वस्तुओं और सेवाओं पर अधिक व्यय करते हैं तो फर्म इस अतिरिक्त माँग की पूर्ति के लिए अधिक उत्पादन करेगी। चूँकि वे अधिक उत्पादन करेंगी, इसीलिए फर्मों को उत्पादन के कारकों को अतिरिक्त पारिश्रमिक देना चाहिए। फर्म कैसे मुद्रा की अतिरिक्त राशि अदा करेगी। अतिरिक्त कारक अदायगी उत्पादित अतिरिक्त वस्तु और सेवाओं के मूल्य के बराबर होना चाहिये। इस प्रकार, परिवार को अचानक अतिरिक्त आय प्राप्त होगी जिससे उसे अपनी प्रारंभिक अतिरिक्त व्यय की भरपाई करने में मदद मिलेगी। दूसरे शब्दों

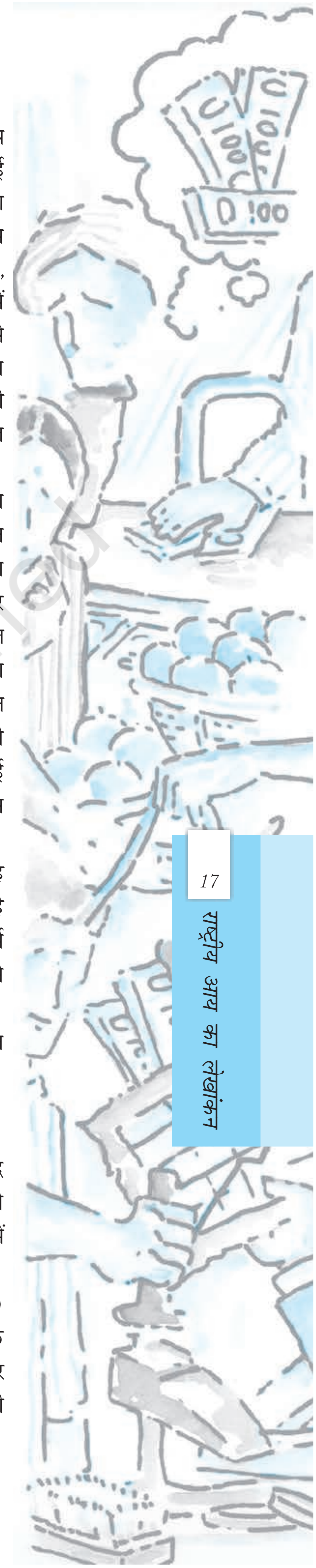

में, परिवार प्रारंभिक रूप में अतिरिक्त व्यय करने का निर्णय ले सकते हैं और अंत में उनकी आय उतनी ही बढ़ेगी जितना कि उसे अतिरिक्त व्यय के लिए आवश्यकता होगी। इससे पृथक कोई अर्थव्यवस्था आय के वर्तमान स्तर से अधिक व्यय करने का निर्णय ले सकती है। लेकिन ऐसा करने से उसकी आय अंततोगत्वा व्यय के उच्च स्तर के साथ अनुकूल रूप से बढ़ेगी। प्रथम दृष्टया यह थोड़ा विरोधाभासी लग सकता है, लेकिन आय चूँकि वर्तुल पथ पर गमन करती है, इसीलिए यह बताना कठिन नहीं है कि एक बिंदु पर प्रवाह में वृद्धि से सभी स्तरों पर प्रवाह में वृद्धि होगी। यह एकल आर्थिक एजेंट (एक परिवार) का कार्य समस्त अर्थव्यवस्था के कार्य से कैसे भिन्न है, इसका एक और दृष्टांत है। पूर्व में परिवार की व्यक्तिगत आय से व्यय बाधित होता है। यह कभी नहीं हो सकता कि एक श्रमिक अधिक व्यय करने का निर्णय ले और उससे उसकी आय में समतुल्य वृद्धि हो। हम चौथे अध्याय में इसे अधिक विस्तार से पढ़ेंगे कि उच्च समस्त व्यय से समस्त आय में परिवर्तन कैसे होता है।

अर्थव्यवस्था के उपर्युक्त रेखाचित्रीय उदाहरण को सर्वसम्मति से एक सरलीकृत अर्थव्यवस्था के रूप में माना जाता है। ऐसी कहानी जो एक काल्पनिक अर्थव्यवस्था के क्रियाकलाप का वर्णन करती है समष्टि-अर्थशास्त्रीय मॉडल कहलाती है। स्पष्ट है कि मॉडल में वास्तविक अर्थव्यवस्था का विस्तार से वर्णन नहीं होता। उदाहरणतः हमारे मॉडल में यह मान लिया जाता है कि परिवार बचत नहीं करते हैं, सरकार नहीं होती है और अन्य देशों से व्यापार नहीं होता है। यद्यपि मॉडल में अर्थव्यवस्था का क्षण-प्रतिक्षण विस्तार से वर्णन करने की इच्छा प्रकट नहीं की गई है, उनका उद्देश्य आर्थिक व्यवस्था की कार्यपद्धति की आवश्यक विशेषताओं को उजागर करना ही है। लेकिन यहाँ यह सावधानी बरतनी होगी कि सामग्री का सरलीकरण इस प्रकार न हो कि अर्थव्यवस्था की अनिवार्य प्रकृति का मिथ्या निरूपण हो। अर्थशास्त्र मॉडलों से पूर्ण विषय है, इस पुस्तक में कई मॉडलों को प्रस्तुत किया जाएगा। एक अर्थशास्त्री का कार्य यह दर्शाना है कि कौन-सा मॉडल किस वास्तविक जीवन की दशाओं के लिए ज़रूरी है।

यदि हम ऊपर वर्णित अपने सरल मॉडल में परिवर्तन करें और बचत को लें, तो इससे यह मुख्य निष्कर्ष बदल जाएगा कि अर्थव्यवस्था की आय का समस्त मूल्यांकन अपरिवर्तित रहेगा। चाहे इसकी गणना A, B अथवा C, किसी भी स्थिति में की जाए। इससे पता चलता है कि यह निष्कर्ष मौलिक विधि से नहीं बदलता है। आर्थिक तंत्र कितना भी जटिल क्यों न हो, तीनों विधियों से आकलित वस्तुओं और सेवाओं का वार्षिक उत्पादन एक समान होगा।

हमने देखा कि किसी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य की गणना तीन विधियों से की जा सकती है। अब हम इन गणनाओं के विस्तृत चरणों की चर्चा करेंगे।

2.2.1 उत्पाद अथवा मूल्यवर्धित विधि

उत्पाद विधि में हम उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के वार्षिक मूल्य की गणना करते हैं (यदि एक वर्ष समय की इकाई हो)। इसकी गणना कैसे की जाए? क्या हम अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का योग करते हैं? इन प्रश्नों को समझने में निम्नलिखित उदाहरण सहायक होगा।

मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में केवल दो प्रकार के उत्पादक हैं। वे गेहूँ उत्पादक (किसान) और ब्रेड निर्माता (बेकर) हैं। गेहूँ उत्पादक गेहूँ का उत्पादन करते हैं और उन्हें मानव श्रम के अलावा किसी भी प्रकार के आगत की आवश्यकता नहीं होती है। वे गेहूँ का कुछ अंश बेकर को बेचते हैं। बेकर को ब्रेड के उत्पादन में गेहूँ के अतिरिक्त अन्य किसी कच्चे माल की

© NCERT not to be republished

आवश्यकता नहीं होती है। मान लीजिए कि एक वर्ष में किसान द्वारा उत्पादित गेहूँ का मूल्य 100 रु० है। इनमें से वे 50 रु० मूल्य का गेहूँ बेकर को बेचते हैं। बेकर गेहूँ की इस मात्रा का उपयोग करके एक वर्ष के दौरान 200 रु० मूल्य का ब्रेड बनाता है। अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन का मूल्य कितना है? यदि हम क्षेत्रकों के उत्पादन के मूल्यों का योग सरल तरीके से निकालें तो हम 200 रु० (बेकरों के उत्पादन का मूल्य) और 100 रु० (किसानों के उत्पादन का मूल्य) को जोड़ देंगे। परिणाम 300 रु० आएगा।

तालिका 2.1: उत्पादन, मध्यवर्ती वस्तुएँ और मूल्यवर्धित

	किसान (राशि रु० में)	*बेकर (राशि रु० में)*
कुल उत्पादन	100	200
प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुएँ	0	50
मूल्यवर्धित	100	200 − 50 = 150

थोड़ा चिंतन करने पर हम पाएँगे कि समस्त उत्पादन का मूल्य 300 रु० नहीं है। किसान 100 रु० मूल्य का गेहूँ उपजाता है, जिसके लिए उसे किसी भी प्रकार के आगत की आवश्यकता नहीं होती है। अतः किसान 100 रु० मूल्य के उपज में पूर्ण योगदान का अधिकारी है। लेकिन यह बात बेकर के संबंध में सत्य नही है। बेकरों को अपने ब्रेड का उत्पादन करने के लिए 50 रु० का गेहूँ खरीदना पड़ता है। वे 200 रु० मूल्य के ब्रेड का जो उत्पादन उसमें करते हैं, उनका पूर्णतया योगदान नहीं है। बेकरों के निवल योगदान की गणना के लिए हमें गेहूँ का मूल्य घटाना होगा, जो कि वे किसान से क्रय करते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो 'दुहरी गणना' की त्रुटि होगी। क्योंकि गेहूँ के 50 रु० मूल्य की गणना दो बार हो जाएगी। पहली बार तो यह किसानों द्वारा उत्पादित निर्गत का हिस्सा है और दूसरी बार बेकरों के द्वारा उत्पादित ब्रेड में गेहूँ के आरोपित मूल्य के रूप में इसकी गणना होगी।

अतः बेकरों का निवल योगदान 200 – 50 = 150 रु० है। अतः इस सरल अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का समस्त उत्पादन 100 रु० (किसानों का निवल योगदान) + 150 रु० (बेकरों का निवल योगदान) = 250 रु० है।

फर्म के निवल योगदान को जिस शब्द से सूचित किया जाता है, उसे **मूल्यवर्धित** कहते हैं। हमने देखा कि कोई फर्म दूसरे फर्म से जो कच्चा माल खरीदती हैं, उसको उत्पादन प्रक्रम में पूर्ण रूप से उपयोग कर लिया जाता है और इसे 'मध्यवर्ती वस्तुएँ' कहते हैं। अतः किसी फर्म का मूल्यवर्धित *फर्म के उत्पादन का मूल्य–फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य* है। फर्म के मूल्यवर्धित का वितरण उत्पादन के चारों कारकों में किया जाता है, जिनके नाम–श्रम, पूँजी, उद्यमिता और भूमि हैं। इसलिए एक फर्म द्वारा अदा की गयी मज़दूरी, ब्याज, लाभ और लगान फर्म की मूल्यवर्धित में जुड़ना चाहिए। मूल्यवर्धित एक प्रवाह परिवर्त है।

उपर्युक्त उदाहरण को तालिका 2.1 के रूप में दर्शाया जा सकता है। यहाँ सभी परिवर्तों को मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ सूचीबद्ध विभिन्न परिवर्तों का मूल्यांकन करने के लिए हम वस्तुओं की बाज़ार कीमत पर विचार कर सकते हैं। उदाहरण में, हम उत्पादन शृंखला में और अधिक कारकों को समाविष्ट कर सकते हैं और इसे अधिक यथार्थवादी बना सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, किसान गेहूँ के उत्पादन के लिए उर्वरक अथवा कीटनाशकों का प्रयोग कर सकते हैं। इन आगतों का मूल्य गेहूँ के निर्गत के मूल्य से घटाना होगा अथवा बेकर अपना ब्रेड जलपानगृह को बेच सकते हैं, जिसके मूल्यवर्धित की गणना मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को घटाकर (ब्रेड के

© NCERT not to be republished

मामले में) करनी होगी। मूल्यह्रास की संकल्पना से हम पूर्व परिचित हैं, जिसे स्थिर पूँजी का उपभोग भी कहते हैं। चूँकि उत्पादन के संचालन में प्रयुक्त पूँजी में टूट-फूट होती है। पूँजी के मूल्य को स्थिर रखने के लिए उत्पादक को प्रतिस्थापन निवेश करना पड़ता है। प्रतिस्थापन निवेश पूँजी का मूल्यह्रास ही है। यदि हम मूल्यवर्धित में मूल्यह्रास को शामिल करें तो हमें मूल्यवर्धित का जो मूल्य प्राप्त होगा, उसे हम **सकल मूल्यवर्धित** कहते हैं। यदि सकल मूल्यवर्धित से मूल्यह्रास को घटाया जाये तो **निवल मूल्यवर्धित** प्राप्त होता है। सकल मूल्यवर्धित के विपरीत निवल मूल्यवर्धित में पूँजी की टूट-फूट शामिल नहीं है। उदाहरण के लिए, कोई फर्म प्रतिवर्ष 100 रु॰ मूल्य का उत्पादन करती है। उस वर्ष में 20 रुपये का मध्यवर्ती वस्तु का उपयोग किया जाता है और पूँजी उपभोग का मूल्य 10 रुपये है तो फर्म का सकल मूल्यवर्धित 100 रु॰ – 20 रु॰ = 80 रु॰ प्रतिवर्ष होगा। निवल मूल्यवर्धित 100 रु॰ –20रु॰ – 10 रु॰ = 70 रु॰ प्रतिवर्ष।

ध्यातव्य है कि मूल्यवर्धित की गणना करते समय फर्म के **उत्पादन का मूल्य** लिया जाता है। किंतु फर्म अपने सारे उत्पादन को नहीं बेच पाती है। उस स्थिति में वर्ष के अंत में उसके पास कुछ अबिक्रित स्टॉक होगा। विलोमत: ऐसा भी हो सकता है कि फर्म के पास पहले से ही कुछ अबिक्रित स्टॉक हो। वर्ष के दौरान फर्म द्वारा बहुत कम उत्पादन किया जाता है किंतु उस वर्ष के आरंभ में जो स्टॉक उसके पास रहता है, उसे बेचकर बाज़ार में माँग की पूर्ति करती है। हम इन स्टॉकों के साथ कैसे व्यवहार करेंगे जो कोई फर्म अपनी इच्छा से अथवा नहीं चाहते हुए अपने पास रखती है। स्मरणीय है कि कोई फर्म दूसरी फर्म से कच्चा माल खरीदती है। कच्चे माल का वह अंश जिसका पूर्ण उपयोग हो जाता है, उसे मध्यवर्ती वस्तु के रूप में कोटिबद्ध किया जाता है। उस अंश का क्या होता है जिसका पूर्ण उपयोग नहीं होता है?

अर्थशास्त्र में, अबिक्रित निर्मित वस्तुओं अथवा अर्धनिर्मित वस्तुओं अथवा कच्चे मालों का स्टॉक जो कोई फर्म एक वर्ष से अगले वर्ष तक रखता है, उसे **माल-सूची** कहते हैं। माल-सूची एक स्टॉक परिवर्त है। वर्ष के आरंभ में इसका मूल्य हो सकता है और वर्ष के अंत में इसका उच्च मूल्य भी हो सकता है। इस स्थिति में, माल-सूची में वृद्धि (अथवा संचय) होती है यदि माल-सूची का मूल्य वर्ष के आरंभ की तुलना में वर्ष के अंत में कम हो तो माल-सूची में ह्रास (अपसंचय) होता है। अत: हम अनुमान लगा सकते हैं कि **एक वर्ष के दौरान किसी फर्म की माल-सूची में परिवर्तन ≡ वर्ष के दौरान फर्म का उत्पादन–वर्ष के दौरान फर्म की बिक्री।**

चिह्न '≡' **तादात्म्य** को बताता है। समानता ('=') चिन्ह के समान तादात्म्य चिन्ह में दायीं ओर की वस्तुओं और बायीं ओर की वस्तुओं के बीच समानता नहीं देखी जाती बल्कि तादात्म्य सदैव इनसे निरपेक्ष होता है। उदाहरण के लिए, हम $2 + 2 \equiv 4$ लिख सकते हैं, क्योंकि यह हमेशा सत्य है। किंतु $2 \times x = 4$ हमें अवश्य लिखना चाहिए। क्योंकि दो बार x, x के विशेष मूल्य के लिए 4 के बराबर होता है (नामत: जब $x = 2$) हमेशा नहीं। $2 \times x \equiv 4$ हम नहीं लिख सकते हैं।

अवलोकन कीजिए कि फर्म का उत्पादन ≡ मूल्यवर्धित + फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुएँ, एक वर्ष के दौरान फर्म की माल-सूची में परिवर्तन ≡ मूल्यवर्धित + फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुएँ – वर्ष के दौरान फर्म की बिक्री।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि फर्म के पास वर्ष के आरंभ में 100 रुपये मूल्य का अबिक्रित स्टॉक था। वर्ष के दौरान इसने 1000 रुपये मूल्य की वस्तु का उत्पादन किया, जिसमें से 800 रुपये मूल्य की वस्तुओं की बिक्री हुई। अत: उत्पादन और बिक्री के बीच अंतर 200 रुपये है। यह 200 रुपये माल-सूची में परिवर्तन है। यह 100 रुपये मूल्य की माल-सूची में जुड़ जाएगी जिससे कि फर्म ने उत्पादन प्रारंभ किया था। अत: वर्ष के अंत में माल-सूची 100 रुपये + 200 रुपये = 300 रुपये

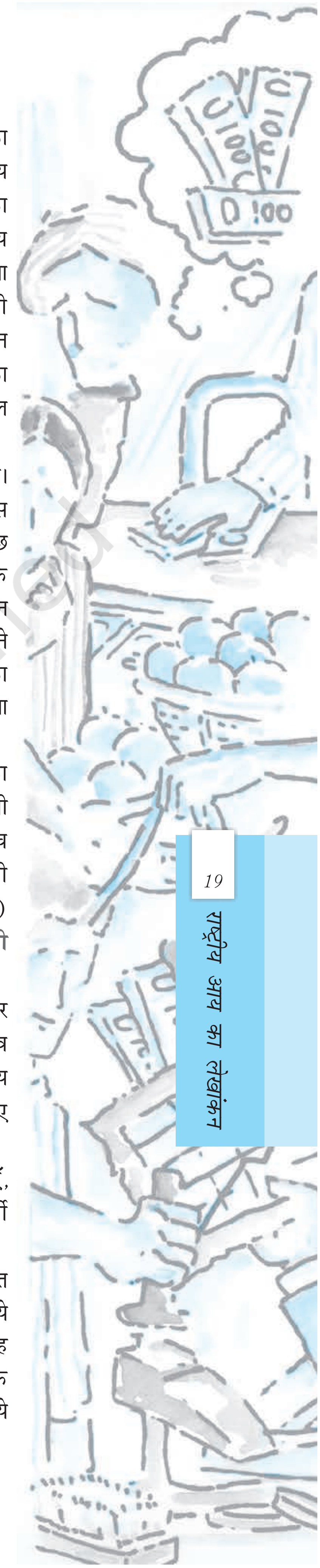

© NCERT not to be republished

है। याद रखें कि माल-सूची में परिवर्तन एक समयावधि के बाद ही होता है इसीलिए, इसे **प्रवाह परिवर्त** कहते हैं।

माल-सूची पूँजी के रूप में समझी जाती है। फर्म की पूँजी स्टॉक में अतिरिक्त योग को निवेश कहते हैं। अतः माल-सूची में परिवर्तन को **निवेश** के रूप में समझा जाता है। निवेश की तीन प्रमुख कोटियाँ हैं। प्रथम, एक फर्म के एक वर्ष में माल-सूची के मूल्य में वृद्धि है, जिसे कि फर्म का निवेश व्यय कहा जाता है। निवेश की दूसरी कोटि स्थिर व्यवसाय निवेश है, जिसे मशीनरी में वृद्धि, फैक्ट्री, भवन, फर्म द्वारा लगाए गए उपकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है। निवेश की अंतिम कोटि आवासीय निवेश है, जो आवास सुविधाओं के योग को बताता है।

माल-सूची में परिवर्तन नियोजित अथवा अनियोजित हो सकता है। बिक्री में अप्रत्याशित गिरावट की स्थिति में फर्म के पास वस्तुओं का अबिक्रित स्टॉक होगा। जिसके बारे में वह आशा नहीं कर सकता था। अतः **माल-सूची का अनियोजित संचय** होगा। इसके विपरीत जहाँ बिक्री में अप्रत्याशित वृद्धि होगी, वहाँ **माल-सूची में अनियोजित अपसंचय** होगा।

इसका उल्लेख निम्नलिखित उदाहरण की सहायता से किया जा सकता है। मान लीजिए कोई फर्म कमीज़ बनाती है। उसके पास वर्ष के आरंभ में 100 कमीज़ की माल-सूची है। अगले वर्ष वह 1000 कमीज़ बेचने की आशा करती है। अतः वह 1000 कमीज़ का उत्पादन करती है और वर्ष के अंत में 100 कमीज़ की माल-सूची रखना चाहती है। किंतु वर्ष के दौरान अप्रत्याशित रूप से कमीज़ की बिक्री कम होती है। फर्म केवल 600 कमीज़ ही बेच पाती है। इसका अर्थ है कि 400 कमीज़ अबिक्रित रह जाती हैं। वर्ष के अंत में फर्म के पास 400 + 100 = 500 कमीज़ें हैं। माल-सूची में 400 की अप्रत्याशित वृद्धि अनियोजित माल-सूची संचय का उदाहरण है। इसके विपरीत यदि बिक्री 1000 से अधिक होती, तो वह भी माल-सूची में अनियोजित अपसंचय होता। उदाहरणार्थ-यदि बिक्री 1050 होती तो न केवल 1000 कमीज़ों के उत्पादन की बिक्री होती, बल्कि फर्म को माल-सूची से भी 50 कमीज़ की बिक्री करना पड़ती। माल-सूची में यह 50 की अप्रत्याशित कटौती माल-सूची में अप्रत्याशित अपसंचय का उदाहरण है।

माल-सूची में नियोजित संचय अथवा **अपसंचय** के उदाहरण क्या हो सकते हैं? मान लीजिए कि किसी वर्ष के दौरान फर्म माल-सूची में 100 कमीज़ से 200 कमीज़ की वृद्धि करना चाहती है। वर्ष के दौरान 1000 कमीज़ की आशा करते हुए (पहले की तरह), फर्म 1000 + 100 = 1100 कमीज़ों का उत्पादन करती है। यदि बिक्री वास्तव में 1000 कमीज़ है, तो फर्म की माल-सूची में सचमुच वृद्धि होती है। माल-सूची का नया स्टॉक 200 कमीज़ है जो वास्तव में फर्म के द्वारा नियोजित थी। यह वृद्धि माल-सूची में नियोजित संचय का उदाहरण है। इसके विपरीत यदि फर्म माल-सूची में 100 से 25 की कटौती करना चाहती है, तो वह 1000 – 75 = 925 कमीज़ का उत्पादन करती है। क्योंकि 100 कमीज़ की माल-सूची में से 75 (ताकि वर्ष के अंत में माल-सूची 100 – 75 = 25 कमीज़ हो, जो कि फर्म की इच्छा है) बेचने की योजना बनाती है। यदि फर्म द्वारा प्रत्याशित बिक्री वास्तव में 1000 होगी, तो फर्म की योजना के अनुसार माल-सूची में 25 कमीज़ की कटौती होगी।

माल-सूची में अनियोजित और नियोजित परिवर्तन के बीच भेद के संबंध के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे।

माल-सूची में परिवर्तन के प्रति ध्यान आकृष्ट करने के लिए हम इसे इस प्रकार लिख सकते हैं:

फर्म i का सकल मूल्यवर्धित $(GVA_i) \equiv$ फर्म i के द्वारा उत्पादित निर्गत का सकल मूल्य

© NCERT not to be republished

Q_i –फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य (Z_i)।

$GVA_i \equiv$ फर्म की बिक्री का मूल्य (V_i) + माल-सूची में परिवर्तन का मूल्य (A_i)–फर्म द्वारा प्रयुक्त मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य (Z_i) (2.1)

समीकरण (2.1) की व्युत्पत्ति के लिए: वर्ष में फर्म की माल-सूची में परिवर्तन $\equiv$ वर्ष के दौरान फर्म का उत्पादन – वर्ष के दौरान फर्म की बिक्री।

यह ध्यातव्य है कि फर्म की बिक्री में घरेलू क्रेताओं को की गई बिक्री ही नहीं बल्कि विदेशी क्रेताओं को की गई बिक्री भी शामिल होती है (बाद वाले को निर्यात कहते हैं)। यह भी उल्लेखनीय है कि ऊपर वर्णित सारे परिवर्त प्रवाह परिवर्त हैं। साधारणत: इनका मापन वार्षिक आधार पर होता है। अत: ये प्रति वर्ष प्रवाह के मूल्य का मापन करते हैं।

फर्म i का निवल मूल्यवर्धित $\equiv GVA_i$ – फर्म i का मूल्यह्रास (D_i)

यदि हम एक वर्ष में अर्थव्यवस्था की सभी फर्मों के सकल मूल्यवर्धित का योग निकालें, तो हमें वर्ष में अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के समस्त परिमाण का मूल्य प्राप्त होगा (जैसे पहले हमने गेहूँ-ब्रेड वाले उदाहरण से किया है)। इस प्रकार का आकलन **सकल घरेलू उत्पाद (*GDP*)** कहलाता है। अत: $GDP \equiv$ अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों के सकल मूल्यवर्धित का कुल योग।

यदि अर्थव्यवस्था में N फर्म हों और प्रत्येक को 1 से N क्रम संख्या में लिखा जाये, तो

$GDP \equiv$ अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों के सकल मूल्यवर्धित का कुल योग

$\equiv GVA_1 + GVA_2 + \cdots + GVA_N$

अत: $$\text{GDP} \equiv \sum_{i=1}^{N} GVA_i \qquad (2.2)$$

Σ प्रतीक एक संकेतन है जिसका प्रयोग संकलन 3 विद्यार्थी हैं, जिनका जेब खर्च क्रमश: 200, 250 तथा 350 रुपये हैं। हम कह सकते हैं कि यदि i वे विद्यार्थी का जेब खर्च X_i है, तो $X_1 = 200$, $X_2 = 250$ तथा $X_3 = 300$। कुल जेब खर्च $X_1+X_2+X_3$ द्वारा दिया जायेगा। कुल योग का संकेतन इसे संक्षिप्त रूप में लिखने के लिए उपयोगी है। $X_1+X_2+X_3$ को लिखा जा सकता है– $\sum_{i=1}^{3} X_i$, जिसका अर्थ है कि 3 व्यक्तियों के लिए X के 1 से 3 तक तीन मान हैं तथा हम 1 से 3 तक व्यक्तियों के लिए X के मानों के योग का उल्लेख कर रहे हैं।

ऊपर दिया गया यह संकेतन समष्टि अर्थशास्त्र में विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि यहाँ हमारा व्यवहार समग्रों के साथ है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में 1000 उपभोक्ता हैं, जिनका उपयोग $C_1, C_2, ---, C_{1000}$ है। यदि हमें इस अर्थव्यवस्था के लिए कुल उपयोग का अभिकलन करना हो, तो हमें इन सभी मानों को जोड़नाा पड़ेगा, जिसका अर्थ है कि इस अर्थव्यवस्था के लिए समग्र उपयोग $C = C_1 + C_2 + --- + C_{1000}$ द्वारा दिया जाएगा। किन्तु संकलन संकेतक (Σ) हमें इसे संक्षिप्त रूप से लिखने देता है। क्योंकि हम व्यक्ति 1 से लेकर 1000 तक के उपयोग के मानों को जोड़ रहे हैं, जहाँ व्यक्ति i के

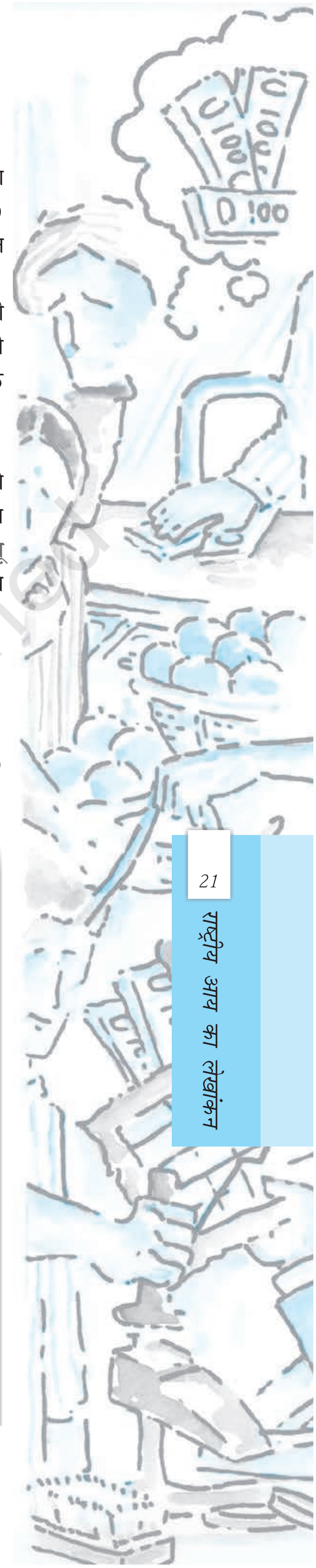

© NCERT not to be republished

द्वारा किए गए उपयोग का मान C_i है, समग्र $C = \sum_{i=1}^{1000} C_i$ उपयोग होगा। सामान्य रूप से, यदि हम व्यक्ति 1 से n तक के लिए, चर X_i की मात्राओं का योग कर रहे हैं, तो इसे $\sum_{i=1}^{n} X_i$ द्वारा दिया जाएगा।

2.2.2 व्यय विधि

सकल घरेलू उत्पाद की गणना की एक वैकल्पिक विधि उत्पाद के माँग पक्ष को दृष्टि में रखकर करती है। इस विधि को व्यय विधि कहते हैं। उपर्युक्त किसान-बेकर वाले उदाहरण में जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, अर्थव्यवस्था में व्यय विधि से निर्गत के समस्त मूल्य की गणना निम्नलिखित विधि से होगी। इस विधि में प्रत्येक फर्म द्वारा प्राप्त अंतिम व्ययों का योग प्राप्त करते हैं। अंतिम व्यय, व्यय का वह अंश है जिसे मध्यवर्ती उद्देश्यों से ग्रहण नहीं किया जाता है। बेकर किसान से 50 रु॰ मूल्य का गेहूँ खरीदता है। यहाँ गेहूँ मध्यवर्ती वस्तु है। अत: यह अंतिम व्यय के श्रेणी में नहीं आता है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था के निर्गत का समस्त मूल्य 200 रु॰ (बेकर द्वारा प्राप्त अंतिम व्यय) + 50 रु॰ (किसान द्वारा प्राप्त अंतिम व्यय) = 250 रु॰ प्रतिवर्ष।

फर्म i निम्नलिखित खातों में अंतिम व्यय प्राप्त कर सकती है। (i) फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर अंतिम उपभोग व्यय। इसे हम C_i से सूचित करते हैं। ध्यातव्य है कि प्राय: परिवार ही उपभोग पर व्यय करते हैं। इसका अपवाद भी हो सकता है, जैसे- फर्म अपने अतिथियों अथवा कर्मचारियों को खिलाने के लिए उपभोग्य पदार्थों का क्रय करती है। (ii) फर्म i द्वारा उत्पादित पूँजीगत वस्तुओं पर दूसरे फर्मों द्वारा उपगत अंतिम निवेश व्यय I_i हैं। अवलोकन कीजिए कि मध्यवर्ती वस्तुएँ, जो सकल घरेलू उत्पाद की गणना में शामिल नहीं है, पर व्यय के विपरीत निवेश व्यय को सम्मिलित किया जाता है। इसका कारण यह है कि निवेश वस्तुएँ फर्म के पास होती है जबकि उत्पादन प्रक्रम मध्यवर्ती वस्तुओं का उपभोग होता है। (iii) वह व्यय जो सरकार फर्म i के द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं पर करती है। हम इसे G_i द्वारा व्यक्त करते हैं हम यह दर्शा सकते हैं कि सरकार द्वारा उपगत अंतिम व्यय में उपभोग और निवेश व्यय दोनों शामिल है। (iv) निर्यात संप्राप्ति जो फर्म i, विदेशों में अपनी वस्तुओं और सेवाओं को बेचकर अर्जित करती है, इसे X_i के द्वारा सूचित किया जाएगा।

अत:, फर्म, के द्वारा प्राप्त संप्राप्ति के कुल योग को निम्न प्रकार दर्शाया जाता है:

$RV_i \equiv$ फर्म i द्वारा प्राप्त अंतिम उपभोग, निवेश, सरकारी और निर्यात संबंधी व्ययों का कुल योग।

$$\equiv C_i + I_i + G_i + X_i$$

यदि फर्मों की संख्या N हो तो N तक फर्मों का कुल योग हमें प्राप्त होगा,

$\sum_{i=1}^{N} RV_i \equiv$ अर्थव्यवस्था के सभी फर्मों द्वारा प्राप्त अंतिम उपभोग, निवेश, सरकारी और निर्यात संबंधी व्यय

$$\equiv \sum_{i=1}^{N} C_i + \sum_{i=1}^{N} I_i + \sum_{i=1}^{N} G_i + \sum_{i=1}^{N} X_i \qquad (2.3)$$

संपूर्ण अर्थव्यवस्था का समस्त अंतिम उपभोग व्यय को C मान लीजिए। ध्यान दीजिए कि C का एक अंश उपभोग वस्तुओं के आयात पर व्यय किया जाता है। मान लीजिए कि उपभोग वस्तुओं के आयात पर व्यय को C_m द्वारा सूचित किया जाता है। अतः $C - C_m$ से घरेलू फर्मों के ऊपर समस्त अंतिम उपभोग व्यय सूचित होता है। इसी प्रकार, $I - I_m$ से घरेलू फर्मों के ऊपर समस्त अंतिम निवेश व्यय सूचित होता है, जहाँ I अर्थव्यवस्था का समस्त अंतिम निवेश व्यय है और इससे I_m विदेशी निवेश वस्तुओं पर व्यय किया जाता है। इसी प्रकार $G - G_m$ समस्त अंतिम सरकारी व्यय का अंश है जिसका व्यय घरेलू फर्मों पर होता है जहाँ G अर्थव्यवस्था में सरकार का समस्त व्यय है और G_m, G का वह अंश है, जिसका व्यय आयात पर होता है।

अतः $\sum_{i=1}^{N} C_i \equiv$ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों द्वारा प्राप्त अंतिम उपभोग व्यय का कुल योग $\equiv C - C_m$; $\sum_{i=1}^{N} I_i \equiv$ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों द्वारा अंतिम निवेश व्यय का कुल योग $\equiv I - I_m$; $\sum_{i=1}^{N} G_i \equiv$ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों के द्वारा प्राप्त अंतिम सरकारी व्यय का कुल योग $\equiv G - G_m$। समीकरण (2.3) में इन्हें प्रतिस्थापित करने पर हमें प्राप्त होगा,

$$\sum_{i=1}^{N} RV_i \equiv C - C_m + I - I_m + G - G_m + \sum_{i=1}^{N} X_i$$

$$\equiv C + I + G + \sum_{i=1}^{N} X_i - (C_m + I_m + G_m)$$

$$\equiv C + I + G + X - M$$

यहाँ $X \equiv \sum_{i=1}^{N} X_i$ अर्थव्यवस्था के निर्यात पर विदेशियों द्वारा किये गए समस्त व्यय को सूचित करता है। $M \equiv C_m + I_m + G_m$ अर्थव्यवस्था के द्वारा उपगत समस्त आयात व्यय है।

हम जानते हैं कि GDP $\equiv$ अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों द्वारा प्राप्त अंतिम व्यय का कुल योग। दूसरे शब्दों में,

$$GDP \equiv \sum_{i=1}^{N} RV_i \equiv C + I + G + X - M \qquad (2.4)$$

व्यय विधि के अनुसार समीकरण (2.4) सकल घरेलू उत्पाद को व्यक्त करता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि दांयी ओर दिए गए पाँच चरों में से, निवेश व्यय, I, सबसे अधिक परिवर्तनशील है।

2.2.3 आय विधि

आरंभ में जैसा कि हमने उल्लेख किया है कि अर्थव्यवस्था में अंतिम व्यय का योग उत्पादन के सभी कारकों की सम्मिलित आय (अंतिम वस्तु पर किया गया व्यय है, इसमें मध्यवर्ती वस्तु पर किया गया व्यय सम्मिलित नहीं है) के बराबर होता है। यहाँ इस सरल विचार का अनुपालन होता है कि सभी फर्मों के द्वारा सम्मिलित रूप से अर्जित *राजस्व* का वितरण उत्पादन के कारकों के बीच वेतन, मज़दूरी, लाभ, ब्याज अर्जन और लगान के रूप में होना चाहिए। मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में परिवारों की संख्या M है। i वें परिवार के द्वारा किसी वर्ष विशेष में प्राप्त मज़दूरी और वेतन को W_i मान लें। इसी प्रकार, P_i, In_i, R_i क्रमशः सकल लाभ, ब्याज अदायगी और लगान जो कि i वें परिवार के द्वारा किसी वर्ष विशेष में प्राप्त होता है। अतः सकल घरेलू उत्पाद

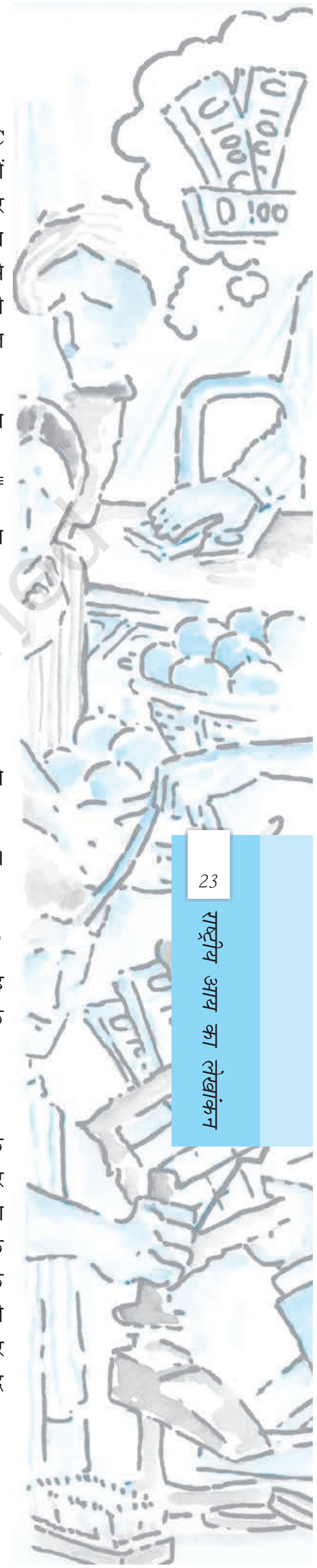

© NCERT not to be republished

निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा–

सकल घरेलू उत्पाद $\equiv \sum_{i=1}^{M} W_i + \sum_{i=1}^{M} P_i + \sum_{i=1}^{M} In_i + \sum_{i=1}^{M} R_i \equiv W + P + In + R$ (2.5)

यहाँ, $\sum_{i=1}^{M} W_i \equiv$ W, $\sum_{i=1}^{M} P_i \equiv$ P, $\sum_{i=1}^{M} In_i \equiv In, \sum_{i=1}^{M} R_i \equiv R$. समीकरण (2.2), (2.4) और (2.5) को एक साथ लेने पर हमें प्राप्त होगा–

सकल घरेलू उत्पाद $\equiv \sum_{i=1}^{N} GVA_i \equiv C + I + G + X - M \equiv W + P + In + R$ (2.6)

यह दृष्टिगत है कि तादात्म्य (2.6) में *I* फर्म द्वारा ग्रहण किए गए नियोजित और अनियोजित दोनों प्रकार के निवेशों का बोध होता है।

चूँकि तादात्म्य (2.2), (2.4) और (2.6) एक ही प्रकार के परिवर्त, सकल घरेलू उत्पाद की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं, इसीलिए हम रेखाचित्र 2.2 के द्वारा समतुल्यता को प्रदर्शित कर सकते हैं।

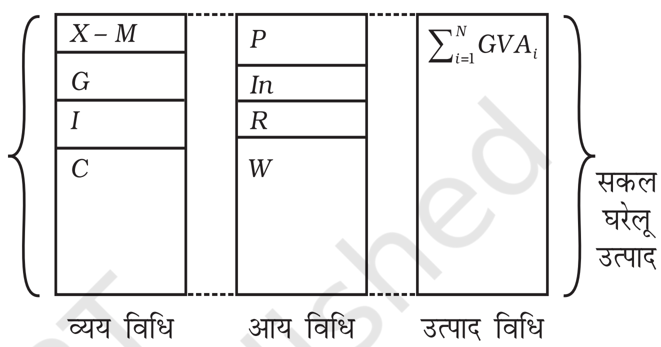

रेखाचित्र 2.2: सकल घरेलू उत्पाद का तीन विधियों द्वारा आरेखीय चित्रण

यह देखने के लिए, कि कैसे GDP के आंकलन के लिए तीनों विधियों से समान उत्तर मिलता है, आइये, हम एक संख्यात्मक उदाहरण पर नजर डालें। उदाहरण: दो फर्में A तथा B हैं। मान लीजिए, फर्म A कोई कच्चा माल प्रयोग नहीं करती, तथा 50 रु. मुल्य की कपास का उत्पादन करती है। फर्म A अपनी कपास फर्म B को बेचती है, जो इसका प्रयोग कपड़े का उत्पादन करने के लिए करती है। फर्म B उत्पादित कपड़े को 200 रु. में उपभोक्ताओं को बेच देती है।

1. उत्पादन चरण में GDP या मूल्य वृद्धि विधि

   याद कीजिए, मूल्य वृद्धि (VA) = बिक्री – मध्यवर्ती वस्तुऐं

   इस प्रकार $VA_A = 50 - 0 = 50$

   $VA_B = 200 - 50 = 150$

   अत:

   $GDP = VA_A + VA_B = 200$

तालिका 2.2: फर्म A एवं B के सकल घरेलू उत्पाद की वितरण

	फर्म A	फर्म B
बिक्री	50	200
मध्यवर्ती खपत	0	50
मूल्य वृद्धि	50	150

© NCERT not to be republished

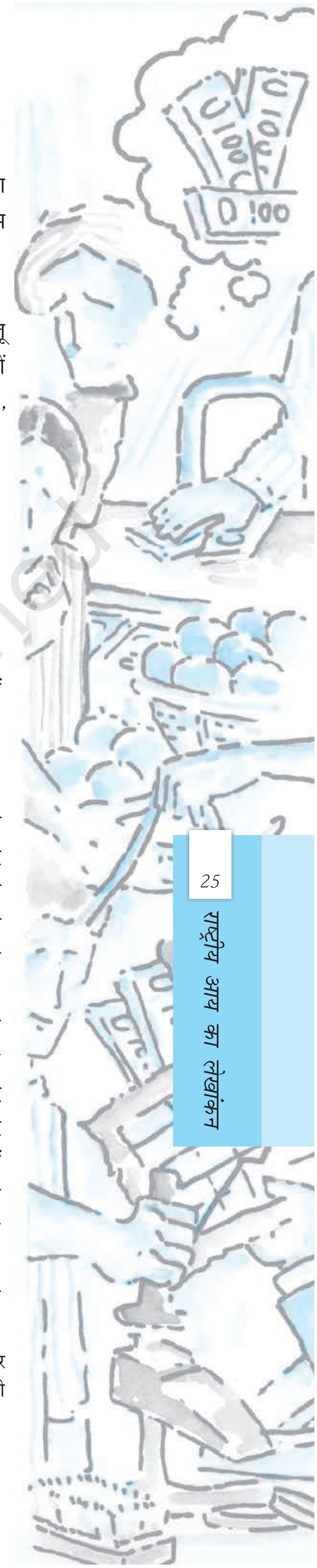

2. निस्तारण के चरण में GDP या कुल व्यय विधि

   याद कीजिए, GDP = अंतिम प्रयोग के लिए, वस्तुओं तथा सेवाओं पर किये गए उपयोग का जोड़। उपरोक्त उदाहरण में, उपभोक्ताओं द्वारा कपड़े पर किया गया उपयोग अंतिम उपयोग है। अतः GDP = 200

3. वितरण के चरण में GDP या आय विधि

   आइये, फर्म A तथा फर्म B पर फिर से एक नजर ड़ालें। फर्म A एवं B के सकल घरेलू उत्पाद वितरण करेगा। अब, A द्वारा प्राप्त 50 रु. में से, मान लीजिये फर्म 20 रु. श्रमिकों को मजदूरी के रूप में देती है तथा शेष 30 को लाभ के रूप में रख लेती है। इसी प्रकार, B फर्म 60 रु. मजदूरी के रूप में तथा 90 लाभ के रूप में रखती है।

तालिका 2.3: **फर्म A एवं B के सकल घरेलू उत्पाद की वितरण**

	फर्म A	फर्म B
मजदूरी	20	60
लाभ	**30**	**90**

याद कीजिए, आय विधि द्वारा GDP = साधन आय का जोड़, जो फर्म A तथा B के श्रामिकों द्वारा प्राप्त मजदूरी तथा लाभ का योग है, जो कि 80 + 120 = 200 के बराबर[4] है।

2.2.4 साधन लागत, आधारित कीमतें तथा बाज़ार कीमतें

भारत में, राष्ट्रीय आय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मापक, साधन लागत पर GDP रहा है। भारत सरकार का केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (CSO) साधन लागत पर GDP तथा बाजार कीमत पर GDP का आकलन करता रहा है। 2015 में किए गए पुनः अवलोकन में, CSO ने 'साधन लागत पर GDP' को 'आधारिक कीमतों पर सकल मूल्य वृद्धि' (GVA) द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया है तथा अब बाज़ार कीमत पर GDP, जिसे अब केवल GDP कहा जाता है, अब सर्वाधिक महत्वपूर्ण मापक है।

GVA के विचार पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। यह एक अर्थव्यवस्था में उत्पादित उत्पादन में से मध्यवर्ती उपभोग (वह उत्पादन जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन में चला जाता है तथा जिसका प्रयोग अंतिम उपयोग के लिए नहीं होता) को घटाने पर प्राप्त होता है। यहाँ, हम आधार वर्ष की कीमतों की अवधारणा की चर्चा करेंगे। साधन लागत, आधारिक कीमतों तथा बाजार कीमतों में विभेद, शुद्ध उत्पादन करों (उत्पादन कर–उत्पादन उपदान) तथा शुद्ध उत्पाद करों (उत्पाद कर–उत्पाद उपदान) में विभेद, पर आधारित है। उत्पादन कर तथा उपदान, उत्पादन के संदर्भ में होते हैं तथा उत्पादन की मात्रा से स्वतंत्र होते हैं। जैसे – भूमि कर, स्टांप शुल्क तथा पंजीकरण शुल्क। दूसरी ओर, उत्पाद कर तथा उपदान, प्रति ईकाई उत्पाद के संदर्भ में होते हैं – जैसे उत्पादन कर, सेवा कर, निर्यात तथा आयात पर लगाए गए कर। साधन लागत में केवल

[4] इस उदाहरण में हमने किराया और ब्याज को कारक भुगतान में शामिल नहीं किया है। इससे मूल परिणामों में अंतर नहीं आयेगा। मज़दूरी का भुगतान करने के बाद फर्म शेष मूल्यों को किराया, ब्याज एवं मुनाफा के बीच वितरित करती है (इसे ऑपरेटिंग अधिशेष कहा जाता है)।

© NCERT not to be republished

उत्पादन के साधनों को किया गया भुगतान शामिल होता है, तथा इसमें कोई कर शामिल नहीं होता। बाज़ार कीमतों पर GDP के आकलन के लिए, हमें साधन लागत में करों को जोड़ना तथा उपदान को घटाना पड़ता है। आधारिक कीमतें यहीं कहीं बीच में हैं– इनमें उत्पादन करों को (उत्पादन उपदान घटाकर) शामिल किया जाता है किंतु उत्पाद करों (उत्पाद उपदान घटाकर) को नहीं। अत: बाजार कीमतें प्राप्त करने के लिए, हमें आधारिक कीमतों में उत्पाद करों (उत्पाद उपदान घटाकर) को जोड़ना पड़ता है।

जैसे कि ऊपर कहा गया है, अब CSO आधारिक कीमतों पर GVA का निर्मोचन करता है। इस प्रकार, इसमें शुद्ध उत्पादन कर शामिल होते हैं किंतु शुद्ध उत्पाद कर नहीं। बाज़ार कीमतों पर GDP पर पहुँचने के लिए, हमें आधारिक कीमतों पर GVA में शुद्ध उत्पाद कर जोड़ने पड़ते हैं। इस प्रकार,

साधन लागत पर GVA = आधारिक कीमतों पर GVA + शुद्ध उत्पादन कर

आधारिक कीमतों पर GVA = बाज़ार कीमतों पर GVA + शुद्ध उत्पाद कर

इस अध्याय के अंत में दी गई सारणी 2.2, बाज़ार कीमतों पर तथा आधारित कीमतों पर प्रस्तुत करती है, जबकि सारणी 2.3 कुल व्यय के दृष्टिकोण से GDP के संघटक प्रस्तुत करती है।

2.3 कुछ समष्टि अर्थशास्त्रीय तादात्म्य

सकल घरेलू उत्पाद में किसी घरेलू अर्थव्यवस्था के अंतर्गत एक वर्ष के दौरान अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के समस्त उत्पादन की माप की जाती है। किंतु इसका संपूर्ण उत्पादन देश की जनता को प्राप्त नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए, भारत के नागरिक सऊदी अरब में मज़दूरी अर्जित करते हैं, जो सऊदी अरब के सकल घरेलू उत्पाद में शामिल होगा। विधिक रूप से वह एक भारतीय है। भारतीयों के द्वारा अर्जित आय अथवा भारतीय के स्वामित्व के उत्पादन के कारकों के अर्जित आय की माप करने की क्या कोई विधि है? जब हम ऐसा करते हैं, तो समता बनाये रखने के लिए हमें विदेशियों द्वारा अर्जित आय, जो हमारी घरेलू अर्थव्यवस्था के अंतर्गत कार्यरत है अथवा विदेशियों के स्वामित्व वाले उत्पादन के कारकों को की गयी अदायगी को अवश्य घटा देना चाहिए। उदाहरणार्थ, कोरियाई स्वामित्व की हुंडई कार फैक्ट्री के द्वारा अर्जित लाभ को भारत के सकल घरेलू उत्पाद से घटाना होगा। समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्त में इस प्रकार के जोड़ और घटाव को **सकल राष्ट्रीय उत्पाद** के रूप में जाना जाता है। अत: इसकी परिभाषा निम्नलिखित रूप में की जाती है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद ≡ सकल घरेलू उत्पाद + शेष विश्व में नियुक्त उत्पादन के घरेलू कारकों द्वारा अर्जित कारक आय – घरेलू अर्थव्यवस्था में नियोजित शेष विश्व के उत्पादन के कारकों द्वारा अर्जित कारक आय।

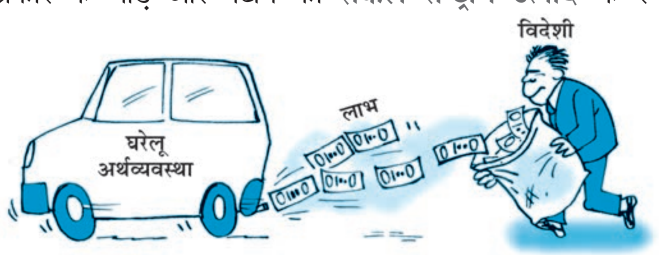

हमारे घरेलू अर्थव्यवस्था में विदेशियों का अंश है। अपनी कक्षा में इस पर परिचर्चा करें।

इस प्रकार, सकल राष्ट्रीय उत्पाद ≡ सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय (विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय = शेष विश्व में नियोजित उत्पादन के घरेलू कारकों के द्वारा अर्जित कारक आय – घरेलू अर्थव्यवस्था में नियोजित शेष विश्व के उत्पादन के कारकों द्वारा अर्जित कारक आय)।

© NCERT not to be republished

पूर्व में हम देख चुके हैं कि टूट-फूट के कारण वर्ष के दौरान पूँजी के एक अंश का उपभोग कर लिया जाता है। इस टूट-फूट को मूल्यह्रास कहते हैं। स्वाभाविक है कि मूल्यह्रास किसी व्यक्ति की आय का अंश नहीं होता। यदि हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद से मूल्यह्रास को घटाते हैं, तो हमें समस्त आय की जो माप प्राप्त होती है, उसे **निवल राष्ट्रीय उत्पाद** कहते हैं। इस प्रकार–

निवल राष्ट्रीय उत्पाद ≡ सकल राष्ट्रीय उत्पाद – मूल्यह्रास।

उल्लेखनीय है कि इन परिवर्तों का मूल्यांकन बाज़ार कीमत पर किया जाता है। उपर्युक्त व्यंजक के माध्यम से हमें बाज़ार कीमत पर मूल्यांकित निवल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य प्राप्त होता है, किंतु बाज़ार कीमत में **अप्रत्यक्ष कर** शामिल रहते हैं। अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं और सेवाओं पर आरोपित किये जाते हैं। फलत: कीमत बढ़ जाती है। अप्रत्यक्ष कर सरकार को उपार्जित होता है। निवल राष्ट्रीय उत्पाद का वह अंश जो वास्तव में उत्पादन के कारकों को उपार्जित होता है, उसी गणना करने के क्रम में बाज़ार कीमत पर मूल्यांकित राष्ट्रीय निवल उत्पाद से अप्रत्यक्ष करों को घटाया जाता है। इसी प्रकार, कुछ वस्तुओं की कीमतों पर सरकार द्वारा **उपदान** प्रदान किया जा सकता है (भारत में पेट्रोल पर सरकार अत्यधिक कर लगाती है जबकि रसोई गैस पर उपदान प्रदान किया जाता है)। अत: हमें बाज़ार कीमतों पर मूल्यांकित निवल राष्ट्रीय उत्पाद में उपदान को शामिल करने की आवश्यकता होती है। ऐसा करने पर हमें जो माप प्राप्त होता है, उसे कारक लागत पर **निवल राष्ट्रीय उत्पाद** अथवा **राष्ट्रीय आय** कहते हैं। अत:, कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद ≡ राष्ट्रीय आय (NI) ≡ बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद – (अप्रत्यक्ष कर – उपदान) ≡ बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद – निवल अप्रत्यक्ष कर।

(निवल अप्रत्यक्ष कर ≡ अप्रत्यक्ष कर – उपदान)

राष्ट्रीय आय को हम पुन: छोटी-छोटी कोटियों में उपविभाजित कर सकते हैं। अब हम परिवारों के द्वारा प्राप्त राष्ट्रीय आय के अंश के लिए अभिव्यक्ति प्राप्त करें। इसे हम **वैयक्तिक आय** कहेंगे। प्रथम, मान लीजिए कि राष्ट्रीय आय जो फर्मों और सरकारी उद्यमों के द्वारा अर्जित की जाती है; में से लाभ का एक अंश उत्पादन के कारकों के बीच वितरित नहीं होता है, इसे **अवितरित लाभ** कहते हैं। चूँकि अवितरित लाभ परिवारों को उपार्जित नहीं होता है, इसलिए वैयक्तिक आय की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय आय से अवितरित लाभ को घटा दिया जाता है। इसी प्रकार, निगम कर जो फर्मों की आय पर आरोपित होता है, को भी राष्ट्रीय आय से घटाना होगा क्योंकि यह परिवारों को उपार्जित नहीं होता है। दूसरी ओर, परिवार निजी फर्मों से अथवा सरकार से अपने अग्रिम पूर्व ऋण पर ब्याज अदायगी प्राप्त करता है। परिवार को फर्मों और सरकारों को भी ब्याज अदा करना पड़ता है, यदि फर्म और सरकार से मुद्रा ऋण के रूप में ग्रहण करते हैं। अत: हमें परिवारों द्वारा फर्मों और सरकार को अदा किये गये निवल ब्याज को घटाना होगा। परिवार सरकार और फर्मों (उदाहरण के लिए पेंशन, छात्रवृत्ति, पुरस्कार) से अंतरण अदायगी प्राप्त करते हैं, परिवारों की वैयक्तिक आय की गणना करने के लिए हमें अंतरण अदायगी को जोड़ना होगा।

अत: वैयक्तिक आय ≡ राष्ट्रीय आय – अवितरित लाभ – **परिवारों द्वारा की गयी निवल ब्याज अदायगी–निगम कर + सरकार और फर्मों से परिवारों को की गयी अंतरण अदायगी।**

यद्यपि वैयक्तिक आय पूर्णरूपेण परिवारों की आय नहीं है, उन्हें वैयक्तिक आय से कर अदायगी करनी पड़ती है। **यदि वैयक्तिक आय से वैयक्तिक कर अदायगी** (उदाहरण के लिए आयकर) और **गैरकर अदायगी** (जैसे, शुल्क) को घटा दें तो हमें जो प्राप्त होगा, उसे **वैयक्तिक प्रयोज्य आय** कहते हैं। इस प्रकार,

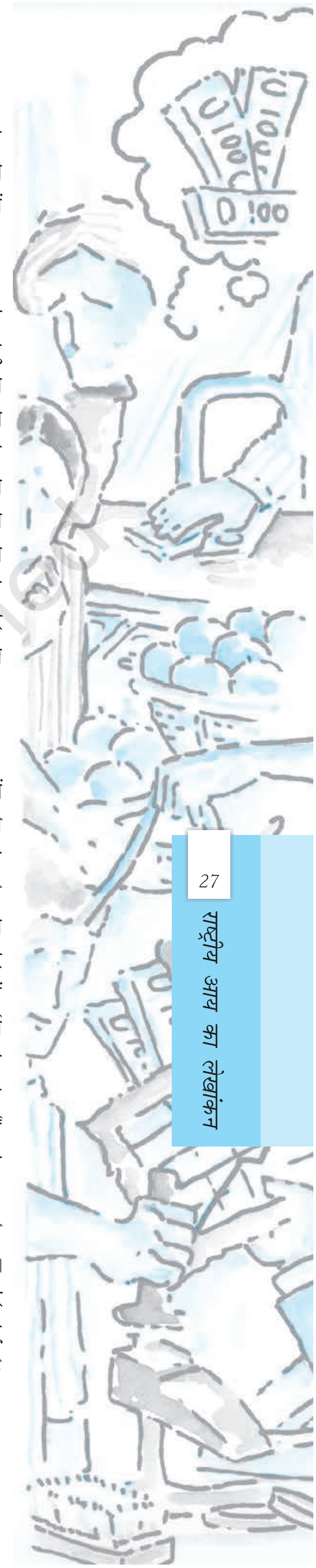

© NCERT not to be republished

वैयक्तिक प्रयोज्य आय ≡ वैयक्तिक आय – वैयक्तिक कर अदायगी – गैरकर अदायगी।

वैयक्तिक प्रयोज्य आय परिवारों की समस्त आय का अंश है। वे इसके एक अंश का उपभोग करने का निर्णय ले सकते हैं और शेष की बचत कर सकते हैं। रेखाचित्र 2.3 में इन प्रमुख समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्तों के बीच संबंधों को रेखाचित्रीय प्रतिचित्रण किया गया है। भारत के कुछ प्रधान समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्ती की एक तालिका (वर्ष 1990–91 से 2004–05) अध्याय के अंत में दी गयी है, जिससे पाठकों को उनके वास्तविक मूल्यों का ज्ञान मोटे तौर पर प्राप्त होगा।

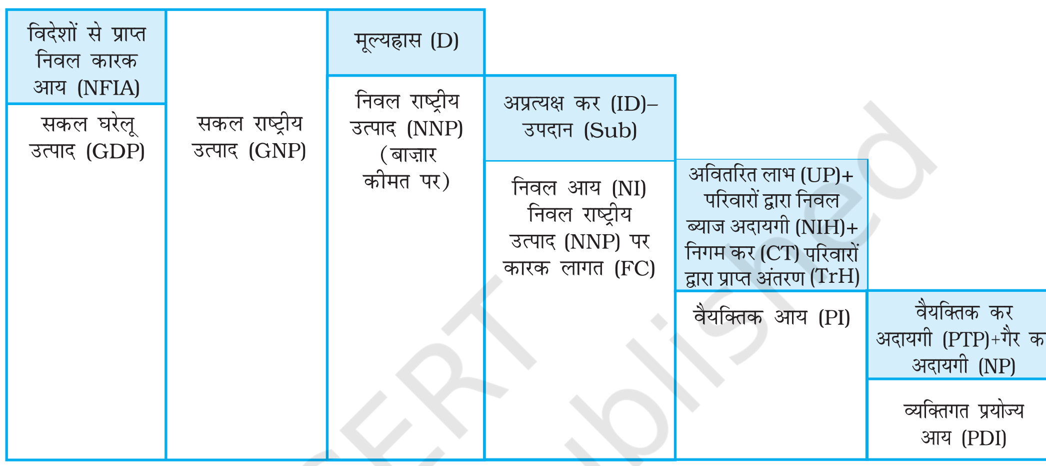

रेखाचित्र 2.3: समस्त आय की उपकोटियों का आरेखीय चित्रण। NFIA: विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय, D: मूल्यह्रास, ID: अप्रत्यक्ष कर, Sub: उपदान, UP: अवितरित लाभ, NIH: परिवारों द्वारा निवल ब्याज अदायगी, CT: निगम कर, TrH: परिवारों द्वारा प्राप्त अंतरण, PTP: वैयक्तिक कर अदायगी, NP: गैर-कर अदायगी।

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय और निजी आय

भारत में समस्त समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्तों की इन कोटियों के अलावे कुछ अन्य समस्त आय कोटियाँ भी हैं, जिनका प्रयोग राष्ट्रीय आय लेखांकन में होता है।

- **राष्ट्रीय प्रयोज्य आय** = बाज़ार कीमतों पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद + शेष विश्व के दूसरे देशों से प्राप्त अन्य चालू अंतरण।

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय के परिप्रेक्ष्य का विचार यह है कि इससे जानकारी मिलती है कि घरेलू अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की अधिकतम मात्रा कितनी है। शेष विश्व में चालू अंतरण में उपहार, सहायता राशि इत्यादि आते हैं।

- **निजी आय** = निजी क्षेत्र को उपगत होने वाले घरेलू उत्पाद से प्राप्त कारक आय + राष्ट्रीय ऋण ब्याज + विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय + सरकार से चालू अंतरण + शेष विश्व से अन्य निवल अंतरण।

© NCERT not to be republished

तालिका 2.4: **बुनियादी राष्ट्रीय आय समुच्चय**[5]

1.	बाज़ार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{mp})	• GDP, एक देश की घरेलू सीमा में, एक वर्ष में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का बाजार मूल्य है। • सभी निवासियों तथा गैर-निवासियों द्वारा दिए गए उत्पादन को शामिल किया जाता है, चाहे उत्पादन का स्वामित्व एक स्थानीय कंपनी का हो या एक विदेशी स्वामित्व का। • सभी चीजों का मापन बाजार कीमतों पर होता है। $GDP_{MP} = C + I + G + X - M$
2.	साधन लागत पर GDP (GDP_{FC})	• साधन लागत पर GDP, बाज़ार कीमतों पर GDP में से शुद्ध अप्रत्यक्ष कर घटाने पर प्राप्त होती है। • बाज़ार कीमतें वही कीमतें हैं जो उपभोक्ताओं द्वारा की जाती हैं। बाज़ार कीमतों में उत्पाद करों तथा उपदानों को भी शामिल किया जाता है। 'साधन लागत' शब्द का उपयोग उत्पादकों द्वारा दी गई कीमत के लिए किया जाता है। अतः साधन लागत, बाजार कीमतों में से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को घटाने पर प्राप्त होती है। साधन लागत पर GDP एक देश की घरेलू सीमा में एक वर्ष में फर्मों द्वारा किये गए उत्पादन के मौद्रिक मूल्य का माप है। $GDP_{FC} = GDP_{MP} - NIT$
3.	बाजार कीमतों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद	• इससे नीति निर्धारकों को यह पता चलता है कि चालू GDP को बनाए रखने के लिए देश को कितना खर्चा करना पड़ेगा। यदि मूल्यह्रास के कारण हुई पूँजी स्टॉक की हानि को विस्थापित नहीं किया जाता, तो GDP घटेगा। $NDP_{MP} = GDP_{MP} - Dep.$
4.	साधन लागत पर (NDP_{FC})	• साधन लागत पर NDP उत्पादन के साधनों द्वारा मजदूरी, लाभ, लगान तथा ब्याज के रूप में, देश की घरेलू सीमा के भीतर अर्जित आय है। $NDP_{FC} = NDP_{MP}$ – निवल उत्पाद कर – निवल उत्पादन कर

[5] कुछ अन्य एजेंसियों के साथ भागीदारी में संयुक्त राष्ट्र द्वारा दिये गये राष्ट्रीय खाता 2008 (एस.एन.ए.2008) के बाद देश अब नये समुच्चय पर स्विच कर रहा है। भारत कुछ साल पहले इन समुच्चयों में स्थानांतरित हुआ था।

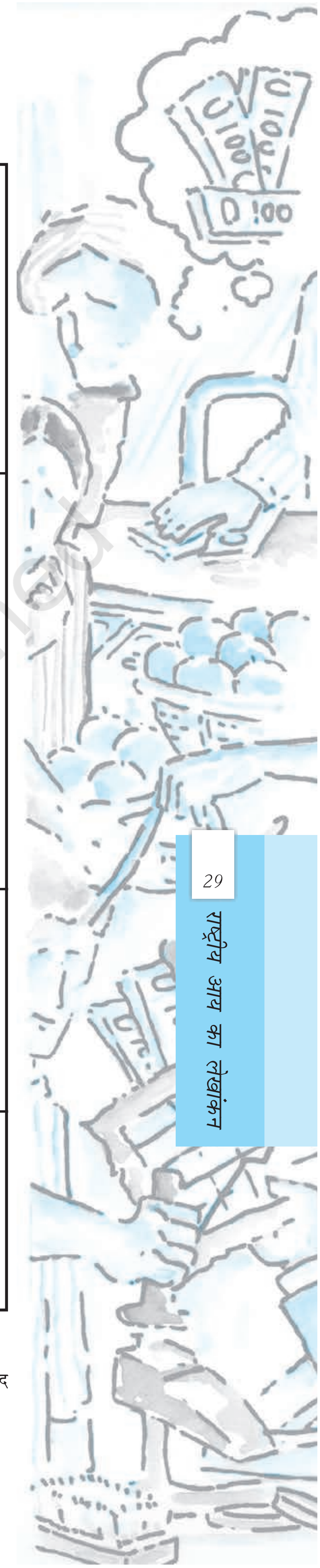

© NCERT not to be republished

5.	बाज़ार कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP_{MP})	• एक देश के सभी उत्पादन के साधनों द्वारा एक वर्ष में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य GNP_{MP} है तथा इसे बाजार कीमतों पर मापा जाता हैं। • GNP_{MP} में एक देश के सभी नागरिकों द्वारा उत्पादित आर्थिक उत्पादन को शामिल किया जाता है, चाहे वे नागरिक राष्ट्रीय सीमा के भीतर स्थापित हों, अथवा विदेशों में। • सभी चीजों का मूल्यांकन बाज़ार कीमतों पर होता हैं। $GNP_{MP} = GDP_{MP} + NFIA$
6.	साधन लागत पर GNP (GNP_{FC})	• साधन लागत पर GNP एक अर्थव्यवस्था के सभी उत्पादन के साधनों द्वारा प्राप्त उत्पादन का माप है। $GNP_{FC} = GNP_{MP}$ – निवल उत्पाद कर – निवल उत्पादन कर
7.	बाज़ार कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{MP})	• यह इस बात का मापदंड है कि एक देश एक निश्चित समय अवधि में कितना उपयोग कर सकता है। NNP देश के नागरिकों द्वारा किए गए उत्पादन का माप है चाहे वह उत्पादन देश की घरेलू सीमा में किया गया हो या विदेशों में। $NNP_{-MP} = GNP_{MP} - DEP$ $NNP_{MP} = NDP_{MP} + NFIA$
8.	साधन लागत पर NNP (NNP_{FC}) अथवा राष्ट्रीय आय (NI)	• साधन लागत पर NNP एक देश के उत्पादन के सभी साधनों द्वारा मजदूरी, लाभ, लगान तथा ब्याज के रूप में एक वर्ष में अर्जित साधन आय का योग है। • यह राष्ट्रीय उत्पाद है, किंतु राष्ट्रीय सीमा में उत्पादन तक ही सीमित नहीं है। यह शुद्ध घरेलू साधन आय तथा विदेशों से प्रान्त शुद्ध साधन का योग है। $NI = NNP_{MP}$ – निवल उत्पाद कर – निवल उत्पादन कर = $NDP_{FC} + NFIA = NNP_{FC}$
9.	सकल मूल्य वृद्धि बाजार कीमत पर	• सकल घरेलू उत्पाद बाजार कीमतों पर
10.	आधारित कीमत पर सकल मूल्य वृद्धि	• GVA_{MP} – निवल उत्पाद कर
11.	उत्पादन लागत पर सकल मूल्य वृद्धि	• आधारित कीमत पर सकल मूल्य वृद्धि – निवल उत्पादन कर

© NCERT not to be republished

2.4 मौद्रिक सकल घरेलू और वास्तविक कर

इस पूरी चर्चा कि एक अव्यक्त मान्यता यह है कि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें हमारे अध्ययन की अवधि के दौरान नहीं बदलती हैं। यदि कीमतों में परिवर्तन होता है, तो सकल घरेलू उत्पादों में तुलना करने में कठिनाइयाँ आ सकती है। यदि हम दो लगातार वर्षों में किसी देश के घरेलू उत्पादों की माप करें और देखें कि घरेलू उत्पादों की माप दूसरे वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का आँकड़ा पूर्व वर्ष के आँकड़े का दुगुना है, तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि देश के उत्पादन का परिमाण दुगुना हो जायेगा। किंतु यह संभव है कि दोनों वर्षों में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें ही केवल दुगुनी हुई है, जबकि उत्पादन स्थिर है।

अतः विभिन्न देशों के सकल घरेलू उत्पाद के आँकड़ों (अन्य समष्टि अर्थशास्त्रीय परिवर्तो) की तुलना अथवा विभिन्न समयों में एक ही देश के सकल घरेलू उत्पाद के आँकड़ों की तुलना करने के क्रम में हम चालू बाज़ार कीमतों पर मूल्यांकित सकल घरेलू उत्पादों पर विश्वास नहीं कर सकते हैं। तुलना के लिए हम **वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद** की सहायता ले सकते हैं। वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की गणना इस प्रकार की जाती है कि वस्तुओं का मूल्यांकन **कीमतों के कुछ स्थिर समुच्चय** या **(स्थिर कीमतों)** पर होता है। चूँकि ये कीमतें स्थिर रहती हैं, इसीलिए यदि वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद में परिवर्तन होता है, तो यह निश्चित है कि उत्पादन के परिमाण में परिवर्तन होगा। इसके विपरीत **मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद** वर्तमान कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद का मूल्य मात्र ही है। उदाहरण के लिए, कोई देश केवल ब्रेड का उत्पादन करता है। वर्ष 2000 में उसने ब्रेड की 100 इकाइयों का उत्पादन किया और प्रति ब्रेड कीमत 10 रु॰ थी। वर्तमान कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद 1000 रु॰ थी। वर्ष 2001 में उसी देश में 15 रु॰ प्रति ब्रेड की कीमत पर ब्रेड की 110 इकाइयों का उत्पादन किया गया। अत: 2001 में मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद 1650 रु॰ (=110 × 15 रु॰) था। 2001 में वर्ष 2000 (वर्ष 2000 को आधार वर्ष कहा जाएगा) की कीमत पर वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की गणना करने पर 110 × 10 रु॰ = 1100 रु॰ होगा।

ध्यान दीजिए कि मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद और वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात से हमें यह ज्ञात होता है कि कीमत में **आधार वर्ष** (जिस वर्ष की कीमतों का प्रयोग वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की गणना में की जाती है) की तुलना में चालू वर्ष में किस प्रकार वृद्धि हुई। चालू वर्ष के वास्तविक और मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद की गणना में उत्पादन का परिमाण स्थिर रहता है। अतः इन मापों में अंतर केवल आधार वर्ष और चालू वर्ष की कीमत में अंतर के कारण ही होता है। मौद्रिक और वास्तविक सकल घरेलू उत्पादों का अनुपात सुपरिचित कीमत सूचकांक होता है। इसे **सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक** कहते हैं। अतः सकल घरेलू उत्पाद से मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद तथा gdp से वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद का बोध होता है। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक $\frac{\text{GDP}}{\text{gdp}}$।

कभी-कभी अवस्फीतिक को प्रतिशत के पदों में भी प्रदर्शित किया जाता है। इस स्थिति में, अवस्फीतिक = $\frac{\text{GDP}}{\text{gdp}} \times 100$। यदि पूर्व उदाहरण सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक $\frac{1,650}{1,100} = 1.50$ (प्रतिशत के पदों में 150%) है। इससे सूचित होता है कि 2001 में उत्पादित ब्रेड की कीमत 2000 की कीमत की तुलना में 1.5 गुणी थी। जो सत्य है, क्योंकि ब्रेड की कीमत वास्तव में

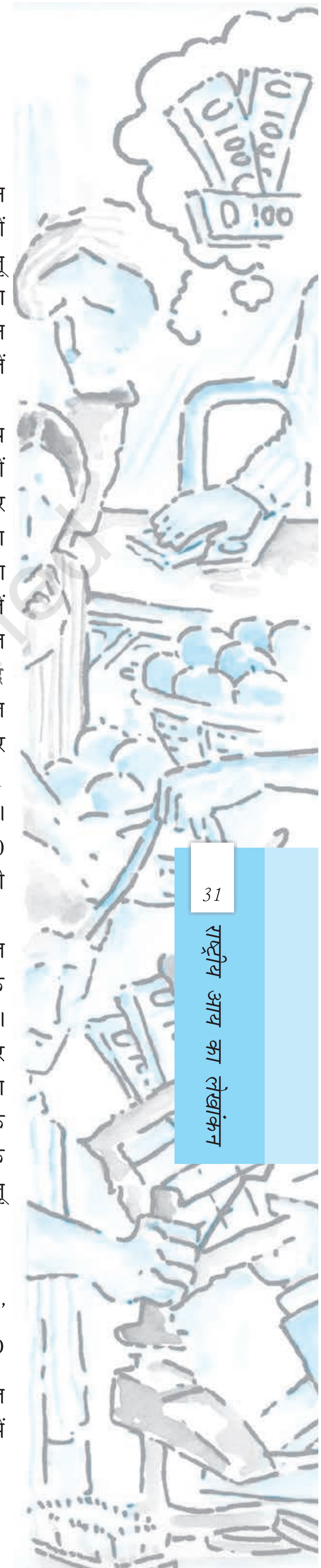

© NCERT not to be republished

10 रु॰ से बढ़कर 15 रु॰ हो गई थी। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक की तरह हमारे पास सकल राष्ट्रीय उत्पाद अवस्फीतिक भी हो सकता है।

अर्थव्यवस्था में कीमतों में परिवर्तन की माप करने की दूसरी विधि भी है जिसे **उपभोक्ता कीमत सूचकांक (CPI)** कहते हैं। यह वस्तुओं की दी गई टोकरी, जिनका क्रय प्रतिनिधि उपभोक्ता करते हैं, का कीमत सूचकांक है। उपभोक्ता कीमत सूचकांक को प्रायः प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। हम दो वर्षों पर विचार करते हैं – एक आधार वर्ष होता है तथा दूसरा चालू वर्ष। हम आधार वर्ष में वस्तुओं की दी हुई टोकरी के क्रय की लागत की गणना करते हैं। फिर हम परवर्ती को पूर्ववर्ती के प्रतिशत के रूप में व्यक्त करते हैं। इससे हमें आधार वर्ष से संबंधित चालू वर्ष का उपभोक्ता कीमत सूचकांक प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, एक अर्थव्यवस्था को लीजिए जिसमें दो वस्तुओं, चावल और वस्त्र का उत्पादन होता है। एक प्रतिनिधि उपभोक्ता एक वर्ष में 90 किलोग्राम चावल और 5 टुकड़े वस्त्र का क्रय करता है। मान लीजिए कि वर्ष 2000 में एक किलोग्राम चावल की कीमत 10 रु॰ थी और वस्त्र के एक टुकड़े की कीमत 100 रु॰ थी। अतः उपभोक्ता को 2000 में चावल पर बहुत अधिक अर्थात 10 ×90 = 900 रु॰ व्यय करना पड़ा। इसी प्रकार उसने 100 रु॰ ×5 = 500 रु॰ वस्त्र पर व्यय किया। दोनों मदों का योग, 900 रु॰ + 500रु॰ = 1400 रु॰

अब मान लीजिए कि एक किलोग्राम चावल और एक टुकड़ा वस्त्र की कीमतें वर्ष 2005 में क्रमशः 15 रु॰ और 120 रु॰ हो गई। चावल और वस्त्र की उसी मात्रा को खरीदने के लिए प्रतिनिधि उपभोक्ता को 1350 रु॰ + 600 रु॰ = 1950 रु॰ (जैसे कि पूर्व में गणना की गई थी) व्यय करना पड़ेगा। उनका योग 1350 रु॰ + 600 रु॰ = 1950 रु॰ होगा। अतः उपभोक्ता कीमत सूचकांक $\frac{1,950}{1,400} \times 100 = 139.29$ होगा (लगभग)।

यह ध्यान देने योग्य है कि अनेक वस्तुओं की कीमतें दो समुच्चयों में होती है एक खुदरा कीमत होती है जो उपभोक्ता वास्तव में अदा करता है। दूसरी थोक कीमत होती है, इस कीमत पर बहुमात्रा में वस्तुओं का व्यापार होता है। इन दोनों के मूल्यों में अंतर हो सकते हैं, क्योंकि उपांत व्यापारियों के पास रहता है। बहुमात्रा में व्यापार की जाने वाली वस्तुओं (कच्चा माल अथवा अर्ध-निर्मित वस्तुएँ) का क्रय साधारण उपभोक्ता नहीं करते हैं। उपभोक्ता कीमत सूचकांक के समान थोक कीमत सूचकांक को **थोक कीमत सूचकांक** (WPI) कहते है। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देशों में इसे उत्पादक कीमत सूचकांक (PPI) कहते हैं। ध्यान रहे कि उपभोक्ता कीमत सूचकांक (थोक कीमत सूचकांक के सादृश्य) में सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक से अंतर हो सकता है क्योंकि,

1. उपभोक्ता जिन वस्तुओं का क्रय करते हैं, उनसे देश में उत्पादित सभी वस्तुओं का प्रतिनिधित्व नहीं होता है। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक में सभी ऐसी वस्तुएँ और सेवाएँ हैं।
2. उपभोक्ता कीमत सूचकांक में प्रतिनिधि उपभोक्ता द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं की कीमतें शामिल हैं। अतः इसमें आयातित वस्तुओं की कीमतें शामिल हैं। सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक में आयातित वस्तुओं की कीमतें शामिल नहीं होती है।
3. उपभोक्ता कीमत सूचकांक में भार नियत रहता है। लेकिन सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक में प्रत्येक वस्तु के उत्पादन स्तर के अनुसार उनमें अंतर होता है।

not to be republished © NCERT

2.5 सकल घरेलू उत्पाद और कल्याण

क्या किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद को उस देश के लोगों के कल्याण के सूचकांक के रूप में लिया जा सकता है? यदि किसी व्यक्ति की आय अधिक है, तो वह अधिक वस्तुओं और सेवाओं का क्रय कर सकता है अथवा उनके भौतिक कल्याण में सुधार हो सकता है। अतः यह उचित होगा कि उनके आय स्तर को उनके कल्याण स्तर के रूप में देखा जाए। सकल घरेलू उत्पाद किसी वर्ष विशेष में किसी देश की भौगोलिक सीमा के अंतर्गत सृजित वस्तु एवं सेवाओं के कुल मूल्य का योग होता है। सकल घरेलू उत्पाद का वितरण लोगों के बीच आय (प्रतिधारित आय को छोड़कर)। अतः हम किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद के उच्चतर स्तर को उस देश के लोगों के उच्च कल्याण के सूचकांक के रूप में समझने का लालच कर सकते हैं (कीमत परिवर्तन के लेखांकन के लिए हम मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद के बदले वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद का मूल्य ले सकते हैं)। किंतु यह सही नहीं हो सकता। इसके कम से कम तीन कारण हैं।

1. **सकल घरेलू उत्पाद का वितरण:** यह कितना समरूप है? यदि देश के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हो रही, तो कल्याण में उसके अनुसार वृद्धि नहीं हो सकती है। इस स्थिति में संपूर्ण देश के कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि वर्ष 2000 में किसी काल्पनिक देश में 100 व्यक्ति थे, जिनमें प्रत्येक की आय 10 रुपये थी। अतः देश का सकल घरेलू उत्पाद 1000 रुपये था (आय विधि से)। मान लीजिए 2001 में उसी देश में 90 व्यक्तियों में प्रत्येक व्यक्ति की आय 9 रुपये थी और शेष 10 व्यक्तियों की प्रति व्यक्ति आय 20 रुपये थी। मान लीजिए कि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में इन दोनों अवधियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वर्ष 2001 में देश की सकल घरेलू उत्पाद = 90 ×(9 रुपये) + 10 (20 रुपये) = 810 रुपये + 200 रुपये = 1010 रुपये। अवलोकन कीजिए कि 2000 की तुलना में 2001 में देश का सकल घरेलू उत्पाद 10 रुपये अधिक था। किंतु यह तब हुआ, जब 90 प्रतिशत लोगों की आय में 10 प्रतिशत की कमी (10 रुपये से 9 रुपये) आयी। जबकि केवल 10 प्रतिशत लोगों को अपनी आय में 100 प्रतिशत (10 रुपये से बढ़कर 20 रुपये) वृद्धि का लाभ मिला। 90 प्रतिशत लोगों की दशा देश के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से दयनीय हो गई। यदि हम देश के कल्याण में उन्नति समृद्ध लोगों के प्रतिशत से करें, तो निश्चित रूप से सकल घरेलू उत्पाद एक अच्छा सूचकांक नहीं है।

सकल घरेलू उत्पाद का वितरण एक समान है, कैसे? यह अभी तक दिखता है कि अधिकांश लोग गरीब हैं और मात्र कुछ लोग ही इससे लाभान्वित हैं।

2. **गैर-मौद्रिक विनिमय:** अर्थव्यवस्था के अनेक कार्यकलापों का मूल्यांकन मौद्रिक रूप में नहीं होता। उदाहरणार्थ, महिलाएँ जो अपने घरों में घरेलू सेवाओं का निष्पादन करती है, उसके लिए उसे कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। मुद्रा की सहायता के बिना अनऔपचारिक क्षेत्रक में जो

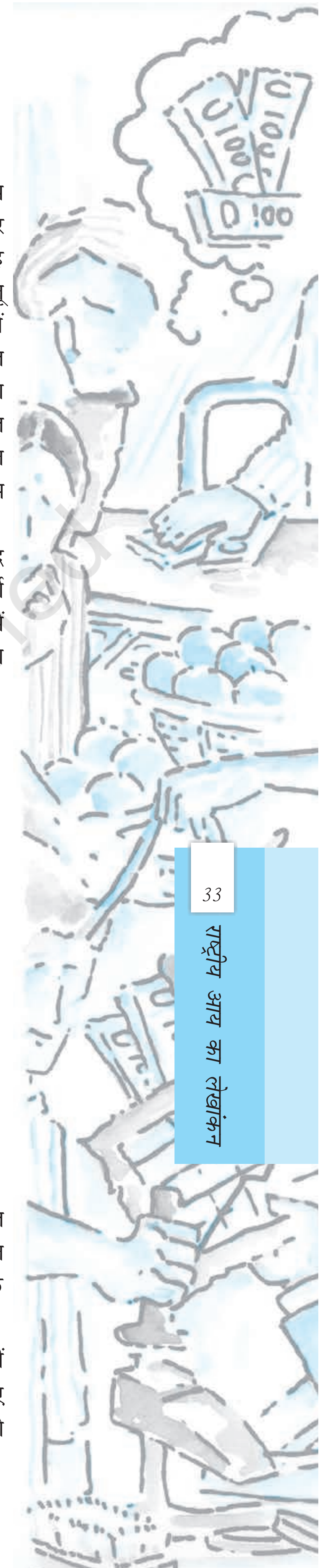

© NCERT not to be republished

विनिमय होते हैं, उसे वस्तु विनिमय कहते हैं। वस्तु विनिमय में वस्तुओं का (सेवाएँ) एक-दूसरे के बदले प्रत्यक्ष रूप से विनिमय होता है, लेकिन चूँकि मुद्रा का यहाँ प्रयोग नहीं होता है, इसलिए विनिमय दरों को आर्थिक कार्यकलाप का हिस्सा नहीं माना जाता है। विकासशील देशों में जहाँ अनेक सुदूर क्षेत्र अल्प-विकसित है, इस प्रकार के विनिमय होते हैं। लेकिन इनकी गणना प्रायः देश के घरेलू उत्पादों में नहीं होती। इस स्थिति में सकल घरेलू उत्पाद का अल्प-मूल्यांकन होता है, अतः सकल घरेलू उत्पाद का मूल्यांकन मानक तरीके से करने पर हमें उत्पादक कार्यकलाप और किसी देश के कल्याण का स्पष्ट संगत नहीं मिलता है।

3. **बाह्य कारण:** बाह्य कारणों से तात्पर्य किसी फर्म या व्यक्ति के लाभ (हानि) से है, जिससे दूसरा पक्ष प्रभावित होता है जिसे भुगतान नहीं किया जाता है (दंडित)। बाह्य कारणों का कोई बाज़ार नहीं होता है, जिसमें उनको खरीदा या बेचा जा सके। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक तेल शोधक संयंत्र है, जिसमें कच्चे पेट्रोलियम का परिशोधन होता है और उसे बाज़ार में बेचा जाता है। तेल शोधक यंत्र का निर्गत इसके द्वारा परिशोधित तेल की मात्रा है। हम तेल शोधक संयंत्र की मध्यवर्ती के मूल्य (इस स्थिति में कच्चा तेल) को इसके निर्गत से घटाकर मूल्यवर्धित का आकलन कर सकते हैं। तेल शोधक संयंत्र के मूल्यवर्धित की अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में गणना की जाती है। किंतु उत्पादन के संचालन में तेल शोधक संयंत्र तटवर्ती नदियों को भी प्रदूषित कर सकता है। इससे उन लोगों को हानि पहुँच सकती है, जो नदी जल का उपयोग करते हैं। अतः उनकी उपयोगिता में कमी होगी। प्रदूषण से मछली अथवा नदी के अन्य जीवों के जीवन को खतरा हो सकता है। फलतः नदी का नाविक अपनी आय और उपयोगिता से वंचित होगा। इनके हानिकारक प्रभाव हैं। नाविक को नदी में मछली पकड़ने वालों की आय से वंचित होना पड़ सकता है। तेल शोधक संयंत्रों द्वारा दूसरों पर डाले गए हानिकारक प्रभावों जिनकी उन्हें कोई लागत नहीं अदा करनी होती है, बाह्य कारण कहे जाते हैं। इस स्थिति में सकल घरेलू उत्पाद को इन बाहरी कारणों में शामिल नहीं किया गया है। अतः यदि हम सकल घरेलू उत्पाद को अर्थव्यवस्था के कल्याण की माप के रूप में लें, तो हमें वास्तविक कल्याण का अति मूल्यांकन प्राप्त होगा। यह *ऋणात्मक बाह्यकारण* का उदाहरण था। यह *धनात्मक बाह्यकरण* की स्थितियाँ भी हो सकती है। ऐसी स्थितियों में सकल घरेलू उत्पाद से अर्थव्यवस्था के वास्तविक कल्याण का अल्प-मूल्यांकन होगा।

सारांश

अति मौलिक स्तर पर समष्टिगम अर्थव्यवस्था (जिस अर्थव्यवस्था का अध्ययन हम समष्टि अर्थशास्त्र में करते हैं) की कार्य पद्धति को वर्तुल पथ में देखा जा सकता है। फर्म परिवारों के द्वारा पूर्ति किए गए आगतों का नियोजन करते हैं और परिवारों को बेचने के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करते हैं। परिवार फर्म को प्रदान की गई सेवा के लिए पारिश्रमिक प्राप्त करता है और उससे फर्म द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का क्रय करता है। अतः हम किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की गणना तीन में से किसी भी विधि से कर सकते हैं। 1. कारक अदायगी के समस्त मूल्यों की माप करके (आय विधि), 2. फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य की माप करके (उत्पाद विधि) और 3. फर्मों द्वारा प्राप्त व्यय के समस्त मूल्य की माप करके (व्यय विधि)। उत्पाद विधि में दुहरी गणना को दूर करने के लिए हमें मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को घटाना होगा और अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के समस्त मूल्य को ही ग्रहण करना होगा। इनमें से प्रत्येक विधियों

से हम अर्थव्यवस्था की समस्त आय की गणना के लिए सूत्र व्युत्पन्न कर सकते हैं। हमें यह भी ध्यान में रखना है कि वस्तुओं का क्रय निवेश के लिए भी किया जा सकता है और इनसे निवेशकर्ता फर्मों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। समस्त आय की भिन्न-भिन्न कोटियाँ हो सकती है, जो उन पर निर्भर करेगी जिनको आय उपगत होती है। सकल घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद, कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद, वैयक्तिक आय और वैयक्तिक प्रयोज्य आय में हम अंतर दिखला सकते हैं। चूँकि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, इसीलिए हम यह विमर्श करते हैं कि तीन महत्त्वपूर्ण कीमत सूचकांकों (सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक, उपभोक्ता कीमत सूचकांक और थोक कीमत सूचकांक) की गणना कैसे की जाए। अंत में, हम यह देखते हैं कि सकल घरेलू उत्पाद को किसी देश के कल्याण के सूचकांक के रूप में लेना गलत होगा।

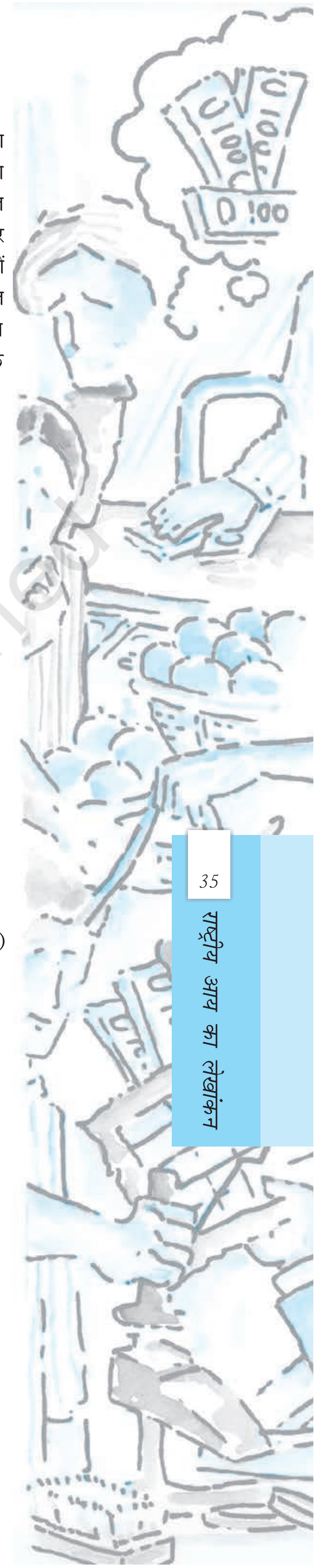

मूल संकल्पनाएँ

अंतिम वस्तुएँ
टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ
मध्यवर्ती वस्तुएँ
प्रवाह
निवल निवेश
मज़दूरी
लाभ
आय का वर्तुल प्रवाह
राष्ट्रीय आय गणना की व्यय विधि
समष्टि अर्थशास्त्रीय मॉडल
मूल्यवर्धित
माल-सूची में नियोजित परिवर्तन
सकल घरेलू उत्पाद
सकल राष्ट्रीय उत्पाद
निवल राष्ट्रीय उत्पाद (कारक लागत पर) अथवा राष्ट्रीय आय
परिवार के द्वारा निवल ब्याज अदायगी
सरकार और फर्मों के द्वारा परिवार को अंतरण अदायगी
वैयक्तिक कर अदायगी
वैयक्तिक प्रयोज्य आय
निजी आय
वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद
सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक
थोक कीमत सूचकांक

उपभोग वस्तुएँ
पूँजीगत वस्तुएँ
स्टॉक
सकल निवेश
मूल्यह्रास
ब्याज
लगान
राष्ट्रीय आय गणना की उत्पाद विधि
राष्ट्रीय आय गणना की आय विधि
आगत
माल-सूची
माल-सूची में अनियोजित परिवर्तन
निवल घरेलू उत्पाद
निवल राष्ट्रीय उत्पाद (बाज़ार कीमत पर)
अवितरित लाभ
निगम कर
वैयक्तिक आय (PI)
गैर-कर अदायगी
राष्ट्रीय प्रयोज्य आय
मौद्रिक सकल घरेलू उत्पाद
आधार वर्ष
उपभोक्ता कीमत सूचकांक
बाह्य कारक

© NCERT not to be republished

अभ्यास

1. उत्पादन के चार कारक कौन-कौन से हैं और इनमें से प्रत्येक के पारिश्रमिक को क्या कहते हैं?
2. किसी अर्थव्यवस्था में समस्त अंतिम व्यय समस्त कारक अदायगी के बराबर क्यों होता है? व्याख्या कीजिए।
3. स्टॉक और प्रवाह में भेद स्पष्ट कीजिए। निवल निवेश और पूँजी में कौन स्टॉक है और कौन प्रवाह? हौज में पानी के प्रवाह से निवल निवेश और पूँजी की तुलना कीजिए।
4. नियोजित और अनियोजित माल-सूची संचय में क्या अंतर है? किसी फर्म की माल-सूची और मूल्यवर्धित के बीच संबंध बताइए।
5. तीनों विधियों से किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद की गणना करने की किन्हीं तीन निष्पत्तियाँ लिखिए। संक्षेप में यह भी बताइए कि प्रत्येक विधि से सकल घरेलू उत्पाद का एक-सा मूल्य क्या आना चाहिए?
6. बजटीय घाटा और व्यापार घाटा को परिभाषित कीजिए। किसी विशेष वर्ष में किसी देश की कुल बचत के ऊपर निजी निवेश का आधिक्य 2000 करोड़ रु० था। बजटीय घाटे की राशि 1500 करोड़ रु० थी। उस देश के बजटीय घाटे का परिमाण क्या था?
7. मान लीजिए कि किसी विशेष वर्ष में किसी देश का सकल घरेलू उत्पाद बाज़ार कीमत पर 1100 करोड़ रु० था। विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय 100 करोड़ रु० था। अप्रत्यक्ष कर मूल्य-उपदान का मूल्य 150 करोड़ रु० और राष्ट्रीय आय 850 करोड़ रु० है, तो मूल्यह्रास के समस्त मूल्य की गणना कीजिए।
8. किसी देश विशेष में एक वर्ष में कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद 1900 करोड़ रु० है। फर्मों/सरकार के द्वारा परिवार को अथवा परिवार के द्वारा सरकार/फर्मों को किसी भी प्रकार का ब्याज अदायगी नहीं की जाती है, परिवारों की वैयक्तिक प्रयोज्य आय 1200 करोड़ रु० है। उनके द्वारा अदा किया गया वैयक्तिक आयकर 600 करोड़ रु० है और फर्में तथा सरकार द्वारा अर्जित आय का मूल्य 200 करोड़ रु० है। सरकार और फर्म द्वारा परिवार को की गई अंतरण अदायगी का मूल्य क्या है?
9. निम्नलिखित आँकड़ों से वैयक्तिक आय और वैयक्तिक प्रयोज्य आय की गणना कीजिए:

		(करोड़ रु० में)
(a)	कारक लागत पर निवल घरेलू उत्पाद	8000
(b)	विदेशों से प्राप्त निवल कारक आय	200
(c)	अवितरित लाभ	1000
(d)	निगम कर	500
(e)	परिवारों द्वारा प्राप्त ब्याज	1500
(f)	परिवारों द्वारा भुगतान किया गया ब्याज	1200
(g)	अंतरण आय	300
(h)	वैयक्तिक कर	500

10. हजाम राजू एक दिन में बाल काटने के लिए 500 रु० का संग्रह करता है। इस दिन उसके उपकरण में 50 रु० का मूल्यह्रास होता है। इस 450 रुपये में से राजू 30 रु० बिक्री कर अदा करता है। 200 रु० घर ले जाता है और 220 रु० उन्नति और नए उपकरणों का क्रय करने के लिए रखता है। वह अपनी आय में से 20 रु० आय कर के रूप में अदा करता है। इन पूरी सूचनाओं के आधार पर निम्नलिखित में राजू का योगदान ज्ञात कीजिए: (a) सकल घरेलू उत्पाद (b) बाज़ार कीमत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (c) कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (d) वैयक्तिक आय (e) वैयक्तिक प्रयोज्य आय।
11. किसी वर्ष एक अर्थव्यवस्था में मौद्रिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य 2500 करोड़ रु० था। उसी वर्ष, उस देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य किसी आधार वर्ष की कीमत पर 3000 करोड़ रु० था। प्रतिशत के रूप में वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद अवस्फीतिक के मूल्य की गणना कीजिए। क्या आधार वर्ष और उल्लेखनीय वर्ष के बीच कीमत स्तर में वृद्धि हुई?
12. किसी देश के कल्याण के निर्देशांक के रूप में सकल घरेलू उत्पाद की कुछ सीमाओं को लिखो।

© NCERT not to be republished

सुझावात्मक पठन

डॉर्नबुश, आर. और एस. फिशर, 1988. *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* (चतुर्थ संस्करण) पृ॰ 29–62, मैक्ग्राहिल।

ब्रेनसन डब्ल्यू. एच., 1992. *मैक्रोइकोनॉमिक्स थ्योरी एंड पोलिसी,* (तृतीय संस्करण), पृ॰ 15–34, हार्पर कोलिंस पब्लिशर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली।

भादुड़ी, ए., 1990. *मैक्रोइकोनॉमिक्स: द डायनामिक्स ऑफ कोमोडिटी प्रोडक्शन,* पृ॰ 1–27, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली।

मानकिव एन. जी. 2000. *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* (चतुर्थ संस्करण) पृ॰ 15–76, मैकमिलन वर्थ पब्लिशर्स न्यूयार्क।

तालिका 2.5: **भारत के लिए स्थिर कीमतों (2011–12) पर GVA तथा GDP**[6]

क्र. सं.	*मद*	*2016–17 में मूल्य*
1.	आधुनिक कीमतों पर GVA	111.854
2.	निवल उत्पादन कर	10.044
3.	GDP (1+2)	121.898

तालिका 2.6: **GDP का संघटन: व्यय पक्ष (2011–12 की कीमतें)**

क्र. सं.	*मद*	*2016–17 में मूल्य*
1.	निजी अंतिम उपयोग व्यय (PFCE)	68.066
2.	सरकारी अंतिम उपयोग व्यय (GFCE)	13.407
3.	सकल स्थायी पूँजी निर्माण (GFCF)	36.020
4.	स्टॉक में परिवर्तन	2.918
5.	मूल्यवान वस्तुएँ	1.487
	निवेश (**3+4+5**)	**40.425**
6.	वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात	24.860
7.	वस्तुओं तथा सेवाओं का आयात	25.687
	निवल निर्यात (**6+7**)	**0.827**
8.	विसंगतियाँ	0.839
9.	**GDP (1+2+3+4+5+6–7+8)**	**121.898**

[6] ये अनंतिम अनुमान सी. एस. ओ. द्वारा 31 मई, 2017 को जारी किया गया।

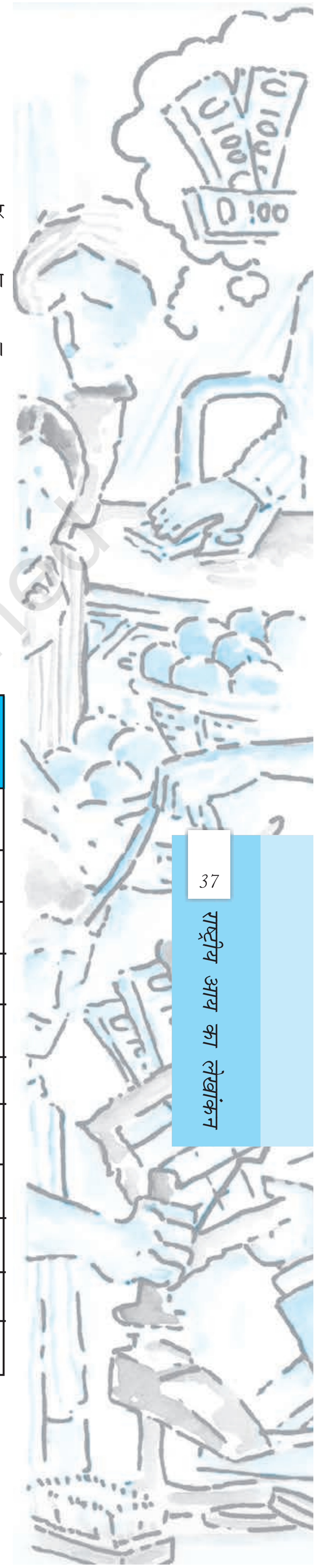

© NCERT not to be republished

अध्याय 3

मुद्रा और बैंकिंग

मुद्रा विनिमय का एक सर्वमान्य माध्यम है। ऐसी अर्थव्यवस्था, जो व्यक्ति विशेष से बनी हो, उसमें वस्तुओं का कोई विनिमय नहीं हो सकता और इसलिए वहाँ मुद्रा की कोई भूमिका नहीं होती है। एक से ज़्यादा व्यक्ति होने पर भी अगर वे बाज़ार के संव्यवहार में भाग नहीं लेते हैं, जैसे कि किसी टापू पर कोई एक परिवार रहता हो, तो वहाँ मुद्रा का कोई कार्य नहीं होता है। किंतु जैसे ही एक से अधिक आर्थिक एजेंट बाज़ार के माध्यम से संव्यवहार शुरु करते हैं, मुद्रा विनिमय को सुविधाजनक बनाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन जाती है। मुद्रा के माध्यम के बिना आर्थिक विनिमय को *वस्तु विनिमय* कहा जाता है। यद्यपि वे *आवश्यकताओं के उभय संयोग* की असंभाव्यता को अनुमानित करते हैं। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि एक व्यक्ति के पास चावल का अधिशेष है, जिसके बदले में वह वस्त्र का विनिमय करना चाहता है। यदि वह बहुत भाग्यशाली नहीं है, तो उसे ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसकी माँग ठीक विपरीत हो अर्थात् उसे चावल की ज़रूरत हो और उसे वह ज़रूरत से ज़्यादा उपलब्ध कपड़ों के बदले विनिमय करना चाहता हो। जैसे-जैसे व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होगी, खोज की लागत निषेधक होती जाएगी। इसलिए एक मध्यवर्ती वस्तु का होना बहुत ज़रूरी है, जिससे लेन-देन को सरल बनाया जा सके और जो दोनों पक्ष द्वारा स्वीकार्य हो। ऐसी वस्तु को मुद्रा कहते हैं। एक व्यक्ति अपने उत्पादित वस्तु को मुद्रा के बदले बेचकर इसका उपयोग अपनी ज़रूरत की वस्तु को खरीदने में कर सकता है।

यद्यपि मुद्रा की मुख्य भूमिका विनिमय को सुगम बनाना है, किंतु यह अन्य उद्देश्यों की पूर्ति में भी सहायक होता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

3.1 मुद्रा के कार्य

जैसा कि ऊपर वर्णित है, मुद्रा की सर्वप्रथम भूमिका यह है कि वह **विनिमय के माध्यम** के रूप में कार्य करती है। बड़ी अर्थव्यवस्था में वस्तु विनिमय अत्यंत कठिन कार्य है, क्योंकि उच्च कीमतों के कारण व्यक्तियों को अपने आधिक्य के विनिमय के लिए योग्य व्यक्तियों की तलाश करनी होगी।

मुद्रा सुविधाजनक **लेखा की एक इकाई** के रूप में भी कार्य करती है। सभी वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य मौद्रिक इकाई के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। जब हम कहते हैं कि एक कलाई घड़ी का मूल्य 500 रुपये है, तो

© NCERT not to be republished

इसका मतलब है कि कलाई घड़ी का विनिमय मुद्रा की 500 इकाइयों से की जा सकती है, जहाँ मुद्रा की एक इकाई रुपया है। यदि एक पेंसिल की कीमत 2 रुपये है और एक कलम की कीमत 10 रुपये है, तो हम कलम और पेंसिल की सापेक्ष कीमत की गणना कर सकते हैं। जैसे एक कलम की कीमत $\frac{10}{2} = 5$ पेंसिल। अन्य वस्तुओं की तुलना में मुद्रा की गणना में भी इसी प्रकार की धारणा का प्रयोग किया जा सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में, एक रुपये का मूल्य $\frac{1}{2} = 0.5$ पेंसिल या $\frac{1}{10} = 0.1$ कलम है। अतः यदि सभी वस्तुओं की कीमतें मुद्रा के रूप में बढ़ती है, दूसरे शब्दों में, जिसे कीमत स्तर में सामान्य वृद्धि कहते हैं, तो मुद्रा का मूल्य किसी वस्तु के सापेक्ष घट जाता है, क्योंकि अब मुद्रा की एक इकाई कम वस्तुओं को खरीदेगी। इसे मुद्रा की क्रय-शक्ति में ह्रास कहा जाता है।

वस्तु विनिमय प्रणाली की अन्य खामियाँ भी हैं। वस्तु विनिमय प्रणाली में किसी व्यक्ति की संपत्ति को आगे के लिए बनाए रखना कठिन है। मान लीजिए कि आपके पास चावल का एन्डाउमेंट है, जिसका आप आज ही पूर्णरूपेण उपभोग नहीं करना चाहते हैं। आप चावल के इस आधिक्य स्टॉक को भविष्य में दूसरी आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अथवा परिसंपत्ति के रूप में संचित रखना चाहते हैं। लेकिन चावल एक शीघ्रनाशी वस्तु है, जिसे आप एक निश्चित समय से अधिक दिनों तक संचित नहीं रख सकते हैं और इसे संचित करने के लिए बहुत जगह की भी आवश्यकता होती है। इसके अलावा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब आप अपने संचित चावल के बदले दूसरी ज़रूरत की वस्तु खरीदना चाहेंगे, तो आपको बहुत समय और साधन दोनों ऐसे ज़रूरतमंद व्यक्तियों की खोज में लगाना पड़ेगा, जिन्हें आपकी ज़रूरत की वस्तु के बदले चावल की आवश्यकता है। इस समस्या का समाधान हो सकता है, यदि आप चावल को मुद्रा के लिए बेचते हैं। मुद्रा नाशवान वस्तु नहीं है और इसकी संचय लागत अत्यंत कम होती है। मुद्रा किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी समय ग्रहण करने योग्य होती है। अतः मुद्रा व्यक्तियों के लिए ***मूल्य संचय*** का काम करती है। भविष्य के लिए धन का संचय मुद्रा के रूप में किया जा सकता है। किंतु इस कार्य के कुशलतापूर्वक निष्पादन के लिए मुद्रा के मूल्य में पर्याप्त स्थायित्व होना आवश्यक है। कीमतों का स्तर बढ़ते जाने से मुद्रा की क्रय-शक्ति घटती जाती है। ध्यातव्य है कि मुद्रा के अतिरिक्त अन्य परिसंपत्ति भी मूल्य संचय का कार्य कर सकती है। जैसे – सोना, संपत्ति, भू-संपत्ति, मकान और बंधपत्र (शीघ्र ही इसके बारे में जानकारी मिलेगी)। परंतु, ये संपत्तियाँ दूसरी वस्तु के रूप में आसानी से परिवर्तनीय नहीं भी हो सकती हैं और इनकी सार्वभौमिक स्वीकार्यता नहीं होगी।

कुछ देशों ने एक ऐसी अर्थव्यवस्था की ओर चलने का प्रयास किया है जिसमें नकदी का उपयोग कम और डिजिटल सौदों का उपयोग अधिक होता है। यह समाज, एक ऐसे आर्थिक समाज का बोध कराता है, जिसमें वित्तीय सौदे, भौतिक बैंक नोटों अथवा सिक्कों से संबंधित न होकर व्यवहार करने वाले पक्षों के बीच डिजिटल सूचनाओं (सामान्यतः द्रव्य का इलेक्ट्रोनिक प्रतिनिधित्व)से जुड़े होते हैं। भारत में सरकार लगातार अधिक वित्तीय समायोजन के विभिन्न सुधारों में विनियोग कर रही है। विगत कुछ वर्षों में धन जन खाते, आधार आधारित भुगतान पद्धतियों, e-वैलेट्स, नेशनल फाइनेंशियल स्विच (NSW) आदि ने सरकार के डिजिटल होने के निश्चय को बल प्रदान किया है। मोबाइल एवं स्मार्ट फोनों के पूरे भारत में फैल जाने के कारण आज, वित्तीय समायोजन को एक वास्तविक स्वप्न की भाँति देखा जाता है।

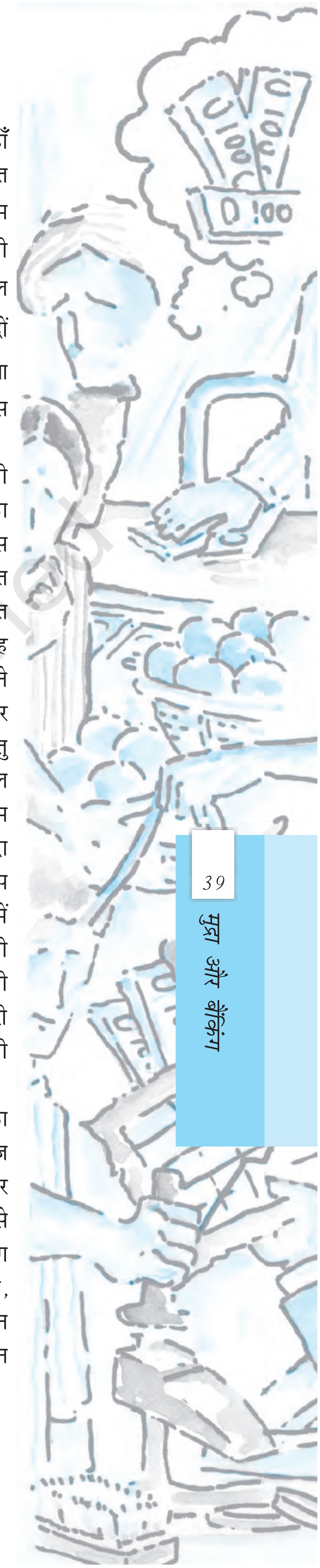

© NCERT not to be republished

3.2 मुद्रा की माँग और मुद्रा की पूर्ति

3.2.1 मुद्रा की माँग

मुद्रा की माँग हमें यह बताती है कि लोग कुछ द्रव्य क्यों चाहते हैं। क्योंकि मुद्रा सौदों के संचालन के लिए आवश्यक है, सौदों के मूल्य यह तय करेंगे कि लोग कितना द्रव्य रखना चाहेंगे; जितने अधिक सौदे किए जाएँगे, उतनी ही अधिक द्रव्य की माँग होगी। क्योंकि सौदों की मात्रा, आय पर आधारित होती है, यह स्पष्ट है, कि आय में वृद्धि होगी। जैसे भी जब लोग अपनी बचतों को द्रव्य के रूप में रखने के बजाय, बैंकों में रखते हैं जिस पर उन्हें ब्याज प्राप्त होता है, लोग कितना रूपया अपने पास रखेंगे, ब्याज की दर पर भी निर्भर करेगा। विशिष्ट रूप से जब ब्याज की दरें बढ़ती हैं तो लोग अपने पास द्रव्य रखने में दिलचस्पी कम रखते हैं क्योंकि द्रव्य को रोककर रखने का अर्थ होता है, ब्याज-वाली जमाओं का कम होना और इस प्रकार कम ब्याज की प्राप्ती। इसलिए ऊँची ब्याज दरों पर, मुद्रा की माँग गिर जाती है।

3.2.2 मुद्रा की पूर्ति

आधुनिक अर्थव्यवस्था में, मुद्रा के अंतर्गत नकदी एवं बैंक जमाएँ आती हैं। किस प्रकार की बैंक जमाओं को सम्मिलित किया जाता है, इस आधार पर मुद्रा के अनेक माप हैं।[1] एक व्यवस्था में, यह दो प्रकार की संस्थाओं द्वारा निर्मित किए जाते हैं— अर्थव्यवस्था की केंद्रीय बैंक, तथा व्यावसायिक बैंकिंग व्यवस्था।

केंद्रीय बैंक: आधुनिक अर्थव्यवस्था में, केंद्रीय बैंक एक अति महत्वपूर्ण संस्था है। लगभग प्रत्येक देश का अपना केंद्रीय बैंक है। भारत को अपना केंद्रीय बैंक सन् 1935 में मिला। इसका नाम 'रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया' है। केंद्रीय बैंक के अनेक महत्वपूर्ण कार्य हैं। यह देश की मुद्रा का निर्गमन करता है। यह अनेक उपायों द्वारा जैसे बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएँ, कोष अनुपातों में परिवर्तन, देश में मुद्रा पूर्ति को नियंत्रित करता है। यह सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करता है। यह अर्थव्यवस्था के विदेशी कोषों का संरक्षक है। यह बैंकिग व्यवस्था के लिये बैंक की भाँति कार्य करता है जिसकी आगे विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।

मुद्रा की पूर्ति के दृष्टिकोण से, हमें इसके करेंसी निगर्मन कार्य पर ध्यान देना है। केंद्रीय बैंक द्वारा निगर्मित करेंसी, जनता के पास हो सकती है अथवा व्यावसायिक बैंकों के पास, इसे 'उच्च शक्ति द्रव्य' कहा जाता है अथवा 'रिजर्व द्रव्य' अथवा 'मौद्रिक आधार' क्योंकि यह साख निर्माण के आधार के रूप में कार्य करता है।

व्यावसायिक बैंक : व्यावसायिक बैंक, दूसरे प्रकार की संस्थाएँ हैं जो द्रव्य निर्माण अर्थव्यवस्था का एक भाग हैं। निम्न खण्ड में, हम व्यापारिक बैंकिंग व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन करेंगे। यह जनता से जमा स्वीकार करते हैं, और इस रकम का कुछ भाग उन लोगों को देते हैं जो उधार लेना चाहते हैं। दिये जाने वाली ब्याज दर, उधार लेने वालों से वसूली जाने वाली ब्याज दर से कम होती है। इन दो प्रकार की ब्याज दरों का अंतर, जिसे 'स्प्रेड' कहते हैं, बैंक का लाभ होता है।

जमाओं तथा ऋण (उधार) की प्रक्रिया को आगे समझाया गया है। इस प्रक्रिया को समझने के लिये हम एक कहानी की चर्चा करते हैं।

[1]अध्याय के अंत में पैसे की आपूर्ति के उपायों पर बॉक्स देखें।

© NCERT not to be republished

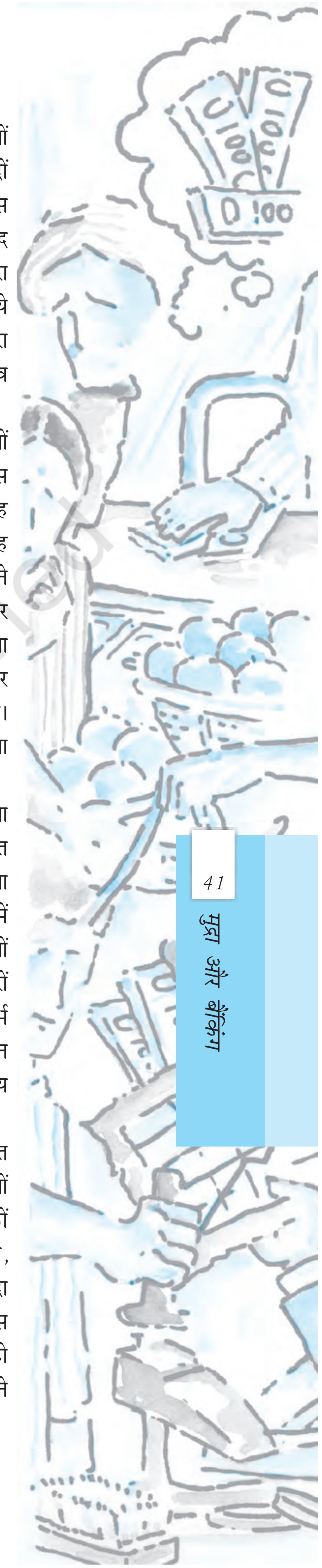

एक बार एक गाँव में, लाला नाम का एक सुनार रहता था। इस गाँव में वस्तुओं और सेवाओं को क्रय करने के लिये, लोग स्वर्ण एवं अन्य कीमती धातुओं का उपयोग करते थे। दूसरे शब्दों में यह धातुएँ मुद्रा का कार्य कर रही थी। गाँव के लोगों ने सुरक्षा के लिये स्वर्ण को लाला के पास रखना शुरू कर दिया। उनका सोना रखने के बदले में, लाला गाँव वालों को एक कागजी रसीद दे दिया करता था और उनसे कुछ शुल्क ले लिया करता था। धीरे-धीरे, समय के साथ, लाला द्वारा निर्गमित रसीदें, द्रव्य की भांति चलने में आ गई। इसका यह अर्थ हुआ कि, गेहूँ खरीदने के लिये सोना देने के बजाय, कुछ लोग गेहूँ अथवा जूते अथवा कोई और सामान के लिए लाला द्वारा निर्गमित कागजी रसीदें देने लगे। इस प्रकार कागजी रसीदें, द्रव्य का काम करने लगी क्योंकि गाँव में हरेक व्यक्ति इनको विनिमय के माध्यम के रूप में स्वीकार करने लगा।

अब हम यह मानकर चलते हैं कि लाला के पास 100 कि. ग्राम सोना है जो विभिन्न लोगों द्वारा जमा किया गया है और उसने 100 कि. ग्राम सोने से संबंधित रसीदें निगर्मित की हैं। इस समय, रामू, लाला के पास आता है और 24 कि. ग्राम सोने का ऋण माँगता है। क्या लाला यह ऋण दे सकता है? उसके 100 कि. ग्राम सोने के दावेदार तो पहले ही से हैं। तो भी लाला यह निर्णय ले सकता है कि सोना जमा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, एक ही समय, अपना सोना निकालने नही आएँगे, इसलिये वह रामू को ऋण दे देता है और इसके लिये उससे कुछ कीमत वसूल कर लेता है। यदि लाला, रामू को 25 कि. ग्राम सोने का ऋण दे देता है, रामू इसे अली को दे सकता है। अली इस 25 कि. ग्राम सोने को लाला के पास रख देता है और बदले में रसीद प्राप्त कर सकता है। प्रभावतः यह कागजी रसीदें, द्रव्य की भाँति काम करते हुए, 125 कि. ग्राम हो जाएँगी। ऐसा प्रतीत होता है कि लाला ने हवा में द्रव्य का सृजन कर लिया है। आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था ठीक उसी प्रकार कार्य करती हैं जिस प्रकार इस उदाहरण में लाला व्यवहार करता है।

व्यावसायिक बैंक उन फर्मों तथा व्यक्तियों के बीच जिनके पास अतिरिक्त कोष होते हैं तथा वे जिनको कोषों की आवश्यकता होती है, मध्यस्थता करते हैं। जिन व्यक्तियों के पास अतिरिक्त कोष होते हैं वे इन्हें बैंकों के पास जमाओं के रूप में रख सकते हैं ओर जिनको इनकी आवश्यकता होती है वे गृह ऋण, उपज ऋण आदि के रूप में बैंकों से इन्हें उधार ले लेते हैं। लोग बैंकों में द्रव्य इसलिये रखते हैं क्योंकि बैंक जमाओं पर कुछ ब्याज प्रदान करते हैं। बैंकों में अतिरिक्त कोषों को रखना घर की अपेक्षा, सुरक्षित भी है, जैसे कि उपयुक्त उदाहरण में, लोग अपने सोने को घरों में न रख कर लाला के पास रखना पसंद करते हैं। चैक तथा डेबिट कार्ड, के आधुनिक संदर्भ में, माँग-जमाओं को रखना, लेन देन को अधिक सुविधाजनक एवं सुरक्षित बना देता है, यधपि इन पर कोई ब्याज नहीं मिलता। (मकान खरीदने के लिये, बड़ी मात्रा में नकद रुपया देने के विषय में कल्पना कीजिए)।

बैंकों में जमा किए गए कोषों का, बैंक क्या करता है? यह मान कर कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति जिसने बैंक में धन जमा किया है, एक ही समय में, अपने धन को नहीं निकालेगा, बैंक इन कोषों का किसी व्यक्ति को जिसको कोषों की आवश्यकता है, ब्याज पर दे सकता है (वास्तव में बैंकों को यह सुनिश्चित करना पड़ता है कि उनको समय पर कोष वापिस मिल जाएँ) इस प्रकार बैंक, इन कोषों का कुछ भाग जमाकर्ताओं को देने के लिये रखकर, जब भी वे चाहें, कोई भी बैंक ज्यादा से ज्यादा उधार देना चाहेंगे। लेकिन बैंकों को जीवित रखने के लिये, जमाकर्ताओं को धन वापिस करना अधिक महत्वपूर्ण है। लोग अपने धन को बैंको में तभी रखेंगे जब वे पूर्णतः आश्वस्त हो जाएँ कि उसको माँगे जाने पर वापिस प्राप्त कर सकते हैं। एक बैंक को इसलिए, अपना उधार देने

© NCERT not to be republished

संबंधी क्रियाओं को इस प्रकार संतुलित करना चाहिए कि उनके पास जमा कर्ताओं को माँगे जाने पर देने के लिये पर्याप्त कोष उपलब्ध हों।

3.3 बैंकिंग व्यवस्था द्वारा साख सृजन

बैंक उसी प्रकार द्रव्य का सृजन कर सकते हैं जिस प्रकार लाला, कहानी के अंर्तगत। बैंक इसीलिये उधार दे सकते हैं क्योंकि वे सभी जमा कर्ताओं को एक ही समय, रुपया उधार वापिस माँगने की अपेक्षा नहीं करते। जब बैंक किसी को उधार देते हैं, उस व्यक्ति के नाम में एक नया जमा खाता खोल दिया जाता है। इस प्रकार द्रव्य की पूर्ति पुराने जमाओं + नये जमा (+करेंसी) तक बढ़ जाती है।

हम एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए कि एक देश में केवल एक बैंक है। हम इस बैंक का वित्तीय चिट्ठा बनाते हैं। चिट्ठा, एक फर्म की समस्त आस्तियों तथा देनदारियों का लेखा होता है। पारंपरिक रूप से, फर्म की आस्तियों को बाएँ तरफ तथा देनदारियों को दाएँ तरफ दिखाया जाता है। लेखांकन के नियम के अनुसार चिट्ठे के दोनों पक्ष बराबर होने चाहिए अथवा कुल आस्तियाँ, का योग कुल देनदारियों के योग के बराबर होना चाहिए। आस्तियाँ वे मदे होती हैं जिनकी एक फर्म स्वामी होती है अथवा जिनका फर्म दूसरों पर हक रखती है। बैंक के संदर्भ में, भवन, फर्नीचर आदि के अतिरिक्त जनता को दिये गये ऋण भी इसकी आस्तियाँ हैं। जब एक बैंक किसी व्यक्ति को रुपये 100 का ऋण देता है, यह बैंक का उस व्यक्ति पर रुपये 100 का दावा है। दूसरी आस्तियाँ बैंक की इसके कोष हैं। कोष वे जमाएँ हैं जो बैंक केंद्रीय बैंक-रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के पास रखते हैं तथा इसको नकद धन राशि। इन कोषों को आंशिक रूप से नकद और आंशिक रूप से रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा निर्गमित वित्तीय दस्तावेजों (बोड्स तथा ट्रेज़री बिल) के रूप में रखा जाता है। कोष, जमाओं की भाँति हैं जिन्हें हम बैंकों में रखते हैं और यह जमाएँ हमारी आस्तियाँ हैं। हम इन्हें निकाल सकते हैं। इसी प्रकार व्यावसायिक बैंक जैसे स्टेट बैंक ऑफ इंडिया रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया अपनी जमाओं को रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के पास रखती हैं। इनको कोष कहा जाता है।

आस्तियाँ = कोश + ऋण

देनदारियाँ : देनदारियाँ कर्म के ऋण होते हैं अथवा जो उसे अन्यों को देना है। एक बैंक के लिये, मुख्य देनदारी इसकी जमाएँ हैं जो लोगों ने इसके पास रखी हैं।

देनदारियाँ = जमाएँ

लेखांकन के नियम के अनुसार, खाते के दोनों पक्ष बराबर होने चाहिए। इसलिए यदि आस्तियाँ, देनदारियों से अधिक हैं, उनको सीधी तरफ 'नेट वर्थ' (Net worth) के नाम से लिखा जाता है।

नेट वर्थ = आस्तियाँ – देनदारियाँ

3.3.1. एक काल्पनिक बैंक का चिट्ठा

हमारे काल्पनिक बैंक में 100 रूपये के बराबर जमा (देनदारियों) से शुरू करें। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि श्री फर्नांडिस ने बैंक में 100 रूपये जमा किए हैं। अब यह बैंक इस जमा राशि को केंद्रीय बैंक में रिर्जव के रूप में जमा करेगी। तालिका 3.1 बैंक की बैलेंस शीट को दिखाती है।

यदि हम, यह मान लें कि चलन में कोई करेंसी नहीं है, तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल पूर्ति 100 रुपये होगी।

© NCERT not to be republished

तालिका 3.1: **बैंक का चिट्ठा**

आस्तियाँ		*देनदारियाँ*	
कोष	रु. 100	जमाएँ	रु. 100
		नेट वेर्थ	रु. 0
योग	रु. 100	योग	रु. 100

M_1 = करेंसी + जमाएँ = 0+100 = 100

3.3.2. सारा सृजन की सीमाएँ तथा मुद्रा-गुणक

मानलीजिए, मैथ्यू, बैंक के पास 500 रु. के ऋण के लिए आता है। क्या हमारा बैंक उसे ऋण देगा? अगर बैंक ऋण देती है और मैथ्यू ऋण राशि को, बैंक में ही जमा कर देता है, तो कुल बैंक जमाएँ और इसलिए कुल मुद्रा की पूर्ति बढ़ जायेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार, बैंक जितना यह चाहे उतना द्रव्य सृजन कर सकती है।

परंतु क्या बैंकों की साख अथवा द्रव्य सृजन करने का क्षमता की कोई सीमा है? हाँ, यह केंद्रीय बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है। रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया जमाओं के एक निश्चित प्रतिशत को तय कर देता है जो प्रत्येक बैंक को रखना अनिवार्य होता है। यह इसलिए किया जाता है ताकि कोई बैंक अत्याधिक ऋण नहीं दे सके। यह एक वैधानिक अनिवार्यता है और बैंकों पर बाध्य है। इस 'आवश्यक कोष अनुपात' अथवा 'कोष अनुपात' अथवा नकद कोष अनुपात (CRR) कहा जाता है।

CRR के अतिरिक्त, बैंकों को अल्पकाल में कुछ कोष तरल रूप में रखना अनिवार्य होता है। इसे 'वैधानिक तरलता अनुपात' अथवा SLR कहते हैं।

हमारे काल्पनिक उदाहरण में, मान लीजिए CRR, 20 प्रतिशत है, तो रु.100 की जमाओं के पीछे, हमारे बैंक को 20 रु. (रु.100 का 20 प्रतिशत) नकम कोष रखना होगा। केवल शेष जमाओं को अर्थात् 80रु. (100−20 = 80) को ही ऋण देने में उपयोग किया जा सकता है। नकद कोष की यह वैधानिक अनिवार्यता, बैकों की साख निर्माण की सीमा को निर्धारित करती है।

अपनी, एक अर्थव्यवस्था में एक बैंक के काल्पनिक उदाहरण द्वारा हम इसे समझ सकते हैं। हम मानते हैं कि हमारा बैंक लीला द्वारा जमा किये गये 100 रु. से कार्य प्रांरभ करता है। कोष अनुपात 20 प्रतिशत है। इस प्रकार हमारे बैंक के पास उधार देने के लिए 80 रु. (100−20) शेष है जो वह जसपाल कौर को उधार दे देता है। जिसे अगले चक्र में, जमाओं में, देनदारियों के रूप में दिखाया जाता है, जिससे कुल जमाएँ 180 रु. हो जाती हैं। अब हमारे बैंक को 180 रु. का 20 प्रतिशत अर्थात् 36 रु., नकद कोष के रूप में अनिवार्य होगा। स्मरण करें कि हमारे बैंक ने 100 रु. की नकद राशि से कार्य शुरू किया था। क्योंकि इसके लिये अब 36 रु. नकद कोष रखना अनिवार्य है, यह अब 64 रु. (100−36) ही ऋण दे सकता है। बैंक 64 रु. जुनेद को उधार दे देता है। इसे फिर बैंक की जमाओं में दिखा दिया जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक दोहराया जाएगा जब तक कुल अनिवार्य कोष 100 रु. न हो जाएँ। अनिवार्य कोष 100 रु. होगा जब कुल जमाएँ 500 रु. हो जाएँ। ऐसा इसलिए है क्योंकि 500 रु. की जमाओं के पीछे नकद कोष 100 रु. होगा। इस प्रक्रिया को तालिका 3.2 में दर्शाया गया है।

© NCERT not to be republished

तालिका 3.2: मुद्रा-गुणक प्रक्रिया

कॉलम 1	*कॉलम 2*	*कॉलम 3*	*कॉलम 4*
राउन्ड	बैंक में जमा (रु.)	अनिवार्य कोष (रु.)	बैंकों द्वारा दिया गया ऋण (रु.)
1	100.00	20.00	80.00
2	180.00	36.00	64.00
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	.
...	.	.	.
अंतिम	500.00	100.00	400.00

प्रथम कॉलम, प्रत्येक राउन्ड को दिखाता है। द्वितीय कॉलम, प्रत्येक राउन्ड के प्रारंभ में बैंक में कुल जमाओं को दिखाता है। इन जमाओं का 20 प्रतिशत रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया में अनिवार्य कोष के रूप में जमा करना आवश्यक है (कॉलम 3) प्रत्येक राउन्ड में बैंक जो उधार देता है, वह अगले राउन्ड की जमाओं में जोड़ दिया जाता है। कॉलम 4, बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों को दर्शाता है।

तालिका 3.3: बैंक का चिट्ठा

आस्तियाँ		*देनदारियाँ*	
कोष	100 रु.	जमाएँ (100+400)	500 रु.
ऋण	रु. 400		
योग	रु. 500	योग	रु. 500

क्योंकि बैंक को अपनी जमाओं का 20 प्रतिशत ही कोषों में रखना होता है, इसलिए, रु. 100 (500 का 20 प्रतिशत = 100) रु 500 की जमाओं का पोषण कर सकता है। दूसरे शब्दों, में हमारा बैंक रु. 400 का ऋण दे सकता है। तालिका 3.3 इसके चिट्ठा को दिखाती है।

M_1 = करेंसी + जमाऐं = 0 + 500 = 500

इस प्रकार मुद्रा पूर्ति रु 100 से रु 500 हो जाती है।

नकद कोष अनुपात 20 प्रतिशत होने पर, बैंक रु 400 से अधिक ऋण नहीं दे सकता है। इसलिये कोष अनिवार्यता मुद्रा सृजन की सीमा के रूप में कार्य करती है।

© NCERT not to be republished

$$\text{मुद्रा गुणक} = \frac{1}{\text{नकद कोष अनुपात}}$$

$$\text{हमारे उदाहरण में, मुद्रा गुणक} = \frac{1}{20\%} = \frac{1}{0.2} = 5$$

इस प्रकार 100 रु. का काष 500 रु. की जमाओं का सृजन कर सकता है (5×100).

3.4. मुद्रा पूर्ति के नियंत्रण के नीतिगत उपकरण

रिजर्व बैंक एक मात्र संस्था है जो करेंसी निगर्मित कर सकती है। जब अधिक साख सृजन के लिए, व्यावसायिक बैंकों को अधिक कोषों की आवश्यकता होती है, वे इन कोषों को प्राप्त करने के लिए बाजार में जा सकते हैं अथवा केंद्रीय बैंक के पास। केंद्रीय बैंक विभिन्न उपकरणों के द्वारा उनको कोष प्रदान करती है। रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया की यह भूमिका, हर समय बैंकों को कोष प्रदान करने के लिये तैयार रहना, केंद्रीय बैंक का एक और महत्वपूर्ण कार्य है। इसी कारण केंद्रीय बैंक को अंतिम शरण ऋणदाता कहते हैं।

रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया, अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति का विभिन्न तरीकों से नियंत्रण करती है। मुद्रा पूर्ति के लिये प्रयुक्त उपकरण परिमाणात्मक अथवा गुणात्मक हो सकते हैं। परिमाणात्मक उपकरण, मुद्रा पूर्ति की मात्रा को, CRR अथवा बैंक दर अथवा खुले बाजार की क्रियाओं परिवर्तन करके करते हैं। गुणात्मक उपकरण में केंद्रीय बैंक द्वारा बैंकों का राजी करना शामिल है जिसके द्वारा बैंकों को ऋण देने के लिये हतोत्साहित अथवा प्रोत्साहित किया जाता है। यह नैतिक दबाव, सीमा अनिवार्यता द्वारा किया जाता है।

अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा कि यदि केंद्रीय बैंक कोष अनुपात में परिवर्तन करता है, तो उससे बैंकों द्वारा ऋणों में परिवर्तन हो जाएँगे जिसके कारण जमाएँ तथा मुद्रा पूर्ति प्रभावित होंगे। पहले चर्चित उदाहरण में, मुद्रा गुणक क्या होगा यदि रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया कोष अनुपात को बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर देती? ध्यान दीजिए कि प्रथम अवस्था में, रु 100, रु 400 की जमाओं को पोषित कर सके थे लेकिन बैंकिग व्यवस्था अब केवल रु 300 ही ऋण दे पाएँगी। बढ़ी हुई कोष आवश्कताओं को पूरा करने के लिए, इसे कुछ ऋणों को वापिस मँगाना होगा। अतः मुद्रा पूर्ति गिर जाएगी।

दूसरा महत्वपूर्ण उपकरण, जिसके द्वारा रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करती है, खुले बाज़ार की क्रियाएँ हैं। खुले बाज़ार की क्रियाओं से अभिप्राय– सरकार द्वारा निगर्मित बाँड्स का खुले बाज़ार में खरीदने और बेचने से है। यह खरीद तथा बिक्री सरकार द्वारा केंद्रीय बैंक के सुपुर्द की गई है। जब रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया खुले बाज़ार में सरकारी बाँड खरीदता है, वह इसके लिए चैक द्वारा भुगतान करता है। यह चैक अर्थव्यवस्था मे कोषों की मात्रा में वृद्धि कर देता है और इस प्रकार मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है। रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया का (निजी व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को) बाँड बेचने से, कोषों की मात्रा में कमी कर देता है और इसलिये मुद्रा की पूर्ति को भी।

खुले बाज़ार की क्रियाऐं दो प्रकार की होती हैं- पूर्ण रूप से एवं रेपो। पूर्णरूप खुले बाज़ार की क्रियाऐं स्थायी स्वभाव की होती हैं, जब केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियों को खरीदता है। (और इस प्रकार व्यवस्था में द्रव्य को प्रतिस्थापित करके) तो यह इनको दोबारा बाद में बेचने का कोई वायदा नहीं

© NCERT not to be republished

करती। इसी प्रकार, जब केंद्रीय बैंक इन प्रतिभूतियों को बेचती है (व्यवस्था से बगैर कोई द्रव्य निकाले), तो यह इनको दोबारा बाद में खरीदने का वायदा नहीं करती। फलस्वरूप, द्रव्य का प्रतिस्थापन अथवा आत्मसात होना, स्थायी स्वभाव का होता है। एक दूसरे प्रकार की क्रिया होती है जिसे में केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियों को खरीदती है, तथा इस क्रय अनुबंध में, प्रतिभूतियों की पुनबिक्री की तिथि और कीमत का विवरण होता है। इस प्रकार विधि के अनुसार उधार दिये गये द्रव्य पर जो ब्याज दिया जाता है उसे रेपो रेट (Repo Rate) कहते हैं। इसी प्रकार प्रतिभूतियों को पूर्णरूप बिक्री के बजाय एक केंद्रीय बैंक एक अनुबंध के अंर्तगत बिक्री कर सकती है जिसमें प्रतिभूतियों की पुनः खरीद की तिथि तथा कीमत का विवरण होता है। इस प्रकार के अनुबंध को उलट पुनः क्रय अनुबंध (Reverse Repurchase Rate) अथवा 'उलट रेपो' (Reverse Repo) कहते हैं। भारतीय रिजर्ब बैंक, विभिन्न परिपक्कता तिथियों के लिये (रात भर का, सात दिन, चौदह दिन आदि) रेपो एवं रिवर्स रेपो क्रियाएँ करता है। यह क्रियाएँ भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति का प्रमुख उपकरण बन गये हैं।

रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया मुद्रा की पूर्ति को इस दर में किस पर वह व्यावसायिक बैंकों को ऋण प्रदान करती है, परीवर्तन करके, प्रभावित कर सकती है। भारत में इस दर को बैंक दर कहा जाता है। बैंक दर में वृद्धि से, व्यवसायिक बैंकों द्वारा लिये गये ऋण, अधिक खर्चीले हो जाते हैं जिससे व्यावसायिक बैंकों के कोषों में कमी आजाती है और इस प्रकार मुद्रा पूर्ति कम हो जाती है। बैंक दर में कमी, मुद्रा पूर्ति में वृद्धि कर सकती है।

बॉक्स 3.1: माँग और पैसे की आपूर्ति : एक विस्तृत चर्चा

मुद्रा सभी प्रकार की संपत्तियों में सबसे तरल संपत्ति इस अर्थ में है कि यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य है और इसका किसी दूसरी वस्तु के रूप में आसानी से विनिमय किया जा सकता है। दूसरी ओर, इसकी अवसर लागत भी होती है। यदि मुद्रा की एक निश्चित नकद राशि धारण करने के बदले आप इसे किसी बैंक के निक्षेप में जमा करते हैं, तो आपको इस जमा मुद्रा पर ब्याज प्राप्त होता है। एक निश्चित समय पर कितनी मुद्रा का धारण किया जाए, इसका निर्धारण करते समय तरलता से लाभ और ब्याज के त्याग की हानि के संबंध में विचार करना होगा। अतः मुद्रा शेष की माँग प्रायः *तरलता अधिमान* कहलाता है। लोगों में मुद्रा कोष रखने की इच्छा के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं।

संव्यवहार प्रयोजन

मुद्रा धारण करने का मुख्य प्रयोजन संव्यवहारों को जारी रखना है। अगर आप अपनी आय साप्ताहिक आधार पर प्राप्त करते हैं और सप्ताह के पहले दिन बिल का भुगतान करते हैं, तो आपको पूरे सप्ताह नकद राशि धारण करने की आवश्यकता नहीं होती। आप अपने नियोक्ता को कह सकते हैं कि वह आपके साप्ताहिक वेतन से व्यय को सीधे काट कर बाकी बचे वेतन को आपके बैंक खाते में जमा कर दें। लेकिन हमारे व्यय के ढाँचे और प्राप्तियों में प्रायः मिलान नहीं होता। लोग अलग-अलग समय पर आय प्राप्त करते हैं, किंतु उनका व्यय उस पूरे समयांतराल में निरंतर होता रहता है। मान लीजिए कि आपको प्रत्येक माह की पहली तारीख को 100 रु. आय प्राप्त होती है और इसका माह के शेष दिनों में व्यय होता रहता है। इस प्रकार, माह के आरंभ और अंत में आपका रोकड़ शेष क्रमशः 100 रु. और 0 रु. रहता है। तब आपकी औसत नकद धारिता की गणना (100 रु. + 0 रु.) 2 = 50 रु. के रूप में की जा सकती है, जिससे आप हर माह 100 रु. मूल्य का संव्यवहार करते हैं। अतः आपकी मुद्रा

की औसत संव्यवहार माँग आपकी मासिक आय के आधे के बराबर है अथवा दूसरे शब्दों में, आपके मासिक संव्यवहार का मूल्य आधा है।

अब हम दो व्यक्ति वाली अर्थव्यवस्था पर विचार करेंगे, जिसमें दो सत्व–एक फर्म (एक व्यक्ति का स्वामित्व) और एक श्रमिक हैं। प्रत्येक महीने के प्रथम दिन फर्म श्रमिक को 100 रु. वेतन देती है। श्रमिक इसके बदले आय को फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु पर पूरे माह में व्यय करता है। यहाँ अर्थव्यवस्था में केवल एक ही वस्तु उपलब्ध है। इस प्रकार, प्रत्येक माह के आरंभ में श्रमिक के पास 100 रु. मुद्रा शेष रहता है और फर्म के पास 0 रु.। माह के अंतिम दिन तस्वीर उल्टी होती है–फर्म के पास 100 रु. होता है जो उसे श्रमिक को अपनी वस्तु बेचने से प्राप्त हुआ है। फर्म और श्रमिक की औसत मुद्रा धारिता 50 रु. के बराबर है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग 100 रु. के बराबर होगी। इस अर्थव्यवस्था में मासिक संव्यवहार का कुल परिमाण 200 रु. है। फर्म 100 रु. मूल्य का उत्पाद श्रमिक को बेचता है और श्रमिक 100 रु. मूल्य की सेवा फर्म को बेचता है। किसी-किसी इकाई अवधि में इस अर्थव्यवस्था में संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग संव्यवहार की कुल मात्रा का अंश मात्र होगी।

अतः सामान्य अर्थों में मुद्रा की संव्यवहार माँग, M_T^d को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है:

$$M_T^d = k.T \qquad (3.1)$$

जहाँ T एक इकाई समयावधि में अर्थव्यवस्था में संव्यवहार का कुल मूल्य (मौद्रिक) है और k धनात्मक अंश है।

ऊपर वर्णित दो-व्यक्ति वाली अर्थव्यवस्था को दूसरी दृष्टि से भी देखा जा सकता है। आपको शायद आश्चर्य होगा कि 200 रु. प्रतिमाह के संव्यवहार के लिए अर्थव्यवस्था में 100 रु. मूल्य के मुद्रा शेष का प्रयोग होता है। इस पहेली का उत्तर सरल है: महीने में दो बार प्रत्येक रुपये का हस्तांतरण होता है। प्रथम दिन नियोक्ता की जेब से इसका शिफ्ट श्रमिक की जेब में होता है और महीने के दौरान बार-बार यह रुपया श्रमिक से नियोक्ता के पास जाता है। मुद्रा की एक इकाई का एक इकाई अवधि में जितनी बार हस्तांतरण होता है, उसे **मुद्रा का संचलन वेग** कहते हैं। उपयुर्क्त उदाहरण में 2, अर्थों का विलोम-मुद्रा अधिशेष और संव्यवहार मूल्य का अनुपात है। अतः हम सामान्य रूप में समीकरण 3.1 को निम्न रूप से दुबारा लिख सकते हैं।

$$\frac{1}{k} \cdot M_T^d = T \text{ अथवा } v.M_T^d = T \qquad (3.2)$$

जहाँ $V = \frac{1}{k}$ संचलन वेग है। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त समीकरण की दायीं ओर का पद T प्रवाह परिवर्त है जबकि मुद्रा की माँग, M_T^d एक स्टॉक संकल्पना है–यह मुद्रा के स्टॉक को दर्शाती है, जो कि लोग किसी निश्चित समय पर धारण करना चाहते हैं। किंतु मुद्रा के वेग V का समय आयाम होता है। इससे किसी इकाई समयावधि में अर्थात् एक माह या एक वर्ष में जितनी बार स्टॉक की एक इकाई का हस्तांतरण होता है, उसकी संख्या सूचित होती है। अतः बायीं ओर $v.M_T^d$ मुद्रा के संव्यवहार के कुल मूल्य का मूल्यांकन करता है, जो कि इस समयावधि में स्टॉक में होता है। यह प्रवाह परिवर्त है और यह दायीं ओर के परिवर्त के बराबर होता है।

अंततोगत्वा किसी अर्थव्यवस्था में दिए हुए वर्ष में समस्त संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग और सकल घरेलू उत्पाद नाममात्र के बीच संबंध का अध्ययन करने में हमारी दिलचस्पी होगी। किसी अर्थव्यवस्था में वार्षिक संव्यवहार के वार्षिक मूल्य में सभी प्रकार की मध्यवर्ती वस्तुओं और सेवाओं के संव्यवहार आते हैं और स्पष्ट रूप से यह नाममात्र के सकल घरेलू उत्पाद की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। लेकिन सामान्यतः संव्यवहारों के मूल्य और नाममात्र के सकल घरेलू उत्पाद के बीच स्थायी

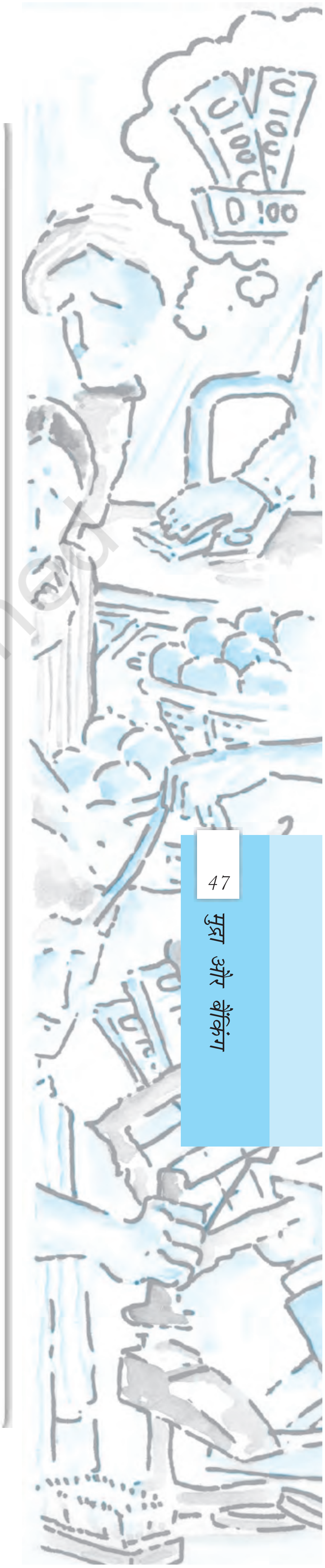

© NCERT not to be republished

और धनात्मक संबंध रहता है। नाममात्र के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से संव्यवहार के कुल मूल्य में वृद्धि सूचित होती है और इस प्रकार समीकरण (3.1) से संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग अपेक्षाकृत अधिक होती है। अतः सामान्यतः समीकरण (3.1) में निम्न प्रकार से परिवर्तन किया जा सकता है:

$$M_T^d = kPY \qquad (3.3)$$

जहाँ Y वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद है और P सामान्य कीमत स्तर अथवा सकल घरेलू उत्पादक अवस्फीतिक है। उपर्युक्त समीकरण बताता है कि किसी अर्थव्यवस्था में संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग का अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय और उसके औसत कीमत स्तर के बीच धनात्मक संबंध होता है।

सट्टा उद्देश्य प्रयोजन

कोई व्यक्ति भू-संपत्ति, बहुमूल्य धातुओं, बंधपत्रों, मुद्रा इत्यादि के रूप में अपने पास धन संचित कर सकता है। सरलता की दृष्टि से हम मुद्रा के अलावा परिसंपत्तियों के अन्य सभी रूपों को मिलाकर एकल कोटि "बंधपत्र" बना लें। प्रतीकात्मक रूप में बंधपत्र ऐसे कागज़ हैं, जो एक समयावधि के उपरांत भविष्य में मौद्रिक प्रतिफल की धारा का वादा करते हैं। सरकार अथवा फर्म जनता से लिए गए उधार के लिए इन कागज़ों को जारी करते हैं और बाज़ार में इन्हें खरीदा-बेचा जा सकता है। निम्नलिखित द्वि-आवधिक बंधपत्र पर विचार कीजिए। कोई फर्म जनता से 100 रु. का कर्ज़ लेना चाहती है। वह एक बंधपत्र जारी करती है जो प्रथम वर्ष के अंत में 10 रु. और दूसरे वर्ष के अंत में मूलधन 100 रु. के साथ 10 रु. के योगफल को देने का भरोसा दिलाता है। ऐसे बंधपत्र का *अंकित मूल्य* 100 रु., *परिपक्वता अवधि* 2 वर्ष और *कूपन* दर 10 प्रतिशत है। कल्पना कीजिए कि आपके बचत बैंक खाते पर प्रचलित ब्याज की दर 5% के बराबर है। स्वाभाविक है कि आप इस बंधपत्र से अर्जित आय की तुलना अपने बचत बैंक खाते के ब्याज से करेंगे, इस संबंध में आप जो प्रश्न करेंगे वह इस प्रकार है: कितना रुपया बचत बैंक खाते में रखा जाये कि उससे वर्ष के अंत में 10 रु. का सृजन हो सके? इस राशि को X मान लीजिए।

अतः,

$$X\left(1 + \frac{5}{100}\right) = 10$$

अथवा, दूसरे शब्दों में,

$$X = \frac{10}{\left(1+\frac{5}{100}\right)}$$

X की इस मात्रा को *बाज़ार की ब्याज* दर *के बट्टे पर 10 रु॰ का वर्तमान मूल्य* कहते हैं। इसी प्रकार, मुद्रा की वह मात्रा जो बचत बैंक खाते में रखी जाती है, इससे 2 वर्ष के अंत में 110 रु. का सृजन होगा। अतः बंधपत्र से प्राप्त प्रतिफल का वर्तमान मूल्य निम्नलिखित के बराबर होगा,

$$\text{वर्तमान मूल्य } (PV) = X + Y = \frac{10}{\left(1+\frac{5}{100}\right)} + \frac{(10+100)}{\left(1+\frac{5}{100}\right)^2}$$

उपर्युक्त गणना से प्रकट होता है कि यह 109.29 रु. (लगभग) है। अभिप्राय यह है कि आप अपने बचत बैंक खाते में यदि 109.29 रु. रखेंगे, तो उससे उतना ही प्रतिफल प्राप्त होगा जितना कि बंधपत्र से। किंतु बंधपत्र का विक्रेता उतना ही प्रदान करता है, जितना कि उसका अंकित मूल्य 100 रु. है।

© NCERT not to be republished

स्पष्टत: बचत बैंक खाते की अपेक्षा बंधपत्र अधिक आकर्षक है और लोगों में बंधपत्र लेकर रखने की तीव्रता बढ़ जाएगी। प्रतिस्पर्धी बोली से बंधपत्र के उपर्युक्त अंकित मूल्य में वृद्धि तब तक होगी, जब तक कि बंधपत्र वर्तमान मूल्य (PV) के बराबर न हो जाएगा। यदि कीमत वर्तमान मूल्य (PV) से अधिक होगी तो बंधपत्र बचत बैंक खाते की अपेक्षा कम आकर्षक होगा और लोग इससे छुटकारा पाना चाहेंगे। बंधपत्र की पूर्ति की अधिपूर्ति होगी और बंधपत्र की कीमत पर दबाव नीचे की ओर होगा, जो इसे वर्तमान मूल्य (PV) तक वापस खींच लाएगा। स्पष्ट है कि स्पर्धी परिसंपत्ति बाज़ार की दशा में बंधपत्र की कीमत अपने वर्तमान मूल्य के बराबर संतुलन की स्थिति में होगी।
अब मान लीजिए कि ब्याज की बाज़ार दर में 5% से 6% की वृद्धि होती है। अत: उसी बंधपत्र का वर्तमान मूल्य और कीमत निम्नलिखित होगा:

$$\frac{10}{(1+\frac{6}{100})} + \frac{(10+100)}{(1+\frac{6}{100})^2} = 107.33 \text{ (लगभग)}$$

अत: बंधपत्र की कीमत और ब्याज की बाज़ार दर में प्रतिलोम संबंध होता है।
भिन्न-भिन्न लोगों की अर्थव्यवस्था के संबंध में अपनी निजी सूचना के आधार पर ब्याज की बाज़ार दर में भविष्य में होने वाले संचलन के संबंध में आशाएँ भिन्न-भिन्न होंगी। यदि आप सोचते हैं कि ब्याज की बाज़ार दर अकस्मात 8% वार्षिक पर स्थिर होती है, तो आप 5 प्रतिशत चालू के दर के बारे में विचार कर सकते हैं, जो धारणीय समयावधि में बहुत कम हैं। आप ब्याज दर में वृद्धि के बारे में आशा कर सकते हैं और परिणामत: बंधपत्र की कीमत गिर सकती है। यदि आप एक बंधपत्रकर्मी हैं तो बंधपत्र की कीमत में कमी का अर्थ है कि आपको हानि होगी, ठीक उसी तरह जैसे आपके द्वारा धारण की गई संपत्ति के मूल्य में अकस्मात बाज़ार में मूल्यह्रास के कारण आपको हानि होती है। बंधपत्र की कीमत में गिरावट से हुई इस हानि को बंधपत्र धारी की *पूँजी हानि* कहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में आप अपने बंधपत्र को बेचने का प्रयास करेंगे और उसके बदले मुद्रा धारण करेंगे। अत: ब्याज की दर और बंधपत्र की कीमत में भविष्य में होने वाले संचलन के संबंध में सट्टा के लिए मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है। जब ब्याज की दर बहुत ऊँची हो तो हर कोई भविष्य में इसके गिरने की आशा करता है और इस प्रकार बंधपत्र धारण करने से पूँजीगत लाभ की आशा करता है। अत: लोग अपनी मुद्रा को बंधपत्र में बदल देते हैं। इस प्रकार सट्टा के लिए मुद्रा की माँग कम होगी। जब बाज़ार दर गिरती है, तो बहुसंख्यक लोग आशा करते हैं कि भविष्य में इसमें वृद्धि होगी और पूँजीगत हानि की आशा करते हैं। इस प्रकार, वे अपने बंधपत्र को मुद्रा में परिवर्तित करते हैं जिससे सट्टा के लिए मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है। सट्टा के लिए मुद्रा की माँग और ब्याज की दर में व्युत्क्रम संबंध होता है। एक सरल रूप की कल्पना करने पर सट्टा के लिए मुद्रा की माँग को इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$M_s^d = \frac{r_{max} - r}{r - r_{min}} \qquad (3.4)$$

जहाँ r ब्याज की बाज़ार दर और r_{max} और r_{min} उच्च और निम्न मान्यताएँ धनात्मक नियतांक हैं। समीकरण (3.4) से स्पष्ट है कि r में r_{max} से r_{min} तक में कमी होती है, तो M_s^d का मूल्य शून्य से अनंत तक बढ़ता है।

जैसाकि पूर्वोलिखित है कि ब्याज की दर को धारित मुद्रा अधिशेष का अवसर लागत अथवा कीमत के रूप में समझा जा सकता है। यदि अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है और लोग बंधपत्र खरीदते हैं, तो बंधपत्र के लिए मुद्रा की इस अतिरिक्त माँग में वृद्धि होगी, जिससे

© NCERT not to be republished

बंधपत्र की कीमत बढ़ेगी और ब्याज की दर में गिरावट आएगी। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में मुद्रा की बढ़ी हुई पूर्ति से अधिशेष मुद्रा धारित करने के लिए आपको एक कीमत चुकानी पड़ेगी, अर्थात् ब्याज की दर में कमी आएगी। किंतु, यदि ब्याज की बाज़ार दर पहले से ही काफी निम्न हो, जिससे कि हर कोई यह आशा करे कि भविष्य में इसमें वृद्धि होगी, इस कारण से कोई पूँजी की क्षति करके बंधपत्र नहीं रखेगा। अर्थव्यवस्था में हर कोई अपने धन को मुद्रा अधिशेष के रूप में रखता है। यदि अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त मुद्रा इंजेक्ट की जाती है, तो इसका उपयोग बंधपत्र की माँग में वृद्धि और पुन: r_{min} स्तर से नीचे ब्याज की दर में कमी के बिना, मुद्रा अधिशेष के लिए लोगों की लालच को परितृप्त करने में इसका उपयोग किया जाएगा। ऐसी स्थिति को *तरलता पाश* कहते हैं। सट्टा के लिए मुद्रा की माँग फलन यहाँ अनंत लोचदार है।

रेखाचित्र 3.1 में सट्टा के लिए मुद्रा की माँग को समस्तरीय अक्ष पर और ब्याज की दर को उर्ध्व-अक्ष पर अंकित किया गया है। जब $r = r_{max}$, तो सट्टा के लिए मुद्रा की माँग शून्य है। ब्याज की दर इतनी ऊँची है कि हर कोई भविष्य में इसके गिरने की आशा करता है और इसलिए यह विश्वास करता है कि भविष्य में पूँजी लाभ होगा। अत: हर कोई सट्टा मुद्रा अधिशेष को बंधपत्र में बदल देता है। जब $r = r_{min}$, तो अर्थव्यवस्था तरलता पाश में होती है। हर कोई ब्याज दर में भविष्य में वृद्धि के लिए तथा बंधपत्र की कीमत में गिरावट के लिए आश्वस्त रहता है। हर कोई अपने धन को मुद्रा के रूप में रखता है और सट्टा के लिए मुद्रा की माँग अनंत होती है।

अत: अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल माँग की रचना अंतरण माँग और सट्टा माँग से होती है। पूर्ववर्ती वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (GDP) और कीमत स्तर का सीधा समानुपाती होता है, जबकि परवर्ती और ब्याज की बाज़ार दर में व्युत्क्रम संबंध होता है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की समस्त माँग को संक्षेप में निम्नलिखित समीकरण से दर्शाया जा सकता है

$$M^d = M_T^d + M_S^d$$

या,
$$M^d = kPY + \frac{r_{max} - r}{r - r_{min}} \qquad (3.5)$$

मुद्रा की पूर्ति

आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा के अंतर्गत मुख्य रूप से देश के मौद्रिक प्राधिकरण द्वारा जारी करेंसी, नोट और सिक्के आते हैं। भारत में करेंसी नोट भारतीय रिज़र्व बैंक जारी करता है जो कि भारत का मौद्रिक प्राधिकरण है। किंतु सिक्के भारत सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं। करेंसी नोट और सिक्कों के अतिरिक्त, व्यावसायिक बैंकों में लोगों द्वारा जमा किये गए बचत खाते और चालू खाते को भी मुद्रा कहा जाता है, क्योंकि इन खातों से आहरित चेकों का उपयोग संव्यवहार के लिए किया जाता है। ऐसी जमा को *माँग जमा* कहते हैं, जो खाताधारी की माँग पर बैंक द्वारा भुगतान योग्य होता है। अन्य जमा, जैसे *आवधि जमा* की परिपक्वता की अवधि निश्चित होती है और इसे आवधिक जमा कहा जाता है।

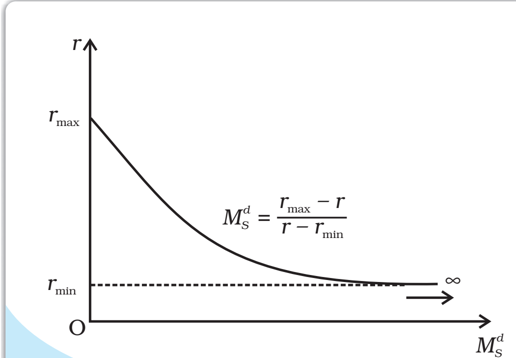

रेखाचित्र 3.1

सट्टे के लिए मुद्रा की माँग

चूँकि 100 रु. के नोट का उपयोग करके दुकान से 100 रु. मूल्य की वस्तु प्राप्त की जा सकती है, इसलिए कागज़ का मूल्य नगण्य होता है–निश्चित रूप से 100 रु. से कम। इसी तरह, 5 रु. के सिक्के में धातु का मूल्य संभवत: 5 रु. नहीं होता है, तो फिर लोग इन सिक्कों और नोट को उन वस्तुओं के विनिमय के रूप में क्यों स्वीकार करते हैं, जो स्पष्ट रूप से इनसे अधिक मूल्यवान है? करेंसी नोट और सिक्कों का मूल्य इन मदों के प्राधिकरण द्वारा जारी की गई गारंटी से व्युत्पन्न होता है। प्रत्येक करेंसी नोट पर भारतीय रिज़र्व बैंक के द्वारा एक वादा किया जाता है। यदि कोई भारतीय रिज़र्व बैंक अथवा किसी व्यावसायिक बैंक को नोट प्रस्तुत करता है, भारतीय रिज़र्व बैंक उस नोट पर अंकित मूल्य के बराबर क्रय-शक्ति प्रदान करने के लिए उत्तरदायी है। सिक्कों के संबंध में भी यही बात सही है। अत: करेंसी नोट और सिक्कों को *कागज़ी मुद्रा* कहते हैं। इनका सोने और चाँदी के सिक्के की तरह *आंतरिक मूल्य* नहीं होता। इनको *वैधानिक पत्र* भी कहते हैं, क्योंकि देश के किसी भी नागरिक के द्वारा इसके किसी भी प्रकार के संव्यवहार को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। किंतु बचत अथवा चालू खाते में आहरित चेक को किसी के भी द्वारा अस्वीकार किया जा सकता है। अत: माँग जमा वैध मुद्रा नहीं है।

वैध परिभाषाएँ: संकुचित और व्यापक मुद्रा

मुद्रा की माँग की तरह, मुद्रा की पूर्ति एक स्टॉक परिवर्त होती है। एक निश्चित समय में लोगों में संचरण करने वाली कुल मुद्रा को मुद्रा की पूर्ति कहते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक मुद्रा की पूर्ति के वैकल्पिक मापों को चार रूपों में प्रकाशित करता है, नामत: M1, M2, M3 और M4.। ये सभी निम्नलिखित तरह से परिभाषित किये जाते हैं–

M1 = CU + DD

M2 = M1 + डाकघर बचत बैंकों में बचत जमाएँ

M3 = M1 + व्यावसायिक बैंकों की निवल आवधिक जमाएँ

M4 = M3 + डाकघर बचत संस्थाओं में कुल जमाएँ (राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रों को छोड़कर)

यहाँ, CU लोगों द्वारा रखी गई करेंसी (नोट और सिक्के) हैं और DD व्यावसायिक बैंकों द्वारा रखी गयी निवल माँग जमा है। 'निवल' शब्द से बैंक के द्वारा रखी गयी लोगों की जमा का ही बोध होता है और इसलिए यह मुद्रा की पूर्ति में शामिल हैं। अंतर बैंक जमा, जो एक व्यावसायिक बैंक दूसरे व्यावसायिक बैंक में रखते हैं, को मुद्रा की पूर्ति के भाग के रूप में नहीं जाना जाता है।

M1 और M2 *संकुचित मुद्रा* कहलाती है। M3 और M4 को *व्यापक मुद्रा* कहते हैं। ये कोटियाँ तरलता के घटते हुए क्रम में होती है। M1 संव्यवहार के लिए सबसे तरल और आसान है, जबकि M4 इनमें सबसे कम तरल है। M3 मुद्रा पूर्ति की माप का सबसे साधारण रूप है। इसे *समस्त मौद्रिक संसाधन*[2] भी कहते हैं।

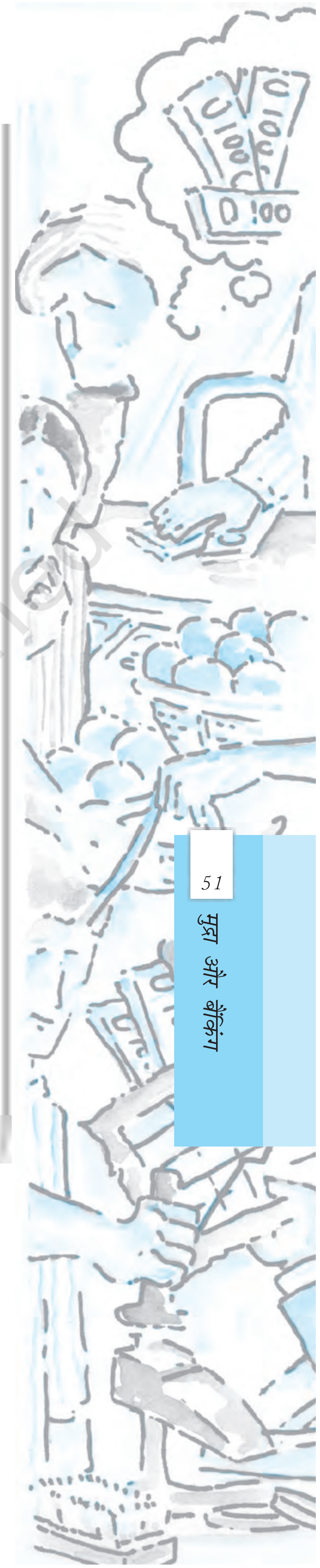

© NCERT not to be republished

[2]*कालावधि में M1 और M3 में अंतर का आकलन के लिए परिशिष्ट को देखिए।*

बॉक्स 3.2: विमुद्रीकरण

अर्थव्यवस्था में भ्रष्टाचार, कालाधन, आतंकवाद और जाली मुद्रा के चलन जैसी समस्याओं से निपटने के लिये, नवंबर 2016 में, भारत सरकार द्वारा विमुद्रीकरण एक नई पहल थी। 500 और 1000 रूपयों के करेंसी नोट विधिग्राह्य नहीं रहे। 500 तथा 2000 रूपयों के नोटों की एक नई श्रृंखला शुरू की गई। लोगों को कहा गया कि वे 31 दिसंबर 2016 तक बिना किसी घोषणा के पुराने नोटों को अपने बैंक खाते में जमा कर सकते हैं और 31 मार्च 2017 तक घोषणासहित भारतीय रिजर्व बैंक में जमा कर सकते हैं।

व्यवस्था को पूर्णरूपेण टूटने तथा चलन में नकदी की कमी से बचाने के लिये, सरकार ने लोगों को 4000 रूपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन, पुराने नोटों में परिवर्तित करने की अनुमति प्रदान की। पेट्रोल पम्पों, सरकारी अस्पतालों में तथा सरकारी अदायगियों जैसे बिजली के बिल, करों आदि के भुगतान के लिये, 12 दिसंबर 2016 तक पुराने नोट विधिग्राह्य मुद्रा के रूप में स्वीकार किए गए।

सरकार के इस कदम की प्रशंसा तथा आलोचना दोनों हुई। बैंकों तथा ए.टी.एम. के बाहर लोगों की लंबी-लंबी कतारें लगने लगी। चलन में मुद्रा की कमी का आर्थिक क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ा। वैसे, समय बीतने के साथ स्थिति में सुधार हुआ और सामान्य स्थिति आ गई।

इस कदम के धनात्मक प्रभाव भी हुए। इससे कर अनुपालन में सुधार हुआ और बड़ी संख्या में लोगों को कर के दायरे में लाया जा सका। लोगों की बचत औपचारिक वित्तीय व्यवस्था के अंतर्गत आ गई। फलस्वरूप, बैंकों के पास अधिक साधन एकत्रित हो गए जिनको लोगों को कम ब्याज पर ऋण प्रदान करने में उपयोग किया जा सकता है। यह कदम, कालेधन की समस्या को हल करने के लिये सरकार के निर्णय का प्रदर्शन है कि कर की चोरी को अब आगे सहन नहीं किया जायेगा। कर वंचक सोचेंगे कि अचानक दंडात्मक कर देने की जोखिम की अपेक्षा, नियमित सामान्य कर देना उत्तम है। कर अनुपालन बढ़ेगा और भ्रष्टाचार में कमी आयेगी। नकद लेनदेनों को औपचारिक भुगतान प्रणाली में शिफ्ट करके विमौद्रीकरण एक और तरीके से कर प्रशासन की सहायता होगी। गृहस्थ और फर्में, नकद से इलेक्ट्रॉनिक भुगतान टेक्नोलॉजी की तरफ शिफ्ट होने लगे हैं।

© NCERT not to be republished

सारांश

मुद्रा के माध्यम के बिना वस्तुओं के विनिमय को वस्तु विनिमय कहते हैं। आवश्यकताओं के उभय संयोग के अभाव में यह अप्रचलित हो गया। मुद्रा साधारणतः विनिमय के स्वीकार्य माध्यम के कार्य से विनिमय को सुगम बनाती है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में लोग मुख्य रूप से दो उद्देश्यों से मुद्रा धारण करते हैं- अंतरण उद्देश्य और सट्टा उद्देश्य। इसके विपरीत मुद्रा की पूर्ति में करेंसी नोट और सिक्के, व्यावसायिक बैंकों द्वारा रखी गई माँग और आवधिक जमा आदि आते हैं। इसका वर्गीकरण संकुचित और व्यापक मुद्रा के रूप में तरलता के घटते हुए क्रम के अनुसार किया जाता है। भारत में मुद्रा की पूर्ति का नियमन भारतीय रिज़र्व बैंक करता है, जो कि देश के मौद्रिक प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तनों के लिए लोगों के विभिन्न कार्यकलाप, देश के व्यावसायिक बैंक और भारतीय रिज़र्व बैंक उत्तरदायी हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक उच्च शक्तिशाली मुद्रा के स्टॉक ब्याज दर और व्यावसायिक बैंकों की रिज़र्व आवश्यकताओं को नियंत्रित करके मुद्रा की पूर्ति को नियंत्रित करता है। यह बाह्य आघातों से अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति का स्थिरीकरण करता है।

मूल संकल्पनाएँ

वस्तु विनिमय	आवश्यकताओं का दुहरा संपातन
मुद्रा	विनिमय माध्यम
लेखा की इकाई	संचय मूल्य
बंधपत्र	ब्याज दर
तरलता पाश	कागज़ी मुद्रा
वैधानिक पत्र	संकुचित मुद्रा
व्यापक मुद्रा	करेंसी जमा अनुपात
आरक्षित जमा अनुपात	उच्च शक्तिशाली मुद्रा
मुद्रा गुणकअंतिम ऋणदाता	खुली बाज़ार कार्रवाई
बैंक दर	नकद आरक्षित अनुपात
रेपो दर	उलट रेपो दर

अभ्यास

1. वस्तु विनिमय प्रणाली क्या है? इसकी क्या कमियाँ हैं?
2. मुद्रा के प्रमुख कार्य क्या-क्या हैं? मुद्रा किस प्रकार वस्तु विनिमय प्रणाली की कमियों को दूर करता है?
3. संव्यवहार के लिए मुद्रा की माँग क्या है? किसी निर्धारित समयावधि में संव्यवहार मूल्य से यह किस प्रकार संबंधित है?
4. भारत में मुद्रा पूर्ति की वैकल्पिक परिभाषा क्या है?
5. वैधानिक पत्र क्या है? कागज़ी मुद्रा क्या है?
6. उच्च शक्तिशाली मुद्रा क्या है?
7. व्यावसायिक बैंक के कार्यों का वर्णन कीजिए।
8. मुद्रा गुणक क्या है? गुणक का मूल्य क्या निर्धारित करता हैं?
9. भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति के कौन-कौन से उपकरण हैं?
10. क्या आप ऐसा मानते हैं कि अर्थव्यवस्था में व्यावसायिक बैंक ही 'मुद्रा का निर्माण करते हैं?'
11. भारतीय रिज़र्व बैंक की किस भूमिका को अंतिम ऋणदाता कहा जाता है?

© NCERT not to be republished

सुझावात्मक पठन

डोर्न बुश आर. और एस. फिशर 1990, *मैक्रोइकोनॉमिक्स* (पाँचवा संस्करण) पृष्ठ 345-427, मैक्ग्राहिल, पेरिस।

ब्रेनसन डब्ल्यू. एच. 1992, *मैक्रोइकोनॉमिक थ्योरी एंड पॉलिसी* (छठा संस्करण) पृष्ठ 243-280, हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली।

सिकदर एस., 2006, *प्रिंसिपल ऑफ मैक्रोइकोनॉमिक्स,* पृष्ठ 77 - 89, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।

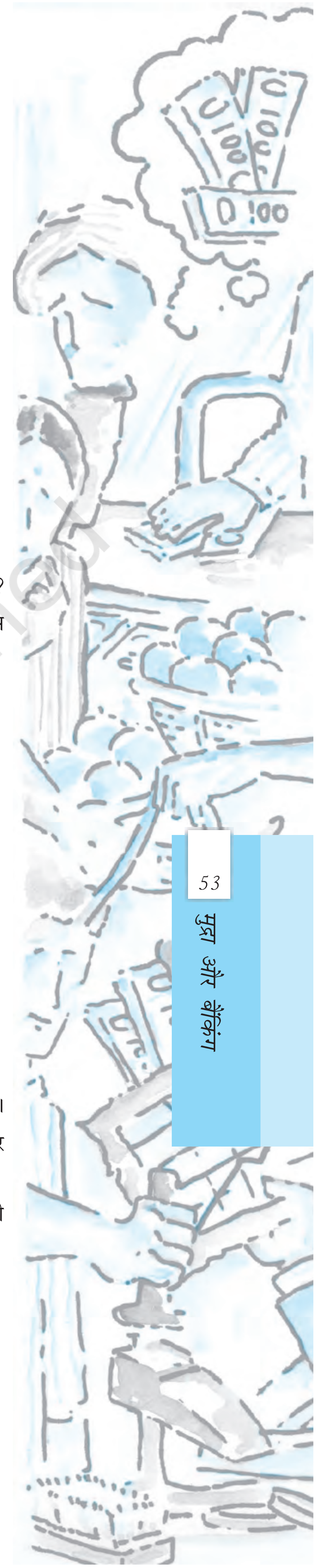

परिशिष्ट 3.1

अनंत ज्यामितीय शृंखलाओं का योग

हम निम्नलिखित रूप से एक अनंत ज्यामितीय शृंखलाओं का योग ज्ञात करना चाहते हैं :

$S = a + a.r + a.r^2 + a.r^3 + \cdots + a.r^n \cdots \infty$

जहाँ a और r वास्तविक संख्याएँ हैं और $0 < r < 1$ है। योग निकालने के लिए उपर्युक्त समीकरण को r से गुणा कीजिए।

$r.S = a.r + a.r^2 + a.r^3 + \cdots + a.r^{n+1} \cdots \infty$

दूसरे समीकरण को प्रथम से घटा दीजिए

$$S - r.S = a$$

अथवा $$(1 - r)S = a$$

जिससे प्राप्त होता है $$S = \frac{a}{1-r}$$

मुद्रा गुणक की व्युत्पत्ति के लिए प्रयुक्त उदाहरण में $a = 1$ और $r = 0.4$ अतः अनंत शृंखलाओं का मूल्य है–

$$\frac{1}{1-0.4} = \frac{5}{3}$$

परिशिष्ट 3.2

भारत में मुद्रा की पूर्ति

तालिका 3.4: **M_1 एवं M_3 में एक समयावधि परिवर्तन**
(बिलियन)

वर्ष	M_1 (सकुचित मुद्रा)	M_3 (व्यापक मुद्रा)
1999–00	3417.96	11241.74
2000–01	3794.33	13132.04
2001–02	4228.24	14983.36
2002–03	4735.58	17179.36
2003–04	5786.94	20056.54
2004–05	6497.66	22456.53
2005–06	8263.89	27194.93
2006–07	9679.25	33100.38
2007–08	11558.10	40178.55
2008–09	12596.71	47947.75
2009–10	14892.68	56026.98
2010–11	16383.45	65041.16
2011–12	17373.94	73848.31
2012–13	18975.26	83898.19
2013–14	20597.62	95173.86
2014–15	22924.04	105501.68
2015–16	26105.67	116543.39

स्रोत : हैंडबुक ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन इंडियन इकोनॉमी

© NCERT not to be republished

एक समयावधि में मौद्रिक आधार के घटकों में परिवर्तन के स्रोत
मुद्रा स्टॉक के घटक

तालिका 3.5: **मौद्रिक आधार में बदलाव के स्रोत**

वर्ष	*मुद्रा परिचलन में*	*बैंक के पास पूँजी*	*जनता के पास पूँजी (2-3)*	*भारतीय रिजर्व बैंक के पास अन्य जमा*	*भारतीय रिजर्व बैंक के पास अन्य बैंक का खाता*
1981-82	154.11	9.37	144.74	1.68	54.19
1991-92	637.38	26.40	610.98	8.85	348.82
2001-02	2509.74	101.79	2407.94	28.31	841.47
2004-05	3686.61	123.47	3563.14	64.54	1139.96
2005-06	4295.78	174.54	4121.24	68.43	1355.11
2006-07	5040.99	212.44	4828.54	74.67	1972.95
2007-08	5908.01	223.90	5684.10	90.27	3284.47
2008-09	6911.53	257.03	6654.50	55.33	2912.75
2009-10	7995.49	320.56	7674.92	38.06	3522.99
2010-11	9496.59	378.23	9118.36	36.53	4235.09
2011-12	10672.30	435.60	10236.70	28.22	3562.91
2012-13	11909.75	499.14	11410.61	32.40	3206.71
2013-14	13010.75	552.55	12458.19	19.65	4297.03
2014-15	14483.12	621.31	13861.82	145.90	4655.61
2015-16 (P)	16634.63	653.68	15980.95	154.51	5018.26

स्रोत : हैंडबुक ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन इंडियन इकोनॉमी

© NCERT not to be republished

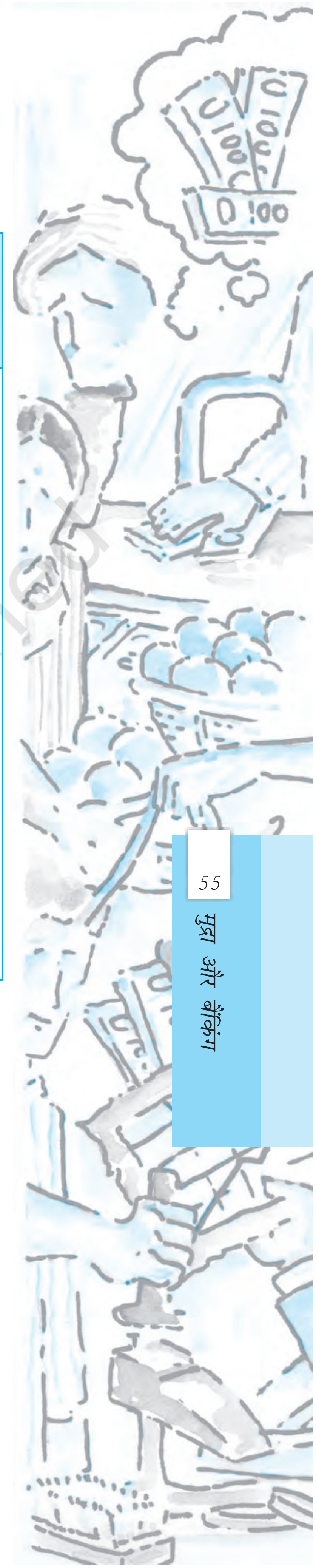

अध्याय 4

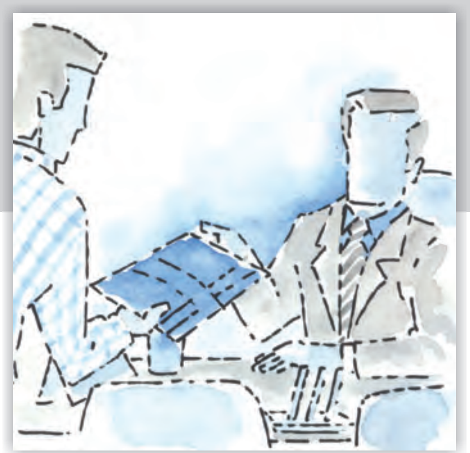

आय और रोजगार के निर्धारण

अब तक हमने राष्ट्रीय आय, कीमत स्तर, ब्याज की दर इत्यादि के मूल्यों को नियंत्रित करने वाली शक्तियों का अन्वेषण किये बिना ही एक तदर्थ रूप से इनके संबंध में चर्चा की है। समष्टि अर्थशास्त्र का मौलिक उद्देश्य इन परिवर्तों के मूल्यों को निर्धारित करने के प्रक्रमों का वर्णन करने में सक्षम सैद्धांतिक उपकरणों अर्थात मॉडलों का विकास करना है। विशेष तौर पर मॉडलों के माध्यम से कुछ प्रश्नों की सैद्धांतिक व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है, जैसे–अर्थव्यवस्था में धीमी संवृद्धि की अवधि अथवा मंदी अथवा कीमत स्तर में वृद्धि या बेरोजगारी में वृद्धि आदि के क्या कारण हैं। एक ही समय इन सभी परिवर्तों के संबंध में बताना कठिन है। अतः जब हम किसी परिवर्त विशेष के निर्धारण पर ध्यान केंद्रित करें, तो हमें अन्य सभी परिवर्तों के मूल्यों को स्थिर रखना चाहिए। यह प्रायः किसी भी सैद्धांतिक अभ्यास का प्ररूपी रूढ़ीकरण है, जिसे *सेटेरिस पारिबस (Ceteris Paribus)* की मान्यता कहते हैं, जिसका शब्दिक अर्थ है 'यदि अन्य बातें समान रहें'। आप निम्नलिखित प्रकार से इस प्रक्रिया पर विचार कर सकते हैं: दो समीकरणों से दो परिवर्तों x और y का मूल्य निकालने के लिए, हम प्रथम समीकरण में x का मूल्य y के पदों में लिखते हैं और इस मूल्य को दूसरे समीकरण में प्रतिस्थापित कर पूर्ण हल प्राप्त करते हैं। इसी विधि का प्रयोग हम समष्टि अर्थशास्त्र में भी करते हैं। इस अध्याय में हम अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु की निर्धारित कीमत तथा नियत ब्याज दर के बिना राष्ट्रीय आय के निर्धारण का अध्ययन करेंगे। इस अध्याय में इस्तेमाल सैद्धांतिक मॉडल जॉन मेनार्ड केन्स द्वारा दिए गए सिद्धांत पर आधारित है।

4.1 समग्र माँग तथा इसके अवयव

राष्ट्रीय आय लेखांकन वाले अध्याय में हम उपभोग, निवेश अथवा किसी अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तुओं व सेवाओं का कुल निर्गत (सकल घरेलू उत्पाद) के संबंध में अध्ययन कर चुके हैं। इन पदों के दो अर्थ होते हैं। *अध्याय-2* में इनका प्रयोग लेखांकन के अर्थ में हुआ है–जिससे किसी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत एक दिए हुए वर्ष में उत्पादन गतिविधियों की माप करने से इन मदों का वास्तविक मूल्य प्राप्त होता है। इन वास्तविक अथवा लेखांकन मूल्यों को, हम इन मदों का यथार्थ माप कहते हैं।

© NCERT not to be republished

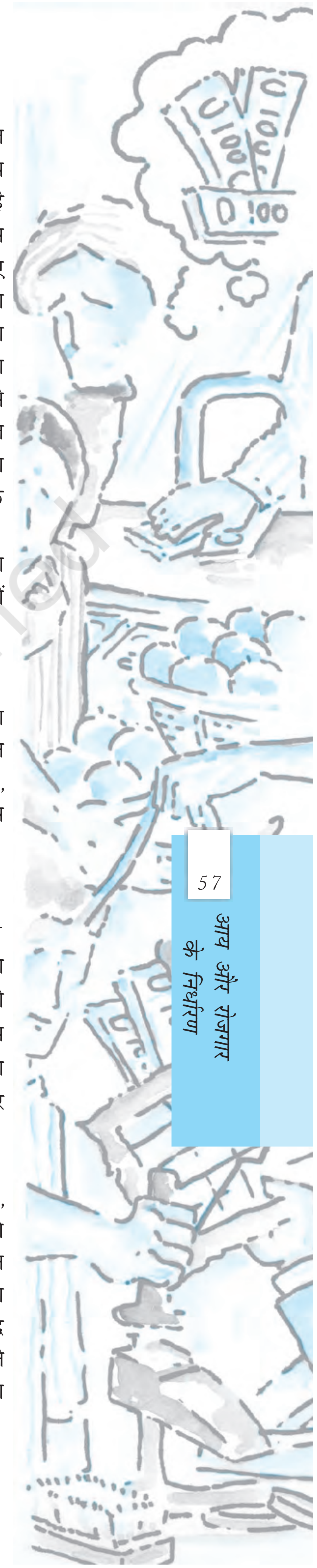

तथापि इन पदों का प्रयोग भिन्न अर्थों में किया जा सकता है। उपभोग से यह पता नहीं चल सकता कि वास्तव में किसी निश्चित वर्ष में लोगों ने कितना उपभोग किया, बल्कि उस अवधि में उन्होंने उपभोग की कितनी मात्रा की योजना बनायी। इसी तरह, निवेश का अर्थ हो सकता है कि उत्पादक ने अपनी माल-सूची में कितनी मात्रा में वृद्धि की योजना बनायी है। यह मात्रा उस मात्रा से भिन्न भी हो सकती है, जितना कि उत्पादन वह अंतिम रूप से कर पाती है। मान लीजिए कि उत्पादक वर्ष के अंत तक अपने भंडार में 100 रु. मूल्य की वस्तु जोड़ने की योजना बनाता है। अतः उस वर्ष में उसका नियोजित निवेश 100 रु. है। किंतु बाज़ार में उसकी वस्तुओं की माँग में अप्रत्याशित वृद्धि के कारण उसकी विक्रय मात्रा में उस परिमाण से अधिक वृद्धि होती है, जितना कि उसने बेचने की योजना बनाई थी। इस अतिरिक्त माँग की पूर्ति के लिए उसे अपने भंडार से 30 रु. मूल्य की वस्तु बेचनी पड़ती है। अतः वर्ष के अंत में उसकी माल-सूची में केवल (100 – 30) रु. = 70 रु. की वृद्धि होती है। उसका नियोजित निवेश 100 रु. है, जबकि उसका यथार्थ निवेश केवल 70 रु. है। इन परिवर्तों-उपभोग, निवेश अथवा अंतिम वस्तुओं के निर्गत के नियोजित मूल्य को हम उनकी **प्रत्याशित** माप कहते हैं।

सरल शब्दों में, प्रत्याशित का अर्थ है नियोजित तथा यथार्थ से अभिप्राय है, जो वास्तव में हुआ हो। आय निर्धारण को समझने के लिए, हमें समग्र माँग के विभिन्न अवयवों के नियोजित मानों की जानकारी होना आवश्यक है। आइए, इन अवयवों को देखते हैं।

4.1.1 उपभोग

उपभोग माँग का सबसे महत्वपूर्ण निर्धारण घरेलू आय है। एक उपभोग फलन आय तथा उपभोग में संबंध की व्याख्या करता है। सरलतम उपभोग फलन में यह माना जाता है कि आय में परिवर्तन होने के साथ-साथ उपभोग में स्थिर दर से परिवर्तन होता है। निः संदेह, यदि आय शून्य भी हो, तो भी कुछ उपभोग तो होगा ही। क्योंकि उपभोग की यह मात्रा आय से स्वतंत्र है, इसे स्वतन्त्र उपभोग कहा जाता है। हम इस फलन की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं–

$$C = \overline{C} + cY \qquad (4.1)$$

यहाँ C, घरेलू क्षेत्र द्वारा किया गया उपभोग व्यय है। यह दो अवयवों से मिलकर बना है– स्वतंत्र उपभोग $\overline{C}$ तथा प्रेरित उपभोग (cY)। स्वतंत्र उपभोग के द्वारा अंकित किया जाता है तथा यह उस उपभोग को दर्शाता है जो आय से स्वतंत्र है। यदि आय के शून्य होने पर भी उपभोग हो रहा है, तो यह स्वतंत्र उपभोग के कारण है। उपभोग का प्रेरित अवयव, cY उपभोग की आय पर निर्भरता को दर्शाता है। यदि आय में 1 रूपये की वृद्धि हो तो प्रेरित उपभोग में सीमांत उपभोग प्रवृति (*MPC*) अर्थात् की वृद्धि होगी। इसे आय में परिवर्तन होने पर उपयोग में परिवर्तन की दर के रूप में समझाया जा सकता है। $MPC = \frac{\Delta C}{\Delta Y} = C$

आइए, हम यह देखें कि *MPC* के क्या-क्या मान हो सकते हैं। जब आय में परिवर्तन होता है, तो उपभोग (ΔC) में होने वाला परिवर्तन कभी भी आय (ΔY) में परिवर्तन से अधिक नहीं हो सकता। c का अधिकतम मान '1' हो सकता है। दूसरी ओर, हो सकता है कि आय में परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता अपने उपभोग में परिवर्तन न करे। इस स्थिति में, $MPC = 0$। सामान्यतः का मान 0 तथा 1 के बीच में होता है (0 तथा 1 को मिलाकर)। इसका अर्थ हुआ कि आय में वृद्धि होने पर, या तो उपभोक्ता उपभोग में बिल्कुल भी वृद्धि नहीं करेगा ($MPC = 0$), या आय में होने वाली सारी वृद्धि को उपभोग पर खर्च कर देगा $MPC = 1$ या फिर आय में परिवर्तन के एक भाग से उपभोग में परिवर्तन करेगा ($0<MPC<1$)।

© NCERT not to be republished

कल्पना कीजिए कि 'कल्पदेश' नायक एक देश है जिसका उपभोग फलन $C = 100 + 0.8Y$ द्वारा दिया जाता है।

यह दर्शाता है कि जब कल्पदेश में कोई भी आय नहीं होती, इसके नागरिक 100 रू. की वस्तुओं का उपभोग करते हैं। कल्पदेश का स्वतंत्र उपभोग 100 है। इसकी सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.8 है। इसका अर्थ है कि यदि कल्पदेश में 100 रू. की आय-वृद्धि होती है, तो उपभोग में 80 रू. की वृद्धि होगी।

आइए, हम इसके एक ओर पहलू, बचतों को देखें। बचतें आय का वह भाग है जो उपभोग नहीं किया गया। अन्य शब्दों में,

$$S = Y - C$$

हम सीमान्त बचत प्रवत्ति (MPS) को आय में वृद्धि होने पर बचत में परिवर्तन की दर के रूप में परिभाषित करते हैं।

$$MPS = \frac{\Delta S}{\Delta Y} = s$$

क्योंकि $S = Y - C$,

$$s = \frac{\Delta(Y - C)}{\Delta Y}$$

$$= \frac{\Delta Y}{\Delta Y} - \frac{\Delta C}{\Delta Y}$$

$$= 1 - c$$

कुछ परिभाषाएँ

उपभोग सीमांत प्रवृत्ति (MPC) यह आय में प्रति इकाई परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोग में परिवर्तन है। इसे c से संकेतिक किया जाता है और $\frac{\Delta C}{\Delta Y}$ के बराबर होती हैं।

सीमांत बचत प्रवृत्ति (MPS) यह आय में प्रति इकाई परिवर्तन के फलस्वरूप, बचत में परिवर्तन है। इसे s से संकेतिक किया जाता है और I-c के बराबर होता है। इसका निहितार्थ है s+c=1

औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) यह प्रति आम इकाई उपभोग है अर्थात $\frac{C}{Y}$।

औसत बचत प्रवृत्ति (APS) यह प्रति आय इकाई बचत है अर्थात $\frac{S}{Y}$।

प्रत्याशित निवेश: निवेश को भौतिक पूँजी स्टॉक (जैसे कि मशीन, भवन, सड़क इत्यादि, अर्थात् ऐसी कोई भी चीज़ जिनसे भविष्य में अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता में वृद्धि हो) में वृद्धि और उत्पादक की माल-सूची (तैयार माल का स्टॉक) में परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता है। ध्यान दें कि निवेश वस्तुएँ (जैसे-मशीन) भी अंतिम वस्तुओं का भाग हैं। ये कच्चे माल की तरह मध्यवर्ती वस्तुएँ नहीं हैं। किसी दिए हुए वर्ष में मशीनों का जो उत्पादन होता है, उनका प्रयोग उसी वर्ष अन्य वस्तुओं के उत्पादन में नहीं होता है बल्कि कई वर्षों तक उनकी सेवाएँ ली जाती हैं।

© NCERT not to be republished

उत्पादकों का निवेश संबंधी निर्णय, जैसे कि नयी मशीनों की खरीद, अधिकांशतः ब्याज की बाज़ार दर पर निर्भर करता है। किंतु सरलता की दृष्टि से हम यह मान लेते हैं कि फर्म हर वर्ष उसी मात्रा में निवेश करने की योजना बनाती है। प्रत्याशित निवेश माँग को हम इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$I = \bar{I} \qquad (4.2)$$

जहाँ, $\bar{I}$ धनात्मक स्थिरांक है। $\bar{I}$ दिए हुए वर्ष में अर्थव्यवस्था में स्वायत्त (दिया हुआ अथवा बहिर्जात) निवेश को प्रदर्शित करता है।

4.2 दो-सेक्टर मॉडल में आय का निर्धारण

सरकार रहित अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु की प्रत्याशित समस्त माँग ऐसी वस्तुओं पर किये गए कुल प्रत्याशित उपभोग व्यय और प्रत्याशित निवेश व्यय का योग होती है, अर्थात् $AD = C + I$ । समीकरण 4.1 और 4.2 में C और I के मूल्यों को प्रतिस्थापित करने पर अंतिम वस्तुओं की समस्त माँग को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$AD = \bar{C} + \bar{I} + c.Y$$

यदि अंतिम वस्तु बाज़ार संतुलन में हो, तो इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{C} + \bar{I} + c.Y$$

जहाँ Y अंतिम वस्तु की प्रत्याशित अथवा नियोजित निर्गत है। इस समीकरण को दो स्वायत्त पदों $\bar{C}$ और $\bar{I}$ को जोड़कर पुनः इस प्रकार सरल किया जा सकता है:

$$Y = \bar{A} + c.Y \qquad (4.3)$$

जहाँ $\bar{A} = \bar{C} + \bar{I}$ अर्थव्यवस्था का कुल स्वायत्त व्यय है। वास्तव में स्वायत्त व्यय के ये दोनों घटक भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं और अर्थव्यवस्था के जीवन निर्वाह उपभोग स्तर को प्रदर्शित करने वाला $\bar{C}$, प्रायः स्थिर ही रहता है। किंतु $\bar{I}$ में समय-समय पर उतार-चढ़ाव देखा जाता है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की है, समीकरण 4.3 की बायीं ओर Y पद अंतिम वस्तुओं की प्रत्याशित निर्गत अथवा नियोजित पूर्ति को प्रदर्शित करता है। दूसरी ओर, दायीं ओर की अभिव्यक्ति से अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु की प्रत्याशित अथवा नियोजित समस्त माँग प्रदर्शित होती है। जब अंतिम वस्तु बाज़ार और अर्थव्यवस्था संतुलन की स्थिति में होती हैं, तभी प्रत्याशित पूर्ति प्रत्याशित माँग के बराबर होती है। अतः समीकरण 4.3 को अध्याय 2 के तादात्म्य का लेखांकन से भ्रमित नहीं करना चाहिए, जो कि यह बतलाता है कि कुल निर्गत का यथार्थ मूल्य *हमेशा* अर्थव्यवस्था के यथार्थ उपभोग और यथार्थ निवेश के कुल योग के बराबर होता है। यदि अंतिम वस्तु के निर्गत से, जो कि उत्पादक किसी नियत वर्ष में उत्पादन करने का नियोजन करता है अंतिम वस्तु की प्रत्याशित माँग कम हो, तो समीकरण 4.3 सही नहीं होगा। गोदाम में स्टॉक का अंबार लगा रहेगा, जिसे *माल-सूची* का *अनभिप्रेत संचय* कहा जाएगा। यहाँ ध्यान दिया जाना चाहिए कि मालसूची या स्टॉक इसलिए, फर्म के पास ही रहता है। मालसूची में परिवर्तन को मालसूची निवेश कहा जाता है। यह ऋणात्मक या धनात्मक हो सकता है। यदि मालसूची में वृद्धि होती है, तो यह धनात्मक मालसूची निवेश है, जबकि मालसूची में कमी तब यह ऋणात्मक मालसूची निवेश है। मालसूची निवेश दो कारणों से होता है–1. फर्म विभिन्न कारणों से, कुछ स्टॉक अपने पास रखने का निर्णय लेती है (इसे नियोजित मालसूची निवेश कहा जाता है)।

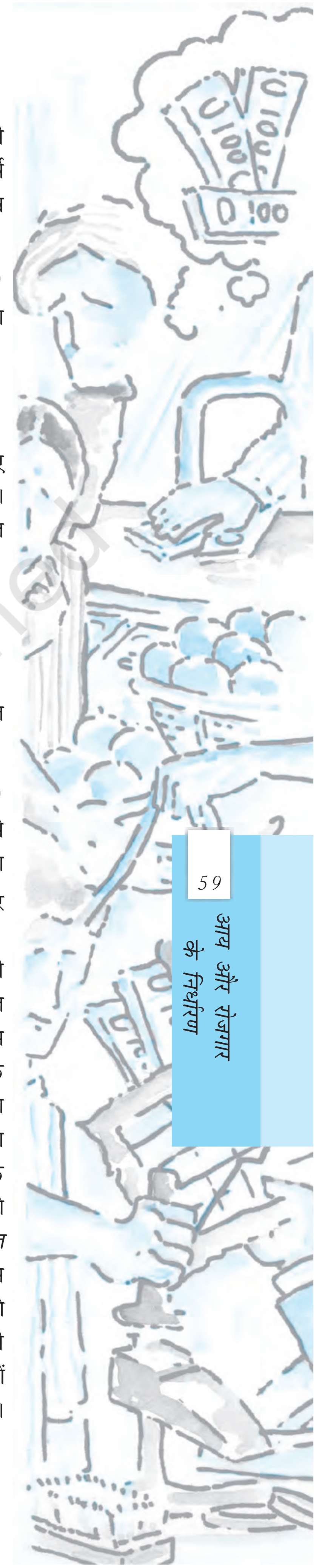

© NCERT not to be republished

2. वास्तविक बिक्री नियोजित बिक्री से कम या ज्यादा हो जाती है, जब फर्मों को मालसूची में वृद्धि या कमी करनी पड़ जाती है (इसे अनियोजित मालसूची निवेश कहा जाता है)। **अतः यद्यपि नियोजित Y नियोजित C+I से अधिक है, फिर भी वास्तविक Y वास्तविक C+Y के बराबर होगी। लेखांकन तादात्म्य की दायीं ओर यथार्थ निवेश में मालों का अनभिप्रेत संचय के रूप में अतिरिक्त निर्गत को दर्शाता है।**

यहाँ अब हम अर्थव्यवस्था में सरकार को शामिल करेंगे। अंतिम वस्तुओं और सेवाओं की समस्त माँग को प्रभावित करने वाले सरकार के मुख्य कार्यकलाप का संक्षिप्त विवरण *राजकोषीय* परिवर्त कर (T) और सरकारी व्यय (G) जो दोनों हमारे विश्लेषण में स्वायत्त हैं, के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। अन्य फर्मों तथा परिवारों की तरह सरकार अपने व्यय (G) के माध्यम से समस्त माँग में वृद्धि करती है। दूसरी ओर, सरकार कर लगाकर परिवारों की आय का एक अंश ले लेती है। अतः उसकी प्रयोज्य आय $Y_d = Y - T$ हो जाती है। परिवार इस प्रयोज्य आय के केवल एक अंश का ही व्यय उपभोग के लिए करते हैं। अतः सरकार को शामिल करने के लिए समीकरण 4.3 में निम्न प्रकार से परिवर्तन करना होगाः

$$Y = \bar{C} + \bar{I} + G + c(Y - T)$$

ध्यान दीजिए कि $\bar{C}$ और $\bar{I}$ की तरह $G - c.T$ स्वायत्त पद $\bar{A}$ में शामिल हो जाता है। इससे विश्लेषण में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं होता है। सरलता की दृष्टि से, हमने इस अध्याय के शेष भाग में सरकारी क्षेत्र की ओर ध्यान नहीं दिया है। यह भी द्रष्टव्य है कि सरकार द्वारा आरोपित अप्रत्यक्ष कर और दिए गए उपदान के बिना अर्थव्यवस्था में उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य, अर्थात सकल घरेलू उत्पाद तादात्म्य रूप से राष्ट्रीय आय के समान होते हैं। यहाँ से आगे, इस अध्याय के पूरे शेष भाग में हम Y को सकल घरेलू उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय के रूप में सूचित करेंगे।

4.3 लघु अवधि में संतुलन आय का निर्धारण

आपको याद होगा कि व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत के अंतर्गत जब हम, एक बाज़ार में माँग और पूर्ति के संतुलन का विश्लेषण करते हैं, माँग और पूर्ति वक्र साथ-साथ कीमत और संतुलन कीमत को निर्धारित करते हैं। समष्टि अर्थशास्त्र में हम दो चरणों में आगे बढ़ते हैं, प्रथम चरण में हम मूल्य स्तर को स्थिर में मानते हुए एक समष्टिमूलक संतुलन को ज्ञात करते हैं। दूसरे चरण में, हम मूलस्तर को बदलने देते हैं और समष्टिमूलक संतुलन का विश्लेषण करते हैं। कीमत स्तर को स्थिर मानने का क्या औचित्य है। इसके लिये दो कारण दिये जा सकते हैं। (i) प्रथम चरण में, हम अनप्रयुक्त साधनों वाली अर्थव्यवस्था की कल्पना कर रहे हैं- मशीनें, भवन, श्रमिक। ऐसी स्थिति में, ह्रासमान प्रतिफल का नियम लागू नहीं होगा। अतः अतिरिक्त उत्पादन के बिना सीमांत लागत में वृद्धि उत्पन्न की जा सकती है। इसलिये, कीमत स्तर में परिवर्तन नहीं होता चाहे उत्पादित मात्रा में परिवर्तन हो जाये। (ii) यह एक सरलीकृत मान्यता है जो बाद में बदल जायेगी।

4.3.1 स्थिर कीमत स्तर के साथ समष्टि अर्थशास्त्रीय संतुलन

(A) रेखीय समीकरण

जैसे पहले समझाया जा चुका है, उपभोगता की माँग को दिए गए समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है

© NCERT not to be republished

$$C = \bar{C} + cY$$

जहाँ $\bar{C}$ स्वायत्त व्यय है c और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति है।

इस संबंध को आरेखाचित्र द्वारा किस प्रकार दिखाया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हमें रेखीय समीकरण के अंतरोधिय रूप को स्मरण करना पड़ेगा।

$$Y = a + bX$$

यहाँ X और Y चर है और उनके मध्य रेखीय संबंध है। a तथा b स्थिरांक है चित्र 4.1 में इस समीकरण को दर्शाया गया है। स्थिरांक 'a' को y अक्ष पर अंतरोध दिखाया गया है अर्थात y का मूल्य जब x शून्य होता है। ('b') स्थिरांक रेखा की ढाल है, अर्थात स्पर्श रेखा (टेन्जेनट) θ= b

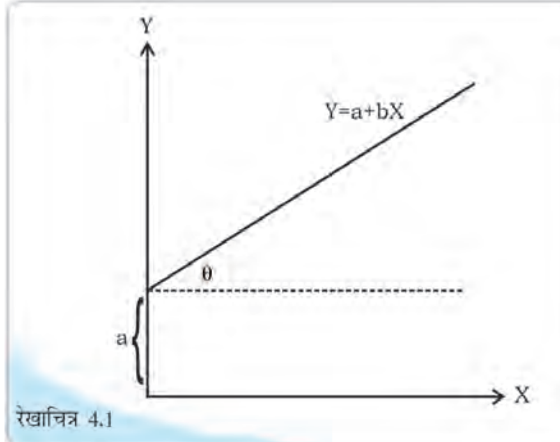

रेखाचित्र 4.1

रेखीय समीकरण का अंतरोधिय रूप

उपभोग फलन – ग्राफीय चित्रण

उसी तर्क का उपयोग करते हुऐ, उपभोग फलन को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है:

उपभोग फलन = $C = \bar{C} + cY$

जहाँ $\bar{C}$ = उपभोग फलन का अंतर्रोध

c = उपभोग फलन का ढ़ाल = tan α

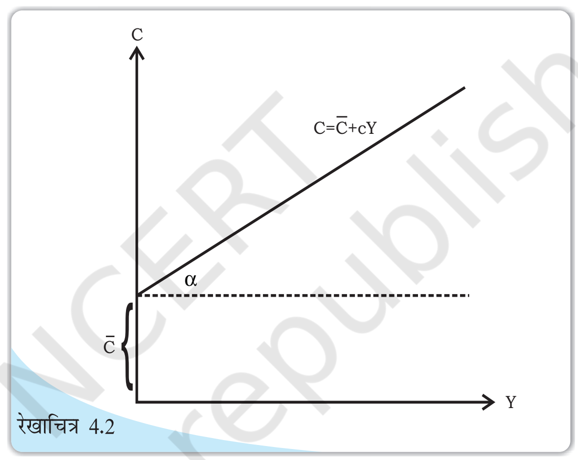

रेखाचित्र 4.2

$\bar{C}$ अंतर्रोध के साथ उपभोग फलन

निवेश फलन – ग्राफीय चित्रण

एक द्विक्षेत्रीय मॉडल, अंतिम माँग के दो स्रोत होते हैं, पहला उपभोग तथा दूसरा निवेश।

निवेश फलन को इस प्रकार दिखाया गया था I = $\bar{I}$

ग्राफ मे इसे क्षैतिजीय अक्ष के ऊपर, $\bar{I}$ के बराबर ऊँचाई वाली क्षैतिजीय रेखा द्वारा दिखाया गया है।

इस मॉडल में I स्वायत्त है, जिसका अर्थ है, कि यह वही रहती है चाहे आय का स्तर कुछ भी हो।

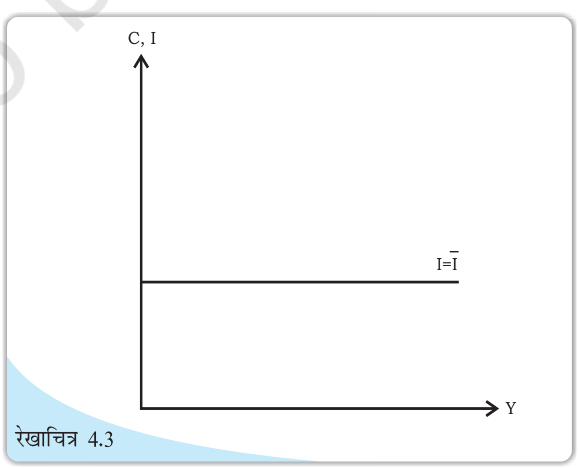

रेखाचित्र 4.3

निवेश फलन के साथ I स्वायत्त रूप में।

समस्त माँग – ग्राफीय प्रस्तुति

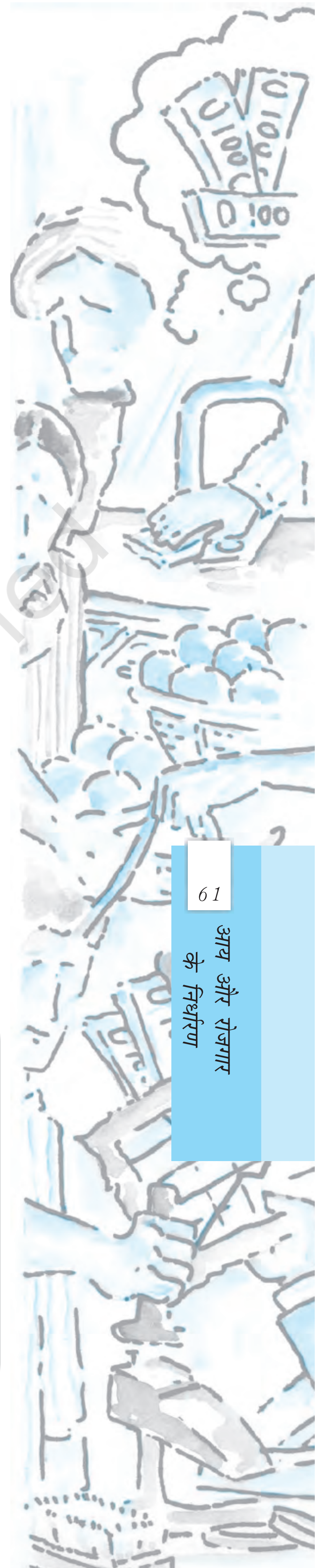

© NCERT not to be republished

समस्त माँग – ग्राफीय प्रस्तुति

समस्त माँग फलन आय के प्रत्येक स्तर पर कुल माँग है (जो उपभोग + निवेश से प्राप्त होती है) को दिखाता है। ग्राफ के अनुसार, इसका यह अर्थ है कि समस्त माँग को उर्ध्वाधरीय आधार पर उपभोग एवं माँग फलनों को जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है।

यहाँ,

$$OM = \overline{C}$$
$$OJ = \overline{I}$$
$$OL = \overline{C} + \overline{I}$$

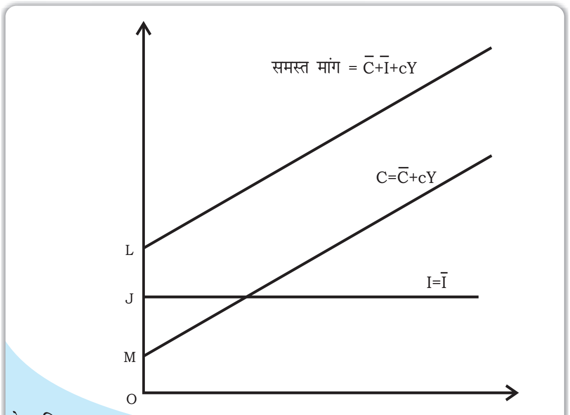

रेखाचित्र 4.4

समस्त माँग को उपभोग तथा निवेश फलनों को उर्ध्वाधरीय आधार पर जोड़ कर प्राप्त किया जाता है।

समस्त माँग फलन उपभोग फलन के समानांतर है, अर्थात उनके पास ढलान C के ही समान हैं। यहाँ ध्यान दिया जा सकता है कि यह फलन प्रत्याशित माँग को दर्शाता है।

समष्टि अर्थशास्त्रीय साम्य आपूर्ति पक्ष

व्यष्टि अर्थशास्त्रीय सिद्धांत में, हम पूर्ति वक्र को उस चित्र से दिखाते हैं जहाँ कीमत उर्ध्वाधर अक्ष पर तथा पूर्ति मात्रा को क्षैतिजीय अक्ष पर होती है।

समष्टि अर्थशास्त्र सिद्धांत की प्रथम अवस्था में, हम कीमत को स्थिर मान लेते हैं। यहाँ, समस्त पूर्ति अथवा GDP को सरलता से ऊपर अथवा नीचे हटने वाला मान लिया जाता है, क्योंकि ये सब सभी प्रकार के अप्रयुक्त उपलब्ध साधन होते हैं। GDP का कुछ भी स्तर क्यों न हो, उतनी पूर्ति तो करनी होगी और मूल्य स्तर का कोई योगदान नहीं होता। पूर्ति की इस प्रकार की स्थिति को 45° वाली रेखा से दिखाया गया है। अब 45° की रेखा की यह विशेषता है कि इसमे प्रत्येक बिन्दु का समान क्षेतिजीय और उर्ध्वाधर निर्देशांक होगा।

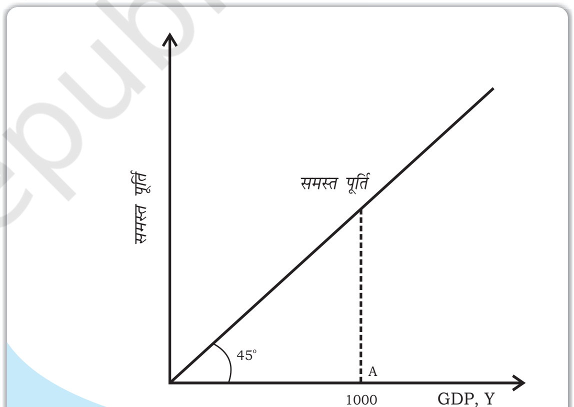

रेखाचित्र 4.5

45° लाइन के साथ समस्त पूर्ति वक्र

मान लीजिए कि A बिंदु पर GDP 1000 रु. है। पूर्ति कितनी की जाएगी? उत्तर है – रु. 1000 की कीमत के तुल्य सामान। इस बिंदु को कैसे दिखाया जा सकता है? उत्तर है कि बिंदु A की तत्संबंधी पूर्ति बिंदु B पर है, जो 45° की रेखा तथा उर्ध्वाधर रेखा A के प्रतिच्क्षेदन से प्राप्त होती है।

© NCERT not to be republished

साम्य

साम्य को, ग्राफ द्वारा, प्रत्याशित समस्त माँग एवं पूर्ति को एक चित्र में एक साथ रखकर दिखाया जाता है। (चित्र 4.6)। वह बिन्दु जहाँ प्रत्याशित समस्त मांग, प्रत्याशित समस्त पूर्ति के बराबर है, साम्य होगा। यह साम्य बिन्दु E है और आय का साम्य स्तर OY_1 है।

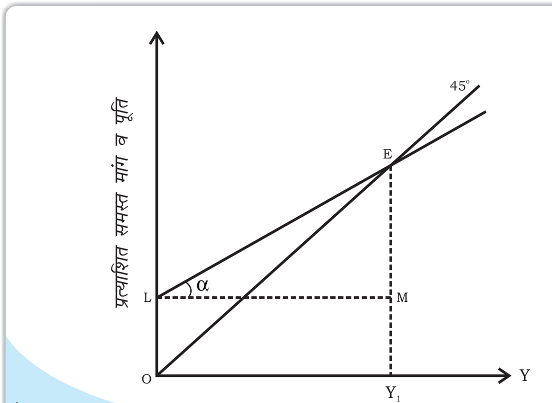

रेखाचित्र 4.6

प्रत्याशित समस्त माँग व पूर्ति का साम्य

(B) बीजगणितीय रीति (या विधि)

प्रत्याशित समस्त माँग $= \overline{I} + \overline{C} + cY$

प्रत्याशित समस्त पूर्ति वक्र = Y

साम्य की यह आवश्यकता है कि पूर्ति कर्ताओं की योजनाएं उनकी योजनाओं से मेल खाएं जो अर्थव्यवस्था में अंतिम माँग को पूरा करते हैं। इसलिये, इस स्थिति में, प्रत्याशित समस्त माँग = प्रत्याशित समस्त पूर्ति।

$$\overline{C} + \overline{I} + cY = Y$$
$$Y(1-c) = \overline{C} + \overline{I}$$
$$Y = \frac{\overline{C} + \overline{I}}{(1-c)} \qquad (4.4)$$

4.3.2 समग्र माँग में परिवर्तन का आय तथा उत्पादन पर प्रभाव

हमने देखा है कि आय का संतुलित स्तर समग्र माँग पर निर्भर करता है। अत: यदि समग्र माँग में परिवर्तन होता है, तो आय का संतुलित स्तर भी परिवर्तन होता है। यह निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक परिस्थितियों में हो सकता है–

1. उपयोग में परिवर्तन– यह (i) $\overline{C}$ में परिवर्तन, या (ii) c में परिवर्तन के कारण हो सकता है।
2. निवेश में परिवर्तन: अभी तक हमने माना है कि निवेश स्वतंत्र है। यद्यपि इसका अर्थ केवल इतना है कि यह आय के स्तर पर निर्भर नहीं करता। आय के अतिरिक्त भी ऐसे बहुत से चर हैं, जो निवेश स्तर को प्रभावित कर सकते हैं। एक महत्वपूर्ण कारक है साख की उपलब्धता। साख की आसान उपलब्धता निवेश को बल देती है। एक अन्य कारक है ब्याज की दर– ब्याज की दर निवेश योग्य निधि की लागत है। ब्याज की ऊँची दरों पर, फर्मों की प्रवृत्ति, निवेश को कम करने की होती है। आइए, अब हम निम्नलिखित उदाहरण की सहायता से, निवेश में परिवर्तन पर अपना ध्यान केंद्रित करें।

मान लीजिए, $C = 40 + 0.8Y, \ I = 10$

इस स्थिति में, संतुलित आय (समीकरण से प्राप्त) 250 हो जाती है।[1] अब, मान लीजिए कि निवेश बढ़कर 20 हो जाता है। देखा जा सकता है कि नई सन्तुलित आय 300 होगी। इसे ग्राफ

[1] $Y = C + I = 40 + 0.8Y + 10$, ताकि $Y = 50 + 0.8Y$, अथवा $Y = \frac{1}{1-0.8} 50 = 250$

© NCERT not to be republished

में भी देखा जा सकता है। आय में यह वृद्धि निवेश में वृद्धि के कारण होती है, जोकि यहाँ स्वतंत्र व्यय का एक अवयव है।

जब स्वायत्त निवेश में वृद्धि होती है, तो रेखा AD_1 ऊपर की ओर समानांतर शिफ्ट होती है और AD_2 की स्थिति को प्राप्त करती है। निर्गत Y^*_1 पर समस्त माँग का मूल्य Y^*_1F है, जो निर्गत $OY^*_1 = Y^*_1E_1$ के मूल्य से E_1F के परिमाण के बराबर अधिक है। E_1F से अधिमाँग के परिणाम की माप होती है, जो अर्थव्यवस्था में स्वायत्त व्यय में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। अतः E_1 संतुलन को निरूपित नहीं करता। अंतिम वस्तु बाज़ार में नये संतुलन की प्राप्ति के लिए हमें उस बिंदु की खोज करनी होगी, जहाँ नयी समस्त माँग रेखा AD_2, 45° रेखा को प्रतिच्छेद करेगी। यह बिंदु E_2 पर होता है, जो नया संतुलन बिंदु है। निर्गत और समस्त माँग के नये मूल्य क्रमशः Y^*_2 और AD^*_2 है।

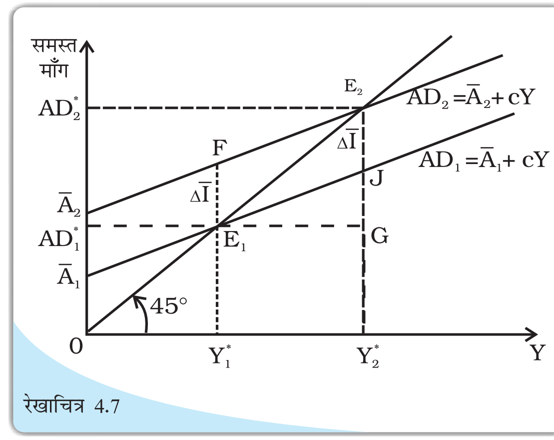

रेखाचित्र 4.7

स्थिर कीमत मॉडल (प्रतिरूप) में संतुलन निर्गत और समस्त माँग

ध्यान रखें कि नये संतुलन निर्गत तथा समस्त माँग में $E_1G = E_2G$ के परिमाण में वृद्धि होती है, जो स्वायत्त व्यय $\Delta \bar{I} = E_1F = E_2J$ में प्रारंभिक वृद्धि से अधिक है। अतः स्वायत्त व्यय में प्रारंभिक वृद्धि से प्रतीत होता है कि समस्त माँग और निर्गत के संतुलन मूल्यों पर अधिप्लावन प्रभाव पड़ता है। किस कारण से समस्त माँग और निर्गत के स्वायत्त व्यय में प्रारंभिक वृद्धि के आकार से अधिक बड़े परिमाण में वृद्धि होती है? इसकी चर्चा हम खंड 4.3.3 में करेंगे।

4.3.3 गुणक क्रियाविधि

पिछले खंड में देखा गया था कि, स्वतंत्र व्यय में 10 ईकाई का परिवर्तन होने पर, संतुलित आय में 50 ईकाई का परिवर्तन (250 से 300) होता है। हम इसे गुणक क्रियाविधि के द्वारा समझ सकते हैं जिसकी व्याख्या यहाँ की गई है।

अंतिम वस्तुओं के उत्पादन में श्रम, पूँजी, भूमि और उद्यम जैसे कारकों को लगाया जाता है। अप्रत्यक्ष कर अथवा उपदान की अनुपस्थिति में अंतिम वस्तुओं के निर्गत के कुल मूल्य को उत्पादन के विभिन्न कारकों में वितरित कर दिया जाता है, जो क्रमशः श्रम की मज़दूरी, पूँजी का ब्याज, भूमि का लगान आदि होते हैं। शेष बचा हुआ उद्यमी के पास रहता है, जिसे लाभ कहा जाता है। अतः अर्थव्यवस्था में समस्त कारक अदायगी का योग, राष्ट्रीय आय, अंतिम वस्तुओं के निर्गत के समस्त मूल्य, सकल घरेलू उत्पाद के बराबर होता है। उपर्युक्त उदाहरण में, अतिरिक्त निर्गत का मूल्य 10 को, विभिन्न कारकों में कारक अदायगी के रूप में वितरित कर दिया जाता है और इस प्रकार अर्थव्यवस्था की आय में 10 की वृद्धि होती है। जब आय में 10 की वृद्धि होती है, तब उपभोग व्यय में भी (0.8)10 की वृद्धि होती है, क्योंकि लोग उपभोग पर अपनी अतिरिक्त आय का 0.8 (सीमांत उपभोग प्रवृत्ति) व्यय करते हैं। अतः अगले दौर में अर्थव्यवस्था में समस्त माँग में (0.8)10 की वृद्धि होती है और पुनः (0.8)10 के बराबर अधिमाँग उत्पन्न होती है। इसीलिए अगले उत्पादन चक्र में पुनः संतुलन स्थापित करने के लिए,

© NCERT not to be republished

उत्पादक अपने नियोजित निर्गत में (0.8)10 की वृद्धि करता है। जब इस अतिरिक्त निर्गत को उत्पादन के कारकों के मध्य वितरित कर दिया जाता है, तो अर्थव्यवस्था की आय में (0.8)10 की वृद्धि होती है और उपभोग माँग बढ़कर $(0.8)^2$ 10 हो जाती है। पुन: उसी परिमाण में अधिमाँग की उत्पत्ति होती है। यह प्रक्रिया एक चक्र के बाद दूसरे चक्र में निरंतर जारी रहती है। प्रत्येक चक्र में उत्पादक अधिमाँग को दूर करने के लिए अपने निर्गत में वृद्धि करता है और उपभोक्ता इस अतिरिक्त उत्पादन से अपनी अतिरिक्त आय का एक अंश उपभोग मदों पर व्यय करता है और इससे अगले दौर में पुन: अधिमाँग का सृजन होता है।

अब निम्नलिखित तालिका (4.1) में प्रत्येक दौर में समस्त माँग और निर्गत के मूल्यों में परिवर्तन को दर्शाया जाएगा।

तालिका 4.1: **अंतिम वस्तु बाज़ार में गुणक यांत्रिकता**

	उपभोग	*समस्त माँग*	*निर्गत/आय*
दौर 1	0	10 (स्वत: बढ़ोतरी)	10
दौर 2	(0.8)10	(0.8)10	(0.8)10
दौर 3	$(0.8)^2 10$	$(0.8)^2 10$	$(0.8)^2 10$
दौर 4	$(0.8)^3 10$	$(0.8)^3 10$	$(0.8)^3 10$
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	.
.	.	.	इत्यादि

प्रत्येक दौर में अंतिम वस्तुओं के निर्गत के मूल्य (अर्थव्यवस्था की आय) में वृद्धि की माप अंतिम कॉलम में की गई है। दूसरे और तीसरे कॉलम में अर्थव्यवस्था में कुल उपभोग व्यय में वृद्धि और इस तरह समस्त माँग के मूल्य में वृद्धि की माप की गई है। ध्यान रखें कि क्रमिक चक्रों में अंतिम वस्तुओं के निर्गत में वृद्धि धीरे-धीरे घट रही है। अत: कई चक्रों के बाद वृद्धि वास्तव में शून्य हो जाएगी और क्रमिक चक्रों से निर्गत के कुल परिमाण में कोई योगदान नहीं होगा। हम कहते हैं कि अंतिम वस्तुओं के निर्गत को प्रभावित करने वाले चक्र, *अभिसारी प्रक्रिया* को प्रदर्शित करती हैं। अंतिम वस्तुओं के निर्गत में कुल वृद्धि को प्राप्त करने के लिय हमें, अंतिम कॉलम में अनंत ज्यामितीयशृंखला का योग प्राप्त करना चाहिए।

अर्थात्–

$$10 + (0.8)10 + (0.8)^2\, 10 + \ldots\ldots\ldots\infty$$

$$= 10\,\{1 + (0.8) + (0.8)^2 + \ldots\ldots\ldots\infty\} = \frac{10}{1-0.8} = 50$$

अत: स्वायत्त व्यय में प्रारंभिक वृद्धि से कुल निर्गत के संतुलन मूल्य में अधिक वृद्धि होती है। अंतिम वस्तुओं के निर्गत के संतुलन मूल्य में कुल वृद्धि और स्वायत्त व्यय में आरंभिक वृद्धि के अनुपात को अर्थव्यवस्था का *निर्गत गुणक* कहते हैं। स्मरण रहे कि 10 और 0.8 क्रमश: $\Delta\bar{I} = \Delta\bar{A}$ तथा *mpc* मूल्य को प्रदर्शित करते हैं। अत: गुणक की अभिव्यक्ति को इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$\text{निर्गत गुणक} = \frac{\Delta Y}{\Delta\bar{A}} = \frac{1}{1-c} = \frac{1}{S} \qquad (4.5)$$

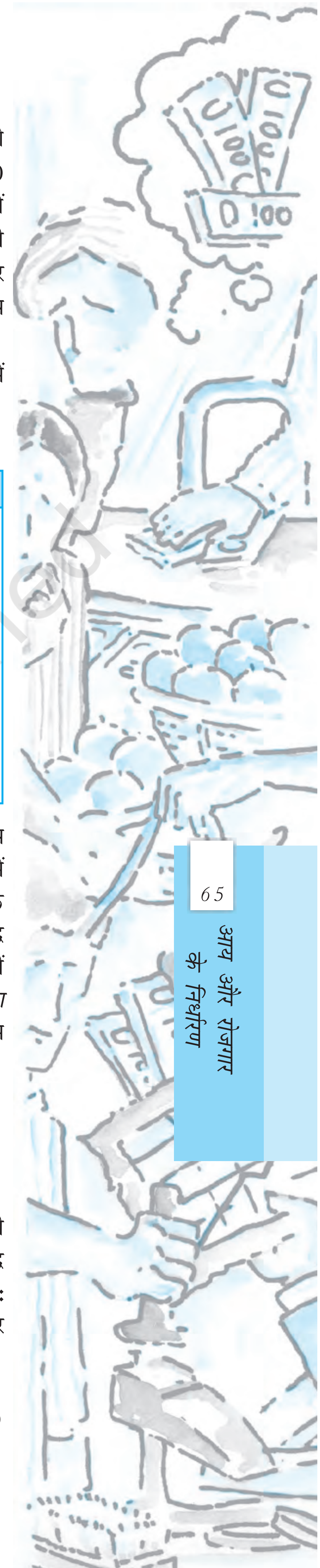

© NCERT not to be republished

जहाँ ΔY अंतिम वस्तु निर्गत की कुल वृद्धि तथा c =mpc (सीमांत उपभोग प्रवृत्ति) है। देखें कि गुणक का आकार c के मूल्य पर निर्भर करता है। जैसे-जैसे c बढ़ता है, गुणक में वृद्धि होती जाती है।

मितव्ययिता का विरोधाभास

यदि अर्थव्यवस्था के सभी लोग अपनी आय से बचत के अनुपात को बढ़ा दें (अर्थात यदि अर्थव्यवस्था की बचत की सीमांत प्रवृत्ति बढ़ जाती है) तो अर्थव्यवस्था में बचत के कुल मूल्य में वृद्धि नहीं होगी अर्थात् इससे या तो बचत में कमी आएगी या वह अपरिवर्तित रहेगी। इस परिणाम को **मितव्ययिता का विरोधाभास** कहते हैं जो यह बतलाता है कि जब लोग अधिक मितव्ययी हो जाते हैं, तो वे कमोवेश पूर्ववत ही बचत करते हैं। यह परिणाम, यद्यपि असंभव प्रतीत होता है, किंतु वास्तव में हमारे द्वारा पढ़े गए मॉडल का अनुप्रयोग है।

इस उदाहरण पर और विचार करते हैं। मान लीजिए, कि Y का प्रारंभिक संतुलन = 250 और लोगों के व्यय के स्वरूप में बहिर्जात अथवा स्वायत्त शिफ्ट होता है। अकस्मात वे अधिक मितव्ययी बन जाते हैं। ऐसा किसी बड़े युद्ध अथवा किसी अन्य आसन्न खतरे के संबंध में नई सूचना के कारण हो सकता है। इसके फलस्वरूप लोग अपने खर्च में अधिक परिनिरीक्षण और अनुदारिता बरतने लगते हैं। अतः अर्थव्यवस्था की सीमांत बचत प्रवृत्ति (mps) में वृद्धि होती है अथवा विकल्पतः सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (mpc) 0.8 से घटकर 0.5 रह जाती है। प्रारंभिक आय-स्तर $AD^*_1 = Y^*_1 = 250$ पर, सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में आकस्मिक ह्रास समस्त उपभोग व्यय में ह्रास का द्योतक होगा, जो समस्त माँग, $AD = \bar{A} + cY$ (0.8 – 0.5) 250 = 75 के परिमाण के बराबर होगा। इसे उपभोग व्यय में स्वायत्त कटौती कहा जा सकता है। यह कटौती उस सीमा तक हो सकती है कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में किसी बाह्य कारण से परिवर्तन हो रहा हो और यह मॉडल के परिवर्तों में परिवर्तन के फलस्वरूप नहीं होता है। लेकिन जब समस्त माँग में 75 तक ह्रास होता है, तो निर्गत $Y^*_1 = 250$ में गिरावट आती है और अर्थव्यवस्था में इससे 75 के बराबर तक अधिपूर्ति उत्पन्न होती है। गोदामों में माल भरा पड़ा रहता है और उत्पादक बाज़ार में संतुलन की पुनर्स्थापना के लिए अगले चक्र में 75 की कमी करने का निर्णय लेता है। किंतु इसका अर्थ है कि अगले चक्र में कारक भुगतान और आय में 75 की कमी होगी। जैसे-जैसे आय में ह्रास होता है, लोग आनुपातिक रूप से उपभोग में कटौती करते हैं। किंतु इस बार सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के नये मूल्य के अनुसार, जो कि 0.5 है, कटौती होती है। उपभोग व्यय और समस्त माँग में इस प्रकार (0.5) 75 की कमी होती है, जिससे बाज़ार में पुनः अधिपूर्ति का सृजन होता है। अतः अगले दौर में, उत्पादक पुनः निर्गत में (0.5) 75 की कटौती करते हैं। लोगों की आय इसी के अनुसार घटती है और उपभोग व्यय और समस्त माँग में पुनः $(0.5)^2 75$ का ह्रास होता है। यह प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है। किंतु जैसाकि क्रमिक चक्र के प्रभावों के मूल्यह्रास से अनुमान किया जा सकता है कि प्रक्रिया में अभिसरण होता है। निर्गत और समस्त माँग के मूल्य में कुल कितना ह्रास है? यदि अनंत शृंखलाएँ

$75 + (0.5)75 + (0\text{-}5)^2 75 + \ldots\ldots\ldots \infty$ को जोड़ दें, तो निर्गत में कुल कटौती,

$$\frac{75}{1-0.5} = 150$$

लेकिन इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था में नया संतुलन निर्गत केवल $Y^*_2 = 100$ है। अब लोग $S^*_2 = Y^*_2 - C^*_2 = Y^*_2 - (\bar{C} + c_2 Y^*_2) = 100 - (40 + 0.5 \times 100)$ = समस्त 10 की बचत कर रहे हैं। जबकि पूर्व संतुलन के अंतर्गत उनकी बचत $S^*_1 = Y^*_1 - C^*_1 = Y^*_1 - (\bar{C} + c_1 Y^*_1) = 250 - (40 + 0.8 \times 250) = 10$, पहले सीमांत उपभोग प्रवृत्ति पर। $c_1 = 0.8$ अतः अर्थव्यवस्था में बचत का कुल मूल्य अपरिवर्तित रहता है। संक्षिप्त में यह उदाहरण समष्टि अर्थशास्त्र से जुड़े तार्किक बिंदुओं का विश्लेषण करती है, जैसा कि — ''अलग-अलग भागों का योगफल संपूर्ण के बराबर नहीं है।'' यहाँ तक कि यदि हम व्यक्तिगत रूप से निर्णय लेने वाली प्रक्रिया के संदर्भ में अध्ययन करें कि कितना बचत किया जाये - व्यष्टि अर्थशास्त्र के विश्लेषण का प्राथमिक विषय-वस्तु क्या हो - तो हम यह सिद्धांत बनाने में असमर्थ होंगे कि अर्थव्यवस्था में कुल बचत का क्या होगा? दूसरी ओर, कुल बचत के सभी घटकों का परिणाम व्यक्तिगत बचत निर्णय के सभी कारकों के योग के ठीक बराबर नहीं है, बल्कि इससे कुछ अधिक है।

जब $\bar{A}$ में परिवर्तन हो, तो रेखा में समांतर रूप से ऊपर की ओर अथवा नीचे की ओर शिफ्ट होती है। किंतु जब c में परिवर्तन होता है, तो रेखा ऊपर या नीचे को झुकती है। सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि अथवा सीमांत बचत प्रवृत्ति में कमी से, रेखा *AD* की प्रवणता में कमी आती है और यह नीचे की ओर झुकती है। इस स्थिति का चित्रांकन रेखाचित्र 4.8 में किया गया है।

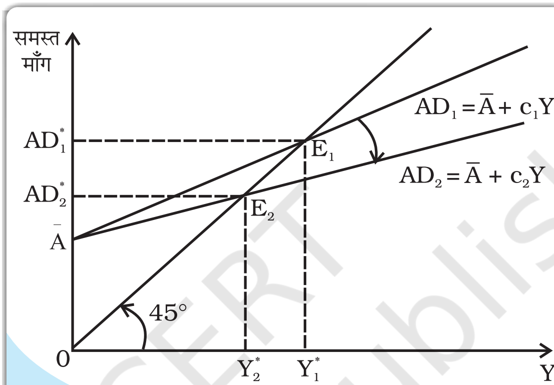

रेखाचित्र 4.8

मितव्ययिता का विरोधाभास–समस्त माँग रेखा का नीचे की ओर झुकाव

पैरामीटरों के प्रारंभिक मूल्य $\bar{A} = 50$ और $c = 0.8$ पर निर्गत का संतुलन मूल्य और समस्त माँग समीकरण (4.4) में –

$$Y^*_1 = \frac{50}{1 - 0.8} = 250$$

पैरामीटर के परिवर्तित मूल्य $c = 0.5$ के अंतर्गत निर्गत और समस्त माँग का नया संतुलन मूल्य है।

$$Y^*_2 = \frac{50}{1 - 0.5} = 100$$

संतुलन निर्गत और समस्त माँग में 150 की कमी हुई है। जैसाकि ऊपर बताया गया है, इससे यह सिद्ध होता है कि बचत के कुल मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं है।

© NCERT not to be republished

4.4 कुछ अन्य संकल्पनाएँ

अन्य साधनों की मात्राएँ दिए होने पर, अर्थव्यवस्था में साम्य निर्गत, रोजगार के स्तर को भी निर्धारित करता है, (समस्त स्तर पर, एक उत्पादन फलन पर विचार कीजिये)। इसका यह अर्थ हुआ कि Y की AD की समानता द्वारा निर्धारित निर्गत का स्तर अनिवार्य रूप से वही निर्गत स्तर होगा जिस पर प्रत्येक रोजगार में है।

पूर्ण रोजगार आय स्तर, आय का वह स्तर है जहाँ उत्पादन के समस्त कारक, उत्पादन प्रक्रिया में पूर्णतय: रोजगार में हैं। आपको याद होगा कि Y की AD को समानता के बिंदु पर प्राप्त साम्य, संसाधनों के पूर्ण रोजगार का द्योतक नहीं है। साम्य का मात्र अर्थ यह है कि यदि इसको यूँ ही छोड़ दिया जाए, तो अर्थव्यवस्था में आय का स्तर नही बदलेगा, यद्यपि अर्थव्यवस्था में रोजगार उपलब्ध है। निर्गत का साम्य स्तर, आगत के पूर्ण रोजगार के स्तर से अधिक या कम हो सकता है। यदि यह आगत के पूर्ण रोजगार स्तर से कम है, तो यह इसलिए है कि माँग समस्त साधनों को रोजगार देने के लिये पर्याप्त नहीं है। यह स्थिति न्यून माँग की स्थिति कहलाती है। इससे दीर्घकाल में कीमतें कम हो जाती हैं। दूसरी तरफ, यदि आगत का रोजगार स्तर, पूर्ण रोजगार के स्तर से अधिक है, तो ऐसा इसलिए है क्योंकि माँग, पूर्ण रोजगार पर उत्पादित उत्पादन स्तर से अधिक है। यह स्थिति अत्याधिक माँग की स्थिति कहलाता है। इससे दीर्घकाल में कीमतें बढ़ जाती हैं।

सारांश

जब किसी विशेष कीमत स्तर पर अंतिम वस्तु की समस्त माँग, समस्त पूर्ति के बराबर होती है, तो अंतिम वस्तु अथवा उत्पाद बाज़ार संतुलन की स्थिति में होता है। अंतिम वस्तु की समस्त माँग में प्रत्याशित उपभोग, प्रत्याशित निवेश, सरकारी व्यय आदि आते हैं। आय में इकाई वृद्धि के कारण प्रत्याशित उपभोग में वृद्धि की दर को सीमांत उपभोग प्रवृत्ति कहते हैं। सरलता की दृष्टि से, अर्थव्यवस्था में अंतिम वस्तु के स्तर के निर्धारण के लिए अल्पकाल में हम समस्त माँग एक नियत अंतिम वस्तु कीमत और नियत ब्याज की दर को मान लेते हैं। अल्पकाल में हम यह भी मान लेते हैं कि इस कीमत पर समस्त पूर्ति पूर्णत: लोचदार है। इन परिस्थितियों में समस्त निर्गत का निर्धारण केवल समस्त माँग के स्तर पर ही निर्धारित होता है। इसे *प्रभावी माँग का सिद्धांत* कहते हैं। स्वायत्त व्यय में वृद्धि (ह्रास) के कारण गुणक प्रक्रिया के द्वारा अंतिम वस्तु के समस्त निर्गत में बड़ी मात्रा में वृद्धि (ह्रास) होती है।

मूल संकल्पनाएँ

समस्त माँग	समस्त पूर्ति
संतुलन	प्रत्याशित
यथार्थ	प्रत्याशित उपभोग
सीमांत उपभोग प्रवृत्ति	प्रत्याशित निवेश
माल-सूची में अनभिप्रेत परिवर्तन	स्वायत्त परिवर्तन
पैरामेट्रिक शिफ्ट	प्रभावी माँग का सिद्धांत
मितव्ययिता का विरोधाभास	स्वायत्त व्यय गुणक

© NCERT not to be republished

अभ्यास

1. सीमांत उपभोग प्रवृत्ति किसे कहते हैं? यह किस प्रकार सीमांत बचत प्रवृत्ति से संबंधित है?
2. प्रत्याशित निवेश और यथार्थ निवेश में क्या अंतर है?
3. "किसी रेखा में पैरामेट्रिक शिफ्ट" से आप क्या समझते हैं? रेखा में किस प्रकार शिफ्ट होता है जब इसकी (i) ढाल घटती है और (ii) इसके अंत:खंड में वृद्धि होती है।
4. 'प्रभावी माँग' क्या है? जब अंतिम वस्तुओं की कीमत और ब्याज की दर दी हुई हो, तब आप स्वायत्त व्यय गुणक कैसे प्राप्त करेंगे?
5. जब स्वायत्त निवेश और उपभोग व्यय (A) 50 करोड़ रु० हो और सीमांत बचत प्रवृत्ति (MPS) 0.2 तथा आय (Y) का स्तर 4,000.00 करोड़ रु० हो, तो प्रत्याशित समस्त माँग ज्ञात करें। यह भी बताएँ कि अर्थव्यवस्था संतुलन में है या नहीं (कारण भी बताएँ)।
6. मितव्ययिता के विरोधाभास की व्याख्या कीजिए।

सुझावात्मक पठन

डोर्नबुश, आर. और फिशर, एस. 1990, *मैक्रोइकोनॉमिक्स* (पाँचवा संस्करण) पृ० 63–105, मैक्ग्रॉहिल, पेरिस।

© NCERT
not to be republished

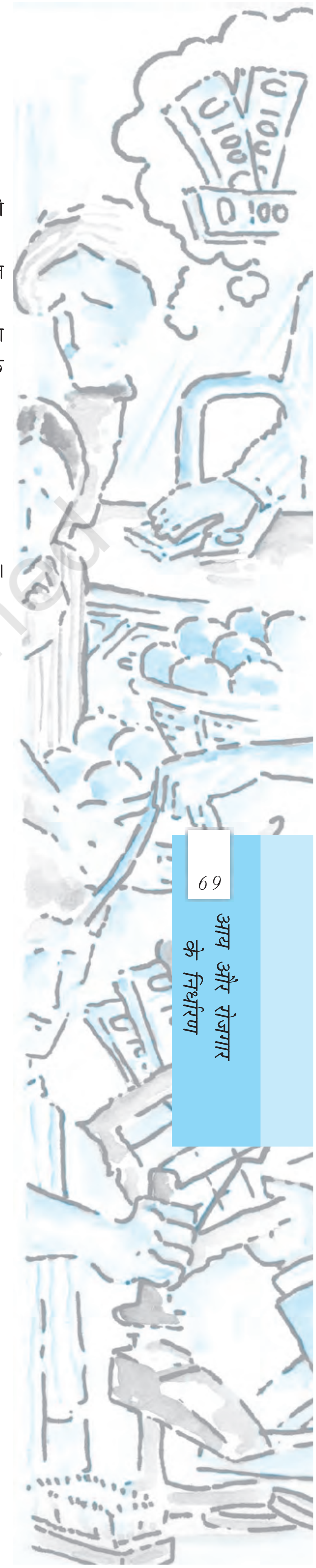

अध्याय 5

सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था

प्रथम अध्याय में हमने सरकार का परिचय राज्य के रूप में करवाया था। हमने कहा था कि निजी क्षेत्र के अतिरिक्त, सरकार होती है जो एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक अर्थव्यवस्था, जिसमें निजी क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र दोनों हो, भिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाती है। ऐसे बहुत से तरीके हैं जिनसे सरकार जीवन के आर्थिक पहलू को प्रभावित करती है। इस अध्याय में, हम केवल उन कार्यों की व्याख्या करेंगे जो सरकारी बजट के माध्यम से किए जाते हैं।

यह अध्याय इस प्रकार है। खंड 5.1 में हम सरकारी बजट के अवयवों को प्रस्तुत करेंगे ताकि सरकारी आगम के स्रोतों तथा सरकारी व्यय की विधियों को समझाया जा सके। खंड 5.2 में, हम संतुलित, अधिक्य तथा घाटे के बजट की व्याख्या करेंगे ताकि व्यय तथा कुल आगम में अंतर को स्पष्ट किया जा सके। हम यहाँ विशेष रूप से बजट के घाटों के प्रकार, उनके निहितार्थ तथा इन्हें नियंत्रित रखने के उपायों की व्याख्या करेंगे। बॉक्स 5.1 राजकोषीय नीति तथा गुणक की सरल व्याख्या करता है। सरकार द्वारा निभाई गई भूमिका का इसके घाटों के लिए भी निहितार्थ हैं जो आगे सरकारी ऋण को प्रभावित करते हैं। यह अध्याय सार्वजनिक ऋण के विश्लेषण के साथ समाप्त होता है।

5.1 सरकारी बजट–अर्थ तथा इसके अवयव

संविधान की धारा 112 के अनुसार, हर वित्तीय वर्ष (1अप्रैल से 31 मार्च तक) के लिए, अनुमानित प्राप्तियों तथा खर्चों का ब्यौरा संसद में पेश करना सरकार की संवैधानिक कर्त्तव्य है। यह 'वार्षिक वित्तीय ब्यौरा' सरकार का मुख्य बजट संबंधी घोषणा पत्र होता है। हालाँकि बजट घोषणा पत्र का संबंध, एक ही वित्तीय वर्ष के लिए होता है, लेकिन इसका प्रभाव आने वाले काफी सालों तक रहता है।

अत: दो तरह के खाते वित्तीय वर्ष से संबंधित हैं उन्हें केवल राजस्व खाते में शामिल किया गया (जिसे राजस्व बजट भी कहते है तथा जिनका संबंध सरकार की संपत्ति तथा देनदारियों से होता है, पूँजीगत बजट भी कहा जाता है।) इन खातों को समझने के लिए, पहले सरकारी बजट के उद्देश्यों को समझना महत्वपूर्ण है।

5.1.1 सरकारी बजट के उद्देश्य

सरकार जन-कल्याण बढ़ाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके लिए, सरकार अर्थव्यवस्था में अनेक प्रकार से हस्तक्षेप करती है।

© NCERT not to be republished

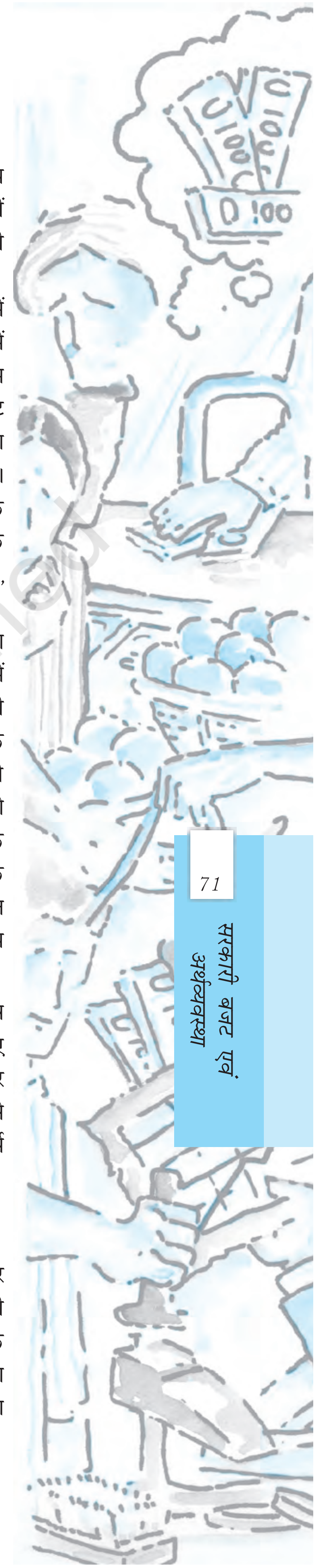

सरकारी बजट का आबंटन कार्य

सरकार निश्चित वस्तुओं तथा सेवाओं को उपलब्ध करवाती है, जिन्हें बाजार-तंत्र के द्वारा उपलब्ध नहीं करवाया जा सकता अर्थात् उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों में विनिमय के द्वारा उपलब्ध नहीं करवाया जा सकता। इस प्रकार की वस्तुओं के उदाहरण हैं–राष्ट्रीय सुरक्षा, सड़कें तथा सरकारी प्रशासन, जिन्हें **सार्वजनिक वस्तुएँ** कहा जाता है।

यह समझने के लिए, कि सार्वजनिक वस्तुओं की पूर्ति सरकार को क्यों करनी पड़ती है, हमें **निजी वस्तुओं** जैसे कपड़े, कार, खाद्य सामग्री तथा सार्वजनिक वस्तुओं में अंतर समझना होगा। इनमें दो मुख्य अंतर हैं। पहला तो यह, कि सार्वजनिक वस्तुएँ सभी के लिए उपलब्ध हैं तथा इनके लाभ किसी एक विशेष उपभोक्ता तक ही सीमित नहीं हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति चॉकलेट खाता है या कमीज पहनता है, तो ये वस्तुएँ अन्य व्यक्तियों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। यह कहा जा सकता है कि इस व्यक्ति के उपभोग तथा अन्य व्यक्तियों के उपयोग में प्रतिद्वंदी संबंध है। लेकिन यदि हम सार्वजनिक पार्क या वायु प्रदूषण नियंत्रित करने के उपायों की बात करें, तो इनके लाभ सभी के लिये उपलब्ध होंगे। एक व्यक्ति द्वारा एक वस्तु का उपभोग दूसरों के लिए उसके उपयोग की उपलब्धता को कम नहीं करेगा। अतः एक साथ कई लोग इनका लाभ उठा सकते हैं, अर्थात् यहाँ कई लोगों का उपभोग **प्रतिद्वंदात्मक** नहीं होगा।

दूसरे, निजी वस्तुओं के सन्दर्भ में, जो व्यक्ति वस्तुओं के लिए भुगतान नहीं करता, उसे इनका लाभ उठाने से वंचित किया जा सकता है। यदि आप टिकट न खरीदें, तो आपको सिनेमा घर में फिल्म देखने की अनुमति नहीं मिलेगी। लेकिन सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ में, किसी को भी वस्तु का लाभ उठाने से वंचित करने का कोई साध्य (कारगर) तरीका नहीं है। इसीलिए सार्वजनिक वस्तुओं को **गैर-अपवर्जनीय** कहा जाता है। यदि कुछ उपभोक्ता भुगतान नहीं भी करते हैं तो भी सार्वजनिक वस्तुओं के लिए शुल्क एकत्रित करना कठिन ही नहीं, अपितु बहुत बार असंभव हो जाता है। इन भुगतान दिए बिना उपयोग करने वालों को **मुफ्तखोर** कहा जाता है। उपभोक्ता ऐच्छिक रूप से उन चीजों के लिए भुगतान नहीं करेंगे, जिन्हें वे मुफ्त में प्राप्त कर सकते हैं या जिनके लिए मालिकाना अधिकार अनन्य (स्पष्ट) नहीं है। उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच भुगतान प्रक्रिया के द्वारा स्थापित होने वाली कड़ी टूट जाती है। ऐसे में, इस प्रकार की वस्तुओं को उपलब्ध करवाने के लिए सरकार का आगे आना जरूरी है।

सार्वजनिक प्रावधान तथा **सार्वजनिक उत्पादन** में अन्तर होता है। वस्तुओं की सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा अभिप्राय है कि इनका वित्तपोषण बजट के द्वारा होता है तथा बिना कोई प्रत्यक्ष भुगतान किए इनका उपयोग किया जा सकता है। सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र के द्वारा या सरकार के द्वारा किया जा सकता है। जब वस्तुओं का उत्पादन सीधे सरकार द्वारा किया जाता है, तो इसे सार्वजनिक उत्पादन कहा जाता है। सरकार द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं की आपूर्ति को आबंटन कार्य कहा जाता है।

सरकारी बजट का पुनः आबंटन कार्य

अध्याय दो से हमें पता है कि देश की कुल राष्ट्रीय आय का प्रवाह या तो निजी क्षेत्र की ओर होता है, अर्थात् फर्मों तथा घरेलू क्षेत्र की ओर (जिसे निजी आय कहा जाता है) या सरकार की ओर (जिसे सार्वजनिक आय कहा जाता है)। निजी आय में से जो भाग अंततः घरेलू क्षेत्र तक पहुँचता है, उसे वैयक्तिक आय कहा जाता है, तथा उसमें से जिस भाग को खर्च किया जा सकता है, वह भाग प्रयोज्य आय कहलाता है। सरकारी क्षेत्र हस्तांतरण भुगतान के द्वारा तथा कर एकत्रीकरण

© NCERT not to be republished

के द्वारा घरेलू क्षेत्र की प्रयोज्य आय को प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार, सरकार आय के वितरण को परिवर्तित कर सकती है तथा समाज को आय-वितरण की एक ऐसी स्थिति में पहुँचा सकती है जिसे न्याय-संगत माना जाए। यह **वितरण कार्य** है।

सरकारी बजट का स्थिरीकरण कार्य

सरकार को आय तथा रोजगार में उतार-चढ़ाव को भी कम करना होता है। अर्थव्यवस्था में, रोजगार का तथा कीमतों का स्तर कुल माँग पर निर्भर करता है तथा कुल माँग, सरकार के अतिरिक्त निजी क्षेत्र के लाखों-करोड़ों कारकों के व्यक्तिगत निर्णयों पर भी निर्भर करती है। ये निर्णय भी कई कारकों, जैसे आय तथा साख की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं। किसी भी समय में ऐसा हो सकता है कि मांग का स्तर, श्रम तथा अर्थव्यवस्था के अन्य संसाधनों के पूर्ण उपयोग के लिए अपर्याप्त हो। अब क्योंकि मजदूरी की दर तथा कीमतें एक स्तर के बाद ओर नीचे नहीं गिरती, रोजगार स्वतः अपने पूर्वकालिक स्तर पर नहीं पहुँचता। सरकार को समग्र माँग का स्तर बढ़ाने के लिए अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करना पड़ता है।

दूसरी ओर, कई बार ऐसा भी हो सकता है कि अधिक रोजगार की स्थिति में माँग उपलब्ध उत्पादन से अधिक हो जाए; जिससे मुद्रा-स्फीति की संभावना हो सकती है। ऐसी स्थिति में, माँग को कम करने के लिए प्रतिबंधात्मक उपायों की आवश्यकता हो सकती है।

सरकार का हस्तक्षेप, चाहे वह माँग का विस्तार करने के लिए हो अथवा इसे कम करने के लिए, **स्थिरीकरण कार्य** कहलाता है।

5.1.2 प्राप्तियों का वर्गीकरण

राजस्व प्राप्तियाँ: राजस्व प्राप्तियाँ वे प्राप्तियाँ हैं जिनका दावा सरकार से नहीं किया जा सकता। अतः इन्हें गैर-प्रतिदेय कहा जाता है। इन्हें कर तथा गैर-कर राजस्व में विभाजित किया जाता है। कर-राजस्व, जो कि राजस्व प्राप्तियों का एक महत्वपूर्ण भाग है, को काफी समय से प्रत्यक्ष करों (वैयक्तिक आय कर तथा फर्मों के लिए निगम कर) तथा अप्रत्यक्ष कर, जैसे उत्पादन कर (देश में उत्पादित वस्तुओं पर लगाए गए कर), सीमाशुल्क (आयातित तथा निर्यातित वस्तुओं पर लगाए गए कर) तथा सेवा कर[1]।

अन्य प्रत्यक्ष करों, जैसे सम्पत्ति कर, उपहार कर तथा संपत्ति शुल्क (अब समाप्त) से कभी भी बहुत राजस्व का संग्रह नहीं हुआ है, तथा इसीलिए इन्हे 'कागजी कर' भी कहा जाता है।

पुनर्वितरण के उद्देश्य की प्राप्ति आय पर प्रगतिशील करारोपण के माध्यम से किया जाता है। इसके अंतर्गत जैसे-जैसे आय बढ़ती है, वैसे-वैसे कर की दर ऊँची होती जाती है। फर्मों पर आनुपातिक आधार पर कर लगाए जाते हैं। कर की दर लाभयुक्त आय का एक विशेष अनुपात होती है। जीवन के लिए अनिवार्य वस्तुओं को उत्पाद कर से मुक्त रखा जाता है अथवा उन पर कर की दर निम्न होती है। सुख और अर्ध-विलासिता की वस्तुओं पर सामान्य दर से कर लगाया जाता है, जबकि पूर्ण-विलासिता संबंधी वस्तुओं, तंबाकू और पेट्रोलियम उत्पादों पर कर की दर काफी ऊँची होती है।

केंद्र सरकार के गैर-कर राजस्व में मुख्य रूप से, केंद्र सरकार द्वारा जारी ऋण सक ब्याज प्राप्तियाँ, सरकार के निवेश से प्राप्त लाभांश और लाभ तथा सरकार द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं

[1] भारतीय कर प्रणाली में GST (वस्तु एवम् सेवा कर) के प्रवेश के साथ एक विशाल परिवर्तन हुआ। यह कर (GST) वस्तुओं तथा सेवाओं, दोनों पर लगाया जाएगा तथा केन्द्र, 28 राज्यों तथा 7 केन्द्र-शासित प्रदेशों द्वारा 1 जुलाई 2017 से लागू किया गया।

© NCERT
not to be republished

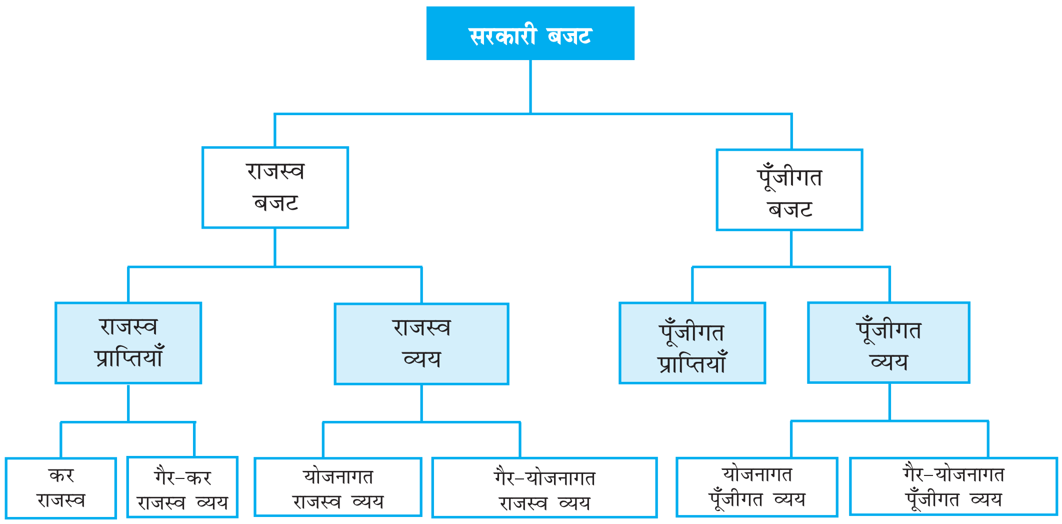

रेखाचित्र 1: सरकारी बजट के घटक

से प्राप्त शुल्क और अन्य प्राप्तियाँ आदि शामिल हैं। इसके अंतर्गत विदेशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा प्रदान किये जाने वाले नकद सहायता अनुदान भी शामिल किए जाते हैं।

राजस्व प्राप्ति के आकलन में वित्त विधेयक[2] में किये गए कर प्रस्ताव के प्रभावों पर विचार किया जाता है।

पूँजीगत प्राप्तियाँ: सरकार को ऋणों के रूप में भी धनराशि मिलती है या संपत्ति को बेचने से भी। जिन संस्थाओं से ऋण लिया गया है, उन्हें इसकी अदायगी भी करनी होती है। अत: ऋणों से देयता पैदा होती है। इसी प्रकार सरकारी संपत्ति की बिक्री (जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा अपने शेयरों (अंशों) की बिक्री, जिसे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश भी कहते हैं) से सरकार की वित्तीय संपत्तियों की मात्रा कम हो जाती है। सरकार की ऐसी सभी प्राप्तियाँ, जिनसे देयता पैदा हो या वित्तीय संपत्तियों कम हों, पूंजीगत प्राप्तियाँ कहलाती हैं। जब सरकार नये ऋण लेती है तो इस का अर्थ यह है कि इस ऋण को लौटाया जायेगा और इन पर बयान दिया जायेगा। इसी भांति जब सरकार किसी आस्ति को बेचती है तो इस का अर्थ है कि भविष्य से इससे आय समाप्त हो जायेगी। इस प्रकार, ये प्राप्तियाँ ऋण-उत्पादक या गैर-ऋण उत्पादक हो सकती हैं।

5.1.3 पूँजीगत लेखा

राजस्व व्यय: राजस्व व्यय केन्द्र सरकार का भौतिक या वित्तीय परिसंपत्तियों के सृजन के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों के लिए किया गया व्यय है। राजस्व व्यय का संबंध सरकारी विभागों के सामान्य कार्यों तथा विविध सेवाओं, सरकार द्वारा उपगत ऋण ब्याज अदायगी, राज्य सरकारों और अन्य दलों को प्रदत्त अनुदानों (यद्यपि कुछ अनुदानों से परिसंपत्तियों का सृजन भी हो सकता है) आदि पर किये गए व्यय से होता है।

बजटीय दस्तावेज में कुल राजस्व व्यय को **योजनागत** और **गैर-योजनागत व्यय** मदों में बाँटा जाता है। योजनागत राजस्वगत व्यय का संबंध केंद्रीय योजनाओं (पंचवर्षीय योजनाओं) और राज्यों

[2] वित्त विधेयक जिसे वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ ही प्रस्तुत किया जाता है, के अंतर्गत बजट में किए गए कर प्रस्तावों को लागू करने, निरस्त करने, छूट देने, बदलने अथवा विनियमन संबंधी विषयों का विस्तार से वर्णन होता है।

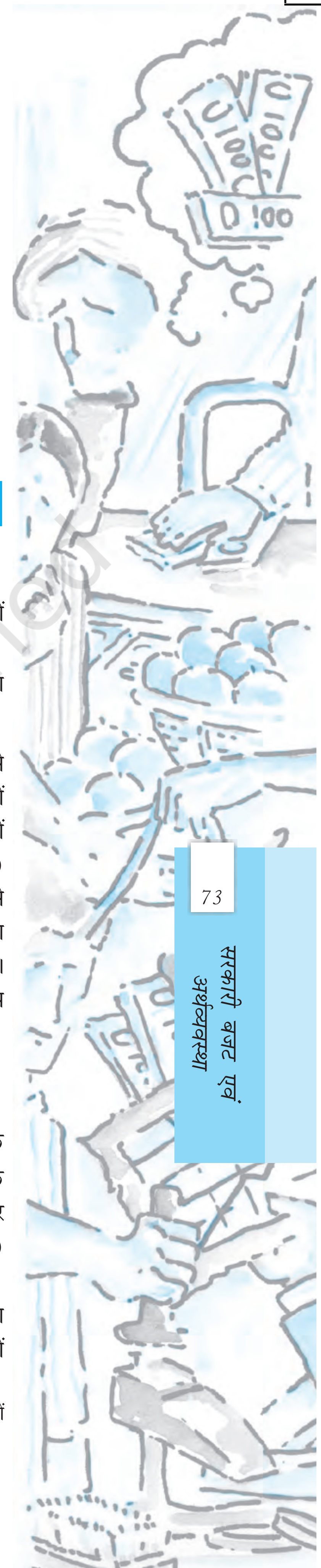

© NCERT not to be republished

तथा संघ-शासित प्रदेशों की योजना के लिए केंद्रीय सहायता से है। गैर-योजनागत व्यय राजस्व व्यय का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसमें सरकार द्वारा प्रदत्त सामान्य, आर्थिक और सामाजिक सेवाओं पर व्यापक व्यय शामिल होते हैं। गैर-योजनागत व्यय के प्रमुख मदों में ब्याज अदायगी, प्रतिरक्षा सेवाएँ, उपदान, वेतन और पेंशन आते हैं।

बाज़ार ऋणों, बाह्य ऋणों और विविध आरक्षित निधियों पर ब्याज अदायगी गैर-योजनागत राजस्व व्यय का एक सबसे बड़ा घटक होता है। प्रतिरक्षा व्यय गैर-योजनागत व्यय का दूसरा सबसे बड़ा घटक है और इस अर्थ में यह प्रतिबद्ध व्यय है कि राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित इस मद में अधिक कटौती का क्षेत्र अत्यल्प है। उपदान एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत उपकरण है, जिसका उद्देश्य कल्याण में वृद्धि करना है। सार्वजनिक वस्तुओं और शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी सेवाओं का अल्पमूल्यन के माध्यम से अव्यक्त उपदान प्रदान करने के अतिरिक्त सरकार निर्यात, ऋण पर ब्याज, खाद्य पदार्थ और उर्वरकों जैसे मदों पर व्यक्त रूप से भी उपदान प्रदान करती है। सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में उपदानों की मात्रा 2014-15 में 2.02 प्रतिशत से बढ़कर 2015-16 में 1.7 प्रतिशत हो गयी।

पूँजीगत व्यय: ये सरकार के वे व्यय हैं जिसके परिणामस्वरूप भौतिक या वित्तीय परिसंपत्तियों का सृजन या वित्तीय दायित्वों में कमी होती है। पूँजीगत व्यय के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण, भवन निर्माण, मशीनरी, उपकरण, शेयरों में निवेश और केंद्र सरकार के द्वारा राज्य सरकारों एवं संघ-शासित प्रदेशों, सार्वजनिक उपक्रमों तथा अन्य पक्षों को प्रदान किये गए ऋण और अग्रिम संबंधी व्ययों को शामिल किया जाता है। पूँजीगत व्यय को भी बजट दस्तावेज में **योजना** और **गैर-योजनागत व्यय**[3] के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इसे तालिका 5.1 में क्रम संख्या 6 में दिखाया गया है। वित्त व्यय के अंतर्गत योजना एवं गैर-योजना में अंतर स्थापित किया गया है। इस वर्गीकरण के अनुसार, योजनागत पूँजीगत व्यय का संबंध राजस्व-व्यय के समान, केंद्रीय योजना और राज्य तथा संघ-शासित प्रदेशों की योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता से होता है। गैर-योजनागत पूँजीगत व्यय में सरकार द्वारा प्रदत्त विविध सामान्य, सामाजिक और आर्थिक सेवाओं पर व्यय शामिल होते हैं।

बजट प्राप्तियों और व्ययों का एक विवरण मात्र नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत के कारण बजट एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय नीति का विवरण बन गया है। बजट के संबंध में तर्क दिया जाता है कि यह देश की अर्थव्यवस्था के स्वरूप का प्रतिबिंब है तथा इससे देश के आर्थिक जीवन का स्वरूप निर्धारित होता है। वित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003[4] के द्वारा बजट के साथ तीन नीतिगत विवरणों का होना अनिवार्य है। मध्यावधि वित्तीय नीति विवरण में विशिष्ट वित्तीय सूचकों के लिए तीन वर्षीय चल लक्ष्य रहता है, जो इस बात का परीक्षण करता है कि क्या धारणीय आधार पर राजस्व प्राप्तियों के माध्यम से राजस्व व्यय किया जा सकता है और बाज़ार ऋण-ग्रहण सहित पूँजीगत प्राप्तियों का उपयोग कितनी उत्पादकता के रूप में किया जा रहा है। राजकोषीय नीति संबंधी विवरण वर्तमान नीतियों का परीक्षण और महत्त्वपूर्ण वित्तीय उपायों में किसी प्रकार के विचलन के औचित्य का निर्धारण करते हुए

[3] इस प्रकार के वर्गीकरण को पेश करने के विरुद्ध एक स्थिति यह है कि नई योजना/परियोजना की शुरुआत करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति वर्तमान क्षमता एवं सेवा स्तरों के रख-रखाव का अनदेखा करती है। गैर-योजना व्यय में निहित अपव्यय के कारण यह जानकारी अप्रत्यक्ष हो जाती है जो शिक्षा और स्वास्थ्य (जहाँ वेतन की समाविष्टि एक महत्वपूर्ण तत्त्व है) जैसे सामाजिक क्षेत्रकों के बीच संसाधन के बँटवारे पर विपरीत प्रभाव डालती है।

[4] बॉक्स 5.1 सरकारी वित्त के लिए विधि निर्माण और उसके तात्पर्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है।

© NCERT not to be republished

वित्तीय क्षेत्र में सरकार के प्राथमिकताओं को तय करता है। समष्टि अर्थशास्त्रीय रूपरेखा संबंधी विवरण में सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर, केंद्र सरकार के वित्तीय संतुलन और बाह्य संतुलन[5] के संबंध में अर्थव्यवस्था के भविष्य का आकलन किया जाता है।

तालिका 5.1: **केन्द्रीय सरकार की प्राप्तियाँ और व्यय 2015-16**

	(सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में)
1. राजस्व प्राप्तियाँ (a + b)	8.1
(a) कर राजस्व (राज्यों के निवल अंश)	6.5
(b) गैर-कर राजस्व	1.6
2. राजस्व खर्च जिसका	10.9
(a) ब्याज अदायगियाँ	3.2
(b) प्रमुख उपदान	1.6
(c) रक्षा व्यय	1.1
3. राजस्व घाटा (2 – 1)	2.8
4. पूँजीगत प्राप्तियाँ (a+b+c) जिसका	4.5
(a) ऋण वसूली	0.1
(b) अन्य प्राप्तियाँ (मुख्यत: सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई का विनिवेश)	0.5
(c) ऋण ग्रहण एवं अन्य दायित्व	3.9
5. पूँजीगत व्यय	1.7
6. कुल व्यय [2 + 5 = 6(a) + 6(b)]	12.6
(a) योजनागत व्यय	3.3
(b) गैर-योजनागत व्यय	9.3
7. राजकोषीय घाटा [6-1-4 (a)-4 (b)]or [3+5-4 (a)-4 (b)]	3.9
8. प्राथमिक घाटा [7 – 2 = (a)]	0.7

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, 2015-16

5.2 संतुलित, अधिशेष एवं घाटा बजट

सरकार जमा आय के बराबर राशि खर्च कर सकती है। इसे संतुलित बजट के रूप में जाना जाता है। अगर इससे ज्यादा खर्च करने की जरूरत पड़ती है, तो बजट को संतुलित रखने के लिये, करों के माध्यम से राशि प्राप्त करना पड़ेगा। जब कर से प्राप्त राशि आवश्यक आय से अधिक होती है, तो इसे बजट अधिशेष कहा जाता है। हालांकि मुख्यत: ऐसी भी स्थिति होती है जब व्यय राजस्व से अधिक हो। यह तब होता है जब सरकार घाटा वाली बजट को चलाती है।

[5] वर्ष 2005-06 के भारतीय बजट में बजटीय विनिधान की लिंग संवेदनशीलता को विशेष महत्त्व देते हुए एक विवरण प्रस्तुत किया गया है। लिंगगत बजट सरकार की लिंग संबंधी वचनबद्धताओं को बजटीय वचनबद्धता में रूपांतरित करने का एक ओर सार्थक प्रयास है, जिसमें स्त्री सशक्तिकरण के लिए विशेष पहल और स्त्रियों के लिए विभाजित संसाधनों के उपयोग का परीक्षण और सार्वजनिक व्यय के प्रभाव तथा महिलाओं के लिए सरकार की नीतियाँ शामिल हैं। वर्ष 2006-07 के बजट में पूर्व बजट विवरण को विस्तार प्रदान किया गया है।

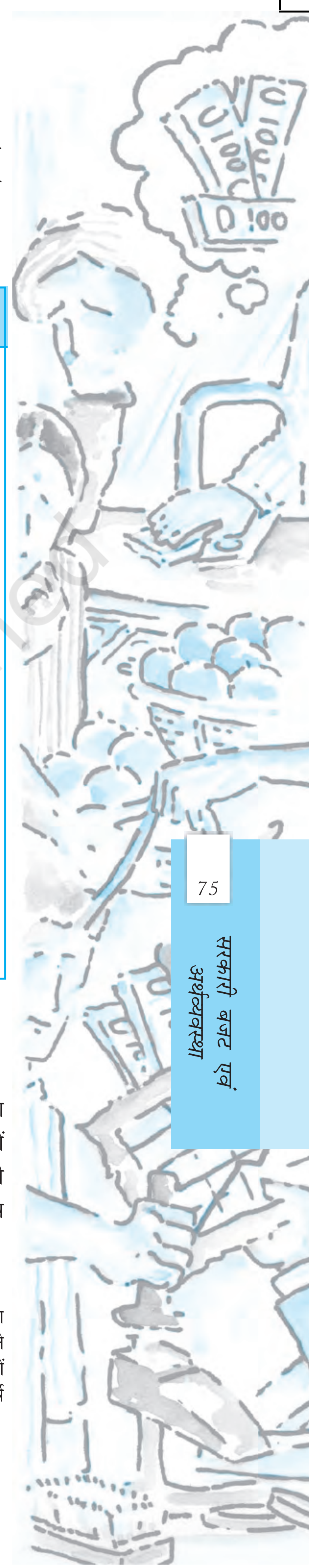

© NCERT not to be republished

5.2.1 सरकारी घाटे की माप

जब सरकार राजस्व प्राप्ति से अधिक व्यय करती है, तो इस स्थिति को बजटीय घाटा[6] कहते हैं। इस घाटे की पूर्ति के लिए कई उपाय किए जाते हैं, जिनका किसी अर्थव्यवस्था पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

राजस्व घाटा: राजस्व घाटा सरकार की राजस्व प्राप्तियों के ऊपर राजस्व व्यय के अधिशेष को बताता है।

राजस्व घाटा = राजस्व व्यय – राजस्व प्राप्तियाँ

तालिका 5.1 में क्रम संख्या 3 में यह दिखाया गया है कि वर्ष 2015 में राजस्व घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 2.8 प्रतिशत था। राजस्व घाटे में केवल उन्हीं लेन-देनों को शामिल किया जाता है, जिनसे सरकार के वर्तमान आय और व्यय पर प्रभाव पड़ता है। जब सरकार को राजस्व घाटा प्राप्त होता है, तो इससे संकेत मिलता है कि सरकार निर्बचत कर रही है और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों की बचतों का उपयोग अपने उपभोग संबंधी व्यय के कुछ हिस्सो को पूरा करने के लिए कर रही है। इस स्थिति में, सरकार को न केवल अपने निवेश के लिए अपितु अपने उपभोग संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी ऋण-ग्रहण करना पड़ेगा। इससे ऋणों और ब्याज दायित्वों का निर्माण होगा और सरकार को अंततोगत्वा अपने व्यय में भी कटौती करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। चूँकि राजस्व व्यय का एक बड़ा भाग व्यय के लिए प्रतिबद्ध होता है, इसीलिए इसमें कटौती नहीं की जाएगी। बहुधा सरकार उत्पादक पूँजीगत व्यय अथवा कल्याण संबंधी व्यय में कटौती करती है। इसके परिणामस्वरूप विकास की गति धीमी होती है और कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

राजकोषीय घाटा: राजकोषीय घाटा सरकार के कुल व्यय और ऋण-ग्रहण को छोड़कर कुल प्राप्तियों का अंतर है।

सकल राजकोषीय घाटा = कुल व्यय – (राजस्व प्राप्तियाँ + गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ)

गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ ऐसी प्राप्तियाँ हैं, जो ऋण-ग्रहण के अंतर्गत नहीं आती हैं, इसीलिए इससे ऋण में वृद्धि नहीं होती है। इसके उदाहरण हैं—ऋणों की वसूली और सार्वजनिक उपक्रमों की बिक्री से प्राप्त राशि। तालिका 5.1 में हम देखते हैं कि गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ सकल घरेलू उत्पाद के 0.6 प्रतिशत के बराबर है। यह कुल पूँजीगत प्राप्तियों में से उधार और अन्य दायित्वों को घटाकर (4.5–3.9) प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार, राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 3.9 प्रतिशत प्रतीत होता है, जैसा कि ऊपर दिखाया गया है। राजकोषीय घाटे का वित्त पोषण ऋण-ग्रहण के द्वारा ही किया जायेगा। अत: इससे सभी स्रोतों से सरकार के ऋण-ग्रहण संबंधी आवश्यकताओं का पता चलता है। वित्तीय पक्ष से,

सकल राजकोषीय घाटा = निवल घरेलू ऋण-ग्रहण + भारतीय रिज़र्व बैंक से ऋण-ग्रहण + विदेशों से ऋण-ग्रहण।

निवल घरेलू ऋण-ग्रहण के अंतर्गत ऋण उपकरणों (उदाहरणार्थ, विविध लघु बचत योजनाएँ) के माध्यम से सीधे जनता से प्राप्त ऋण और वैधानिक तरलता अनुपात (एस.एल.आर.) के माध्यम से

[6] औपचारिक रूप से यह कुल प्राप्तियों (राजस्व और पूँजीगत दोनों) के ऊपर कुल व्यय (राजस्व और पूँजीगत दोनों) के अधिशेष को बताता है। वर्ष 1997-98 के बजट से भारत में बजटीय घाटा को प्रदर्शित करने की परंपरा को छोड़ दिया गया है।

© NCERT not to be republished

अप्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक बैंकों से प्राप्त ऋण आते हैं। सकल राजकोषीय घाटा अर्थव्यवस्था के स्थायित्व और सार्वजनिक क्षेत्र की सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था के लिए एक निर्णायक चर है। इस प्रकार सकल राजकोषीय घाटा को मापा जा सकता है। जैसा कि ऊपर देखा गया है राजस्व घाटा राजकोषीय घाटा का एक भाग है (राजकोषीय घाटा = राजस्व घाटा + पूँजीगत व्यय – गैर-ऋण से सृजित पूँजीगत प्राप्तियाँ)। राजकोषीय घाटे में राजस्व घाटे का एक बड़ा अंश यह दर्शाता है कि उधार का एक बड़ा हिस्सा उपभोग व्यय के लिए उपयोग किया जाता है न कि निवेश के लिए।

प्राथमिक घाटा: ध्यातव्य है कि सरकार की ऋण-ग्रहण आवश्यकताओं में संचित ऋण पर दायित्व शामिल होते हैं। प्राथमिक घाटे के माप का लक्ष्य वर्तमान राजकोषीय असंतुलन पर प्रकाश डालना है। वर्तमान व्यय के राजस्व से अधिक होने के कारण होने वाले ऋण-ग्रहण के आकलन के लिए हम प्राथमिक घाटे की परिकलन करते हैं। सरल भाषा में यह वह शेष है, जो राजकोषीय घाटे में से ब्याज अदायगी को घटाने पर प्राप्त होता है।

सकल प्राथमिक घाटा = सकल राजकोषीय घाटा – निवल ब्याज दायित्व

निवल ब्याज दायित्वों में निवल घरेलू परिदाय पर सरकार द्वारा प्राप्त ब्याज प्राप्तियों से ब्याज अदायगी करने पर शेष राशि आती है।

बॉक्स 5.1 राजकोषीय नीति

कीन्ज़ की पुस्तक द *जेनरल थ्योरी ऑफ इम्प्लॉयमेंट इंटरेस्ट एंड मनी* में प्रतिपादित विचारों में मुख्य रूप से यह भी है कि सरकार की राजकोषीय नीति का प्रयोग निर्गत और रोजगार के स्तर को स्थिर करने के लिए किया जाना चाहिए। व्यय और करों में परिवर्तनों के माध्यम से सरकार निर्गत और आय में वृद्धि करने का प्रयास करती है, जिसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के उच्चावचन को स्थिर करना होता है। इस प्रक्रिया में राजकोषीय नीति से एक *आधिक्य* (जब कुल प्राप्तियाँ व्यय से अधिक होती हैं) अथवा एक *संतुलित बजट* (जब व्यय और प्राप्तियाँ बराबर हों) के बजाय एक घाटे के बजट का सृजन होता है। आय निर्धारण के पूर्व विश्लेषण में सरकारी क्षेत्र को शामिल करने से उत्पन्न प्रभावों का अध्ययन हम आगे करेंगे।

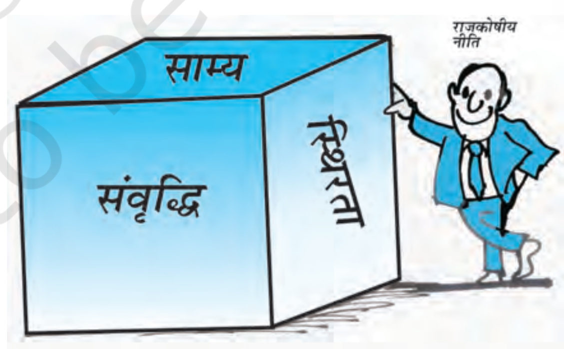

राजकोषीय नीति अपने तीन मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने की कैसे कोशिश करती है?

सरकार दो विशिष्ट विधियों से प्रत्यक्ष रूप से संतुलित आय के स्तर पर प्रभाव डालती है: सरकार द्वारा क्रय की गयी वस्तुओं और सेवाओं (G) से समस्त माँग में वृद्धि होती है और करों तथा अंतरणों से आय (Y) और प्रयोज्य आय (YD)–परिवार के उपभोग और बचत के लिए उपलब्ध आय (D)–का संबंध प्रभावित होता है।

सर्वप्रथम हम करों को लें। हम कल्पना करते हैं कि सरकार जो कर लगाती है, वह आय पर निर्भर नहीं करता है। इसे *इकमुश्त* कर कहते हैं, जो T के बराबर होता है।

हम कल्पना करते हैं कि पूरे विश्लेषण में सरकार एक नियत मात्रा में अंतरण $\bar{TR}$ करती है। अब उपभोग फलन इस प्रकार है,

© NCERT not to be republished

$C = \bar{C} + cYD = \bar{C} + c(Y - T + \bar{TR})$ यहाँ YD = प्रयोज्य आय (5.1)

हम जानते हैं कि करों से प्रयोज्य आय और उपभोग में कमी आती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति 1 लाख रुपये अर्जित करता है और उसे 10,000 रुपये कर अदा करना पड़ता है, तो उसकी प्रयोज्य आय और उस व्यक्ति की आय जो 90,000 रुपये अर्जित करता है किंतु कोई कर अदा नहीं करता है, के बराबर होगी। सरकार को शामिल करने पर समस्त माँग की परिवर्धित परिभाषा होगी:

$$AD = \bar{C} + c(Y - T + \bar{TR}) + I + G \qquad (5.2)$$

ग्राफीय रूप में, हम पाते हैं कि इकमुश्त कर से उपभोग अनुसूची समानांतर रूप से नीचे की ओर शिफ्ट होती है और इस कारण समस्त माँग वक्र में भी इसी तरह का शिफ्ट होता है। उत्पाद बाज़ार में आय निर्धारण की शर्तें Y= समस्त माँग होगी, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{C} + c(Y - T + \bar{TR}) + I + G \qquad (5.3)$$

आय के संतुलन स्तर का हल प्राप्त करने पर हमें प्राप्त होगा,

$$Y^* = \frac{1}{1-c}(\bar{C} - cT + c\bar{TR} + I + G) \qquad (5.4)$$

सरकारी व्यय में परिवर्तन

अब हम करों को स्थिर रखकर सरकारी खरीद (G) में वृद्धि के प्रभावों पर विचार करें। जब T अर्थात इकमुश्त कर से G अर्थात सरकारी खरीद अधिक होती है, तो सरकार घाटे का वहन करती है। क्योंकि G समस्त व्यय का घटक है। योजनाबद्ध समस्त व्यय में वृद्धि होगी। समस्त माँग अनुसूची में ऊपर की ओर AD' तक शिफ्ट होती है। निर्गत के प्रारंभिक स्तर पर माँग, पूर्ति से अधिक होती है और फर्म उत्पादन में विस्तार करती है। नया संतुलन E' पर स्थापित होता है। गुणक युक्ति (अध्याय 4 में वर्णित) कार्य करती है। सरकारी व्यय गुणक निम्नवत होता है:

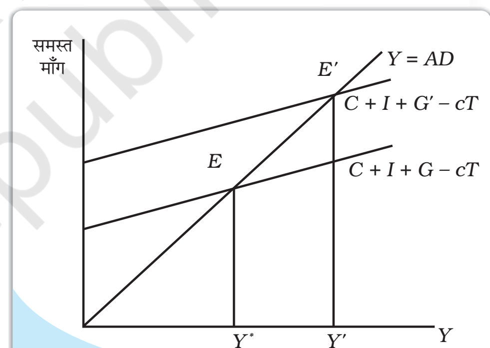

रेखाचित्र 5.1

उच्चतर सरकारी व्यय का प्रभाव

मान लीजिये G, $(G+\Delta G)$ के नये स्तर तक परिवर्तित हो जाता है और फर्ल स्वरूप Y, $(Y^*+\Delta Y)$ के स्तर पर परिवर्तित हो जाता है। G तथा Y के नये स्तरों को समीकरण (5.4) में भी रखा जा सकता है। इसलिये $(Y^*+\Delta Y)$=

$$\frac{1}{1-c}\left(\bar{C} - cT + c\bar{TR} + I + G + \Delta G\right) \qquad (5.4a)$$

समीकरण (5.4) को समीकरण (5.4a) को घटाने से हमको

$$\Delta Y = \frac{1}{1-c}\Delta G \qquad (5.5)$$

या

$$\frac{\Delta Y}{\Delta G} = \frac{1}{1-c} \qquad (5.6)$$

रेखाचित्र 5.1 में सरकारी व्यय G से बढ़कर G' हो जाता है और इस कारण संतुलन आय Y से बढ़कर Y' हो जाती है।

© NCERT not to be republished

करों में परिवर्तन

हम पाते हैं कि आय के प्रत्येक स्तर पर करों में कटौती से प्रयोज्य आय $(Y–T)$ में वृद्धि होती है। फलस्वरूप समस्त व्यय अनुसूची में ऊपर की ओर शिफ्ट होता है जो, करों में कमी का अंश c होता है। इसे रेखाचित्र 5.2 में दर्शाया गया है। समीकरण 5.3 से हम कर गुणाक को उसी विधि द्वारा, जो सरकार के व्यय गुणक की गणना में प्रयोग किया गया है, ज्ञात कर सकते हैं।

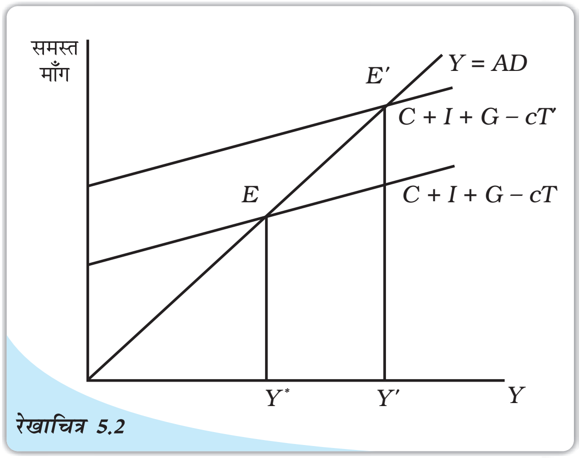

रेखाचित्र 5.2

करों में कटौती का प्रभाव

समीकरण 5.3 से हमें प्राप्त होता है–

$$\Delta Y^* = \frac{1}{1-c}(-c)\,\Delta T \qquad (5.7)$$

कर गुणक

$$= \frac{\Delta Y}{\Delta T} = \frac{-c}{1-c} \qquad (5.8)$$

करों में कटौती (वृद्धि) से उपभोग और निर्गत में *वृद्धि (कमी)* होती है क्योंकि कर गुणक एक ऋणात्मक गुणक होता है। समीकरण 5.6 और 5.8 की तुलना करने पर हम पाते हैं कि सरकार के व्यय गुणक की तुलना में कर गुणक का निरपेक्ष मूल्य अपेक्षाकृत अल्प होता है। क्योंकि सरकारी व्यय में वृद्धि से कुल व्यय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जबकि गुणक प्रक्रिया में करों का प्रवेश प्रयोज्य आय पर उनके प्रभाव के माध्यम से होता है, जिसका कि परिवार के उपभोग (जो कुल व्यय का अंश है) पर प्रभाव पड़ता है। अतः करों में ΔT की कटौती से उपभोग और इस प्रकार कुल व्यय में पहले $c\Delta T$ की वृद्धि होती है। दोनों गुणकों के अंतर को जानने के लिए निम्नलिखित उदाहरण पर विचार कीजिए।

लाचार व्यक्ति क्यों रो रहा है? इसके आँसू पोंछने के कुछ उपाय बताएँ।

उदाहरण 5.1

मान लीजिए कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.8 है। तब सरकारी व्यय का गुणक $\frac{1}{1-c} = \frac{1}{1-0.8}$ $= \frac{1}{0.2}$ = 5 होता है। सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि के लिए संतुलन आय में 500 ($\frac{1}{1-c}\Delta G$

$= 5 \times 100)$ की वृद्धि होगी। कर गुणक $\frac{-c}{1-c} = \frac{-0.8}{1-0.8} = \frac{-0.8}{0.2} = -4$ है। 100 ($\Delta T = -$ 100) की कर कटौती से संतुलन आय में 400 ($\frac{-c}{1-c}\Delta T = -4 \times 100$) की वृद्धि होगी। अत: इस स्थिति में संतुलन आय में वृद्धि G के अंतर्गत होने वाली वृद्धि के परिणामस्वरूप हुई वृद्धि से कम होती है।

वर्तमान ढाँचे में यदि हम सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के भिन्न-भिन्न मूल्यों को लें और दोनों गुणकों के मूल्यों की गणना करें, तो हम पाएँगे कि सरकारी व्यय गुणक की तुलना में कर गुणक का निरपेक्ष मूल्य हमेशा इकाई कम होता है। इसके रोचक निहितार्थ हैं। यदि सरकारी व्यय में वृद्धि के बराबर ही करों में वृद्धि होती है ताकि बजट संतुलित रहे, तो निर्गत में सरकारी व्यय में वृद्धि की मात्रा के बराबर वृद्धि होगी। दोनों नीतिगत गुणकों को जोड़ने पर प्राप्त होता है,

$$\text{संतुलित बजट गुणक} = \frac{\Delta Y^*}{\Delta G} = \frac{1}{1-c} + \frac{-c}{1-c} = \frac{1-c}{1-c} = 1 \qquad (5.9)$$

इकाई संतुलित बजट गुणक से यह संकेत मिलता है कि सरकार के वित्त में 100 की वृद्धि से करों में 100 की वृद्धि होने पर आय में भी ठीक 100 की वृद्धि होती है। इसे उदाहरण 1 में देखा जा सकता है, कि जब सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि होती है, तो निर्गत में 500 की वृद्धि होती है। कर में वृद्धि से आय में 400 की *कमी* होती है और आय में निवल वृद्धि 100 के बराबर होती है। संतुलित आय का तात्पर्य उस अंतिम आय से है, जिसे पर्याप्त लंबी अवधि में गुणक द्वारा अपने सभी चक्र पूरे करने के बाद प्राप्त करते हैं। हम पाते हैं कि निर्गत में ठीक उतनी ही वृद्धि होती है, जितनी वृद्धि सरकारी व्यय में। यहाँ करों में वृद्धि के कारण कोई प्रेरित उपभोग व्यय नहीं होता है। संतुलित बजट गुणाक 1 क्यों है, यह देखने के लिए कि यहाँ क्या होना चाहिए, हम गुणक प्रक्रम का परीक्षण करते हैं। सरकारी व्यय में एक निश्चित मात्रा में वृद्धि से आय प्रत्यक्ष रूप से उसी मात्रा में बढ़ती है और फिर अप्रत्यक्ष रूप से गुणक श्रृंखला के माध्यम से आय में वृद्धि इस प्रकार होती है:

$$\Delta Y = \Delta G + c\Delta G + c^2\Delta G + \ldots = \Delta G\,(1 + c + c^2 + \ldots) \qquad (5.10)$$

किंतु कर वृद्धि का गुणक प्रक्रम में तभी प्रवेश होता है, जब प्रयोज्य आय में कटौती से उपभोग में कमी करों में c गुणा कटौती के बराबर होती है। अत: कर वृद्धि का आय पर प्रभाव इस प्रकार प्राप्त होता है:

$$\Delta Y = -c\Delta T - c^2\Delta T + \ldots = -\Delta T\,(c + c^2 + \ldots) \qquad (5.11)$$

दोनों के अंतर से आय पर निवल प्रभाव प्राप्त होता है। चूँकि $\Delta G = \Delta T$, (5.10) और (5.11) से हमें $\Delta Y = \Delta G$ प्राप्त होता है, अर्थात आय में उतनी ही मात्रा में वृद्धि होती है जितनी कि सरकारी व्यय में और संतुलित बजट गुणक इकाई के बराबर होता है। इस गुणक को समीकरण 5. 3 से भी निम्न प्रकार व्युत्पन्न किया जा सकता है।

$$\Delta Y = \Delta \overline{G} + c\,(\Delta Y - \Delta T) \text{ चूँकि निवेश में परिवर्तन नहीं होता है } (\Delta I = 0) \qquad (5.12)$$

चूँकि $\Delta \overline{G} = \Delta T$ इसीलिए हम पाते हैं कि,

$$\frac{\Delta Y}{\Delta G} = \frac{1-c}{1-c} = 1 \qquad (5.13)$$

आनुपातिक करों की स्थिति: अधिक यथार्थ मान्यता यह होगी कि सरकार एक नियत भिन्न t के रूप में करों से आय संग्रह करती है ताकि $T = tY$ हो। *आनुपातिक करों* के साथ उपभोग फलन

© NCERT not to be republished

निम्नांकित है:

$$C = \bar{C} + c\,(Y - tY + \bar{TR})$$

$$= \bar{C} + c\,(1 - t)\,Y + c\bar{TR} \qquad (5.14)$$

उल्लेखनीय है कि आनुपातिक करों से आय के प्रत्येक स्तर पर न केवल उपभोग निम्न होता है, बल्कि उपभोग फलन की प्रवणता भी निम्न होती है। आय से सीमांत उपभोग प्रवृत्ति $c\,(1-t)$ तक गिरती है। नई समस्त माँग अनुसूची *AD'* का अंत:खंड बड़ा किंतु सपाट होता है।

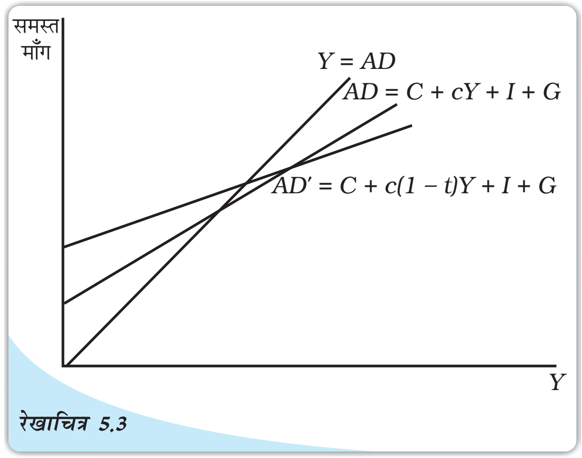

रेखाचित्र 5.3

सरकार और समस्त माँग (आनुपातिक कर समस्त माँग (AD) अनुसूची को अपेक्षाकृत सपाट बनाता है।)

अब हमारे पास

$$AD = \bar{C} + c\,(1 - t)Y + c\bar{TR} + I + G = \bar{A} + c\,(1 - t)Y \qquad (5.15)$$

जहाँ $\bar{A}$ = स्वायत्त व्यय है और $\bar{C} + c\bar{TR} + I + G$ के बराबर होता है। उत्पाद बाज़ार में आय निर्धारण की शर्त $Y = AD$ होती है, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$Y = \bar{A} + c\,(1 - t)Y \qquad (5.16)$$

आय के संतुलन स्तर के लिए हल करने पर

$$Y^{*} = \frac{1}{1 - c(1 - t)}\bar{A} \qquad (5.17)$$

ताकि गुणक निम्नांकित हो

$$\frac{\Delta Y}{\Delta \bar{A}} = \frac{1}{1 - c(1 - t)} \qquad (5.18)$$

इकमुश्त कर की स्थिति में गुणक के मूल्य से इसकी तुलना करने पर हमें अल्प मूल्य प्राप्त होता है। इकमुश्त कर की स्थिति में सरकारी व्यय में वृद्धि के फलस्वरूप जब आय में वृद्धि होती है तो उपभोग में आय में वृद्धि की c गुणा वृद्धि होती है। आनुपातिक कर के साथ उपभोग में कम वृद्धि होती है, $(c - ct = c\,(1 - t))$ गुणा आय में वृद्धि होती है।

G में परिवर्तन के लिए अब गुणक निम्नांकित होगा

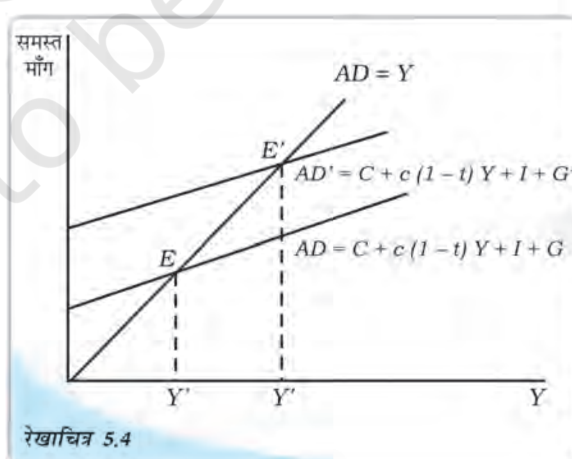

रेखाचित्र 5.4

सरकारी व्यय में वृद्धि (आनुपातिक करों से)

$$\Delta Y = \Delta \bar{G} + c\,(1 - t)\Delta Y \qquad (5.19)$$

© NCERT not to be republished

$$\Delta Y = \frac{1}{1 - c(1-t)} \Delta \bar{G} \qquad (5.20)$$

आय में Y^* से Y' की वृद्धि होती है।

परिणामस्वरूप करों में ह्रास का प्रभाव पड़ता है जिससे कि उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। *AD* वक्र में ऊपर की ओर *AD′* तक शिफ्ट होता है। आय के प्रारंभिक स्तर पर वस्तु की समस्त माँग निर्गत से अधिक होती है, क्योंकि कर में कटौती के कारण उपभोग में वृद्धि होती है। अब आय का नया उच्च स्तर *Y′* है।

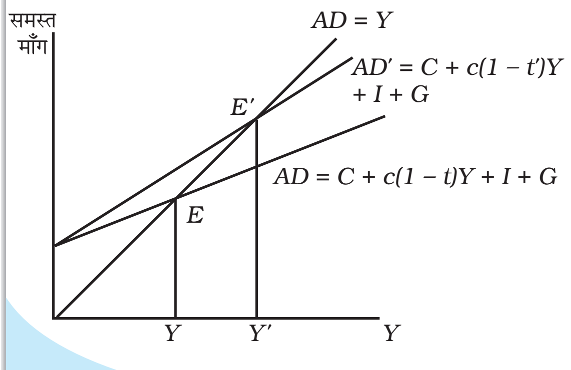

रेखाचित्र 5.5

आनुपातिक कर के दर में कटौती का प्रभाव

उदाहरण 5.2

उदाहरण 5.1 में यदि हम कर की दर 0.25 लेते हैं, तो हम पाते हैं कि आय में प्रत्येक इकाई की वृद्धि के लिए उपभोग में पहले के 0.80 के स्थान पर 0.60 ($c(1- t) = 0.8 \times 0.75$) की वृद्धि होगी। अतः पहले की तुलना में उपभोग में कम वृद्धि होगी। सरकारी व्यय गुणक $\frac{1}{1-c(1-t)} = \frac{1}{1-0.6} = \frac{1}{0.4} = 2.5$ होगा जो इकमुश्त करों से प्राप्त राशि की तुलना में कम है। यदि सरकारी व्यय में 100 की वृद्धि हो, तो निर्गत में सरकारी व्यय में वृद्धि की गुणक गुणा वृद्धि होगी अर्थात $2.5 \times 100 = 250$। यह इकमुश्त करों की दशा में निर्गत में वृद्धि से कम है।

अतः आनुपातिक आय कर एक **स्वतःस्थिरक** अर्थात आघात अवशोषक की प्रकृति के रूप में कार्य करता है, क्योंकि इससे सकल घरेलू उत्पाद में उच्चावचन के प्रति प्रयोज्य आय और उपभोक्ता का व्यय कम संवेदनशील होता है। जब सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होती है तो प्रयोज्य आय भी बढ़ती है किंतु सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से कम, क्योंकि इसका एक अंश करों के रूप में निकल जाता है। इससे उपभोग व्यय में उपरिमुख उच्चावचन को सीमित करने में मदद मिलती है। अमंदी के दौरान जब सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट आती है, तो प्रयोज्य आय कम तेज़ी से गिरती है और उपभोग में उतनी गिरावट नहीं आती है जितनी कर दायित्व नियत होने की स्थिति में आनी चाहिए। इससे समस्त माँग में कमी आती है और अर्थव्यवस्था स्थिरीकरण की स्थिति में आ जाती है।

उल्लेखनीय है कि निवेश माँग में अनिच्छित शिफ्ट के प्रभावों को संतुलित करने में इन राजकोषीय नीतिगत उपकरणों में भिन्नता हो सकती है। अर्थात यदि निवेश में I_0 से I_1 तक गिरावट आती है, तो सरकारी व्यय में G_0 से G_1 की वृद्धि हो, ताकि स्वायत्त खर्च ($C + I_0 + G_0 = C + I_1 + G_1$) और संतुलन आय एक समान रहेगा। राजकोषीय प्रणाली के अंतर्निहित स्वतः स्थिरक अभिलक्षणों से अलग करने के लिए इसे **स्वनिर्णयगत राजकोषीय नीति** कहा जाता है, जो कि अर्थव्यवस्था को स्थिर करने की एक सुविचारित कार्रवाई है। जैसाकि पहले चर्चा की गई है कि आनुपातिक करों से अर्थव्यवस्था को उर्ध्वगामी और अधोगामी संचलन के विरुद्ध स्थिरीकरण की स्थिति में लाने में मदद मिलती है। कल्याण अंतरणों से भी आय स्थिरीकरण में मदद मिलती है। तेज़ी के दौरान जब रोज़गार अधिक होता है, उपभोग व्यय के ऊँचे स्तर पर स्थिरीकरण दबाव बनाने

© NCERT not to be republished

वाले अंतरण अदायगी के लिए वित्त प्रबंधन हेतु संग्रहित कर प्राप्तियों में वृद्धि होती है; विलोमतः चरम मंदी के दौरान इन कल्याणगत अदायगियों से उपभोग धारित रखने में मदद मिलती है। आगे, निजी क्षेत्र में भी *आभ्यंतरिक स्थिरक* होते हैं। अल्पकाल में आय में परिवर्तन के बावजूद निगम अपने लाभांश को कायम रखते हैं और परिवार अपने पूर्व जीवन-स्तर को बनाये रखने का प्रयास करता है। ये सभी किसी निर्णयकर्ता के द्वारा किसी भी कार्रवाई करने की आवश्यकता के बगैर आघात अवशोषक के रूप में कार्य करते हैं। अर्थात ये स्वतः कार्य करते हैं। किंतु आभ्यंतरिक स्थिरक से अर्थव्यवस्था में उच्चावचन को एक अंश मात्र की ही कमी होती है, शेष के लिए सुविचारित नीतिगत पहल किया जाना चाहिए।

अंतरण: हम कल्पना करते हैं कि वस्तुओं एवं सेवाओं पर सरकारी व्यय में वृद्धि के स्थान पर सरकार अंतरण अदायगी कुल राजस्व ($\overline{TR}$) में वृद्धि करती है। स्वायत्त व्यय $\overline{A}$, में $c\Delta\overline{TR}$ की वृद्धि होगी, अतः निर्गत में वृद्धि होगी, लेकिन यह वृद्धि सरकारी व्यय में वृद्धि की मात्रा से कम होगी क्योंकि अंतरण अदायगी में किसी भी प्रकार की वृद्धि के एक अंश की बचत कर ली जाती है। अंतरण में परिवर्तन के लिए संतुलन आय में परिवर्तन निम्नवत् होगा। उसी विधि का प्रयोग कर जो पहले सरकारी व्यय गुणाक तथा कराधान गुणाक को ज्ञात करने में प्रयोग की गई है, हस्तातरणों के लिये संतुलन आय में परिवर्तन को ऐसे ज्ञात किया जा सकता है:

$$\Delta Y = \frac{c}{1-c}\Delta TR \qquad (5.21)$$

अथवा

$$\frac{\Delta Y}{\Delta TR} = \frac{c}{1-c} \qquad (5.22)$$

उदाहरण 5.3

मान लीजिए कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.75 है और कर इकमुश्त है। जब सरकारी खरीद में 20 की वृद्धि होती है, तो संतुलन आय में परिवर्तन $\Delta Y = \frac{1}{1-0.75}\Delta G = 4 \times 20 = 80$ के बराबर होगा। जब करों में 30 की वृद्धि होगी, तो संतुलन आय में 90 के बराबर ह्रास होगा क्योंकि $\Delta Y = \frac{-0.75}{1-0.75}\Delta T = -3 \times 30 = -90$ अंतरण में 20 की वृद्धि से संतुलन आय में $\Delta Y = \frac{0.75}{1-0.75}\Delta TR = 3 \times 20 = 60$ वृद्धि होगी। इस प्रकार हम पाते हैं कि आय में वृद्धि सरकारी खरीद में वृद्धि की तुलना में कम होती है।

ऋण

बजटीय घाटे के लिए वित्त पोषण या तो करारोपण या ऋण अथवा नोट छापकर किया जाना चाहिए। सरकार प्रायः ऋण-ग्रहण पर आश्रित रहती है, जिसे सरकारी ऋण कहते हैं। घाटे और ऋण की संकल्पनाओं में निकट संबंध होता है। घाटे को एक *प्रवाह* के रूप में समझा जा सकता है, जिससे ऋण के *स्टॉक* में वृद्धि होती है। यदि सरकार का ऋण-ग्रहण एक वर्ष के बाद दूसरे वर्ष भी जारी रहता है, तो इससे ऋण का संचय होता है और सरकार को ब्याज के रूप में अधिक-से-अधिक भुगतान करना पड़ता है। इस ब्याज अदायगी से ऋण की मात्रा में स्वयं का योगदान होता है।

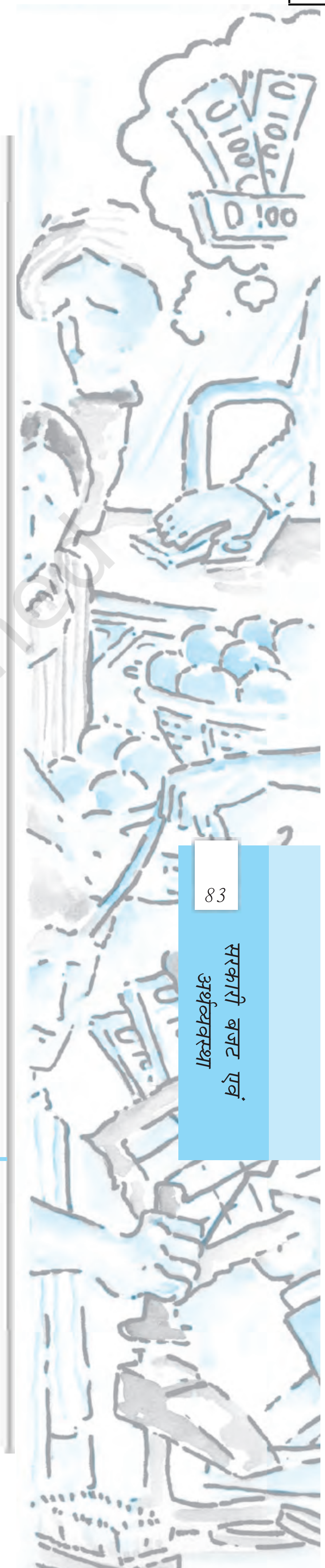

© NCERT not to be republished

सरकारी ऋण की समुचित मात्रा का परिप्रेक्ष्य: इस विषय के दो अंतर्संबंधित पहलू हैं। प्रथम, क्या सरकारी ऋण एक बोझ होता है और द्वितीय, ऋण के लिए वित्तीयन संबंधी विचार। ऋण बोझ की चर्चा करते समय यह ध्यान रहे कि सरकारी ऋण छोटे व्यापारी के ऋण के जैसा नहीं होता। अत: हमें समस्त रूप से विचार करना चाहिए न कि 'आंशिक' रूप से। किसी व्यापारी के विपरीत सरकार करारोपण के द्वारा और नोट छापकर संसाधनों में वृद्धि कर सकती है।

ऋण-ग्रहण कर सरकार उपभोग का बोझ कम करने के लिए अगली पीढ़ी को हस्तांतरित कर देती है, क्योंकि सरकार आज बंधपत्र जारी कर जनता से जो ऋण-ग्रहण करती है और उसका भुगतान लगभग 20 वर्ष बाद कर में वृद्धि करके कर सकती है। ये कर उन युवा आबादी पर लगाए जा सकते हैं, जिसने अभी काम करना आरंभ ही किया है। उनकी प्रयोज्य आय में ह्रास होगा और इस प्रकार उपभोग में भी कमी आयेगी। अत: ऐसा तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रीय बचत में गिरावट आयेगी। इसके अतिरिक्त, जनता से सरकार द्वारा ऋण-ग्रहण करने से निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध बचत में भी कमी आयेगी। इससे कुछ हद तक पूँजी निर्माण और वृद्धि में भी कमी आयेगी, क्योंकि ऋण को अगली पीढ़ी पर 'बोझ' के रूप में देखा जाता है। परंपरागत तौर पर यह तर्क दिया जाता है कि जब सरकार कर में कटौती करती है और घाटे का बजट बनाती है, तो उपभोक्ता अधिक व्यय करके कर से बचने वाली आय का इस्तेमाल करता है। संभव है कि लोग अल्पद्रष्टा हों और बजटीय घाटे के निहितार्थ को नहीं समझते हों। वे नहीं समझ सकते हैं कि भविष्य में किसी समय सरकार को ऋण और संचित ब्याज का भुगतान करने के लिए करों में वृद्धि करनी पड़ेगी। इस बात की समझ होने के बाद भी वे भविष्य में करों का बोझ अपने ऊपर पड़ने की आशा नहीं करते बल्कि उम्मीद करते हैं कि यह अगली पीढ़ियों पर पड़ेगा।

इसके विरुद्ध तर्क यह है कि उपभोक्ता अग्रदर्शी होते हैं और उनका व्यय न केवल वर्तमान आय पर निर्भर करता है बल्कि वे भविष्य में होने वाली आय की आशा से भी व्यय करते हैं। वे समझेंगे कि आज ऋण लेने से भविष्य में कर उच्च होगा। पुन: उपभोक्ता आने वाली पीढ़ी के बारे में भी चिंतित रहते हैं, क्योंकि आने वाली पीढ़ियाँ वर्तमान पीढ़ी के ही बच्चे या नाती-पोते होते हैं और परिवार जो इस संबंध में निर्णय लेने वाली एक इकाई है, हमेशा विद्यमान रहता है। वे अब अपनी बचत में वृद्धि करेंगे, जिससे सरकार की निर्बचत में वृद्धि पूर्ण रूप से प्रति संतुलित हो जाएगी और इससे राष्ट्रीय बचत में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इस मत को **रिकार्डो समतुल्यता** कहते हैं। डेबिड रिकार्डो 19वीं शताब्दी के महान अर्थशास्त्रियों में से एक थे, जिन्होंने सबसे पहले कहा था कि उच्च घाटे की स्थिति में लोग अधिक बचत करते हैं। इसे 'समतुल्यता' कहते हैं, क्योंकि यह कहा जाता है कि करारोपण और ऋण-ग्रहण व्यय के लिए समतुल्य वित्त साधन हैं। आज जब सरकार ऋण लेकर व्यय में वृद्धि करती है जिस ऋण का भुगतान भविष्य में करों के द्वारा किया जाएगा, तो अर्थव्यवस्था पर इसका वैसा ही प्रभाव पड़ेगा जैसाकि आज कर में वृद्धि के द्वारा वित्त की व्यवस्था करके सरकारी व्यय में वृद्धि करने से पड़ता है।

प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि "ऋण से कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि हम अपने लिए ऋण-ग्रहण करते हैं।" यही कारण है कि यद्यपि दो पीढ़ियों के बीच संसाधनों का हस्तांतरण होता है, फिर भी क्रय-शक्ति राष्ट्र के अधीन ही रहती है। किंतु विदेशियों से लिया गया कोई भी ऋण एक बोझ होता है, क्योंकि हमें ब्याज अदायगी के अनुरूप वस्तुएँ विदेश भेजनी पड़ती हैं।

घाटे और ऋण के अन्य परिप्रेक्ष्य: घाटे की मुख्य आलोचनाओं में एक यह भी है कि घाटे सदैव स्फीतिकारी होते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब सरकार व्यय में वृद्धि अथवा करों में कटौती करती है, तो समस्त माँग में वृद्धि होती है। फर्म अधिक मात्रा में, जितनी कि वर्तमान कीमत पर माँग की जाती है, उतने का उत्पादन करने में असमर्थ हो सकते हैं। इससे कीमत में वृद्धि हो जायेगी। किंतु यदि संसाधनों का उचित उपयोग न किया गया हो, तो माँग में कमी के कारण निर्गत को रोक लिया

© NCERT
not to be republished

जाता है। उच्च राजकोषीय घाटे के साथ माँग ऊँची और निर्गत अत्यधिक होते हैं। इसीलिए इसके स्फीतिकारी होने की आवश्यकता नहीं होती है।

प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि निवेश में कमी से निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध बचत की मात्रा में कमी होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि सरकार अपने घाटे की पूर्ति के लिए बंधपत्र जारी कर निजी लोगों से ऋण–ग्रहण करने का निर्णय लेती है, तो ये बंधपत्र निगम बंधपत्र और निधि की पूर्ति के लिए उपलब्ध अन्य वित्तीय उपकरणों से स्पर्धा करेंगे। यदि कुछ निजी बचतकर्ता बंधपत्र खरीदने का निर्णय करते हैं तो निजी क्षेत्र में निवेश करने के लिए शेष निधि की मात्रा अल्प होगी। इस प्रकार, जब सरकार अर्थव्यवस्था की कुल बचत के शेयर में वृद्धि का दावा करेगी तो कुछ निजी ऋण-ग्रहणकर्ता वित्तीय बाज़ारों के 'जनसमूह में घिर जाएँगे'। किंतु यह ध्यातव्य है कि अर्थव्यवस्था की बचत का प्रवाह तब तक निश्चित नहीं होगा, जब तक हम यह न मान लें कि आय में वृद्धि नहीं हो सकती है। यदि राजकीय घाटे से उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त होगा, तो आय अधिक होगी और बचत में भी वृद्धि होगी। इस स्थिति में सरकार और उद्योग दोनों अधिक-से-अधिक ऋण-ग्रहण कर सकते हैं।

यदि सरकार आधारभूत संरचना के निर्माण में निवेश कर रही है, तो आने वाली पीढ़ियाँ बेहतर स्थिति में होंगी। किंतु इस प्रकार के निवेशों का प्रतिफल ब्याज की दर से निश्चित रूप से अधिक होगा। निर्गत में बढ़ोतरी से ही वास्तविक ऋण का भुगतान किया जा सकता है। तब ऋण को बोझ के रूप में नहीं देखा जाएगा। संपूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास में ऋण वृद्धि को उचित ही माना जाएगा।

घाटे में कटौती: करों में वृद्धि अथवा व्यय में कटौती से सरकारी घाटे में कमी की जा सकती है। भारत में सरकार कर राजस्व में वृद्धि करने के लिए प्रत्यक्ष करों पर ज़्यादा भरोसा करती है (अप्रत्यक्ष कर अपनी प्रकृति में प्रतिगामी होता है और इनका प्रभाव सभी आय समूह के लोगों पर समान रूप से पड़ता है)। सार्वजनिक उपक्रमों के शेयरों की बिक्री के माध्यम से प्राप्तियों में बढ़ोतरी करने का भी एक प्रयास किया गया है। किंतु सरकारी व्यय में कटौती पर विशेष बल दिया गया है। सरकार के कार्यकलापों को सुनियोजित कार्यक्रमों और सुशासनों के माध्यम से संचालित करने से ही सरकारी व्यय में कटौती की जा सकती है। योजना आयोग के द्वारा हाल में किए गए एक अध्ययन[7] में यह आकलन किया गया है कि गरीबों तक 1 रु० का लाभ पहुँचाने के लिए सरकार खाद्य उपदान के रूप में 3.65 रु० व्यय करती है। यह व्यय सरकार इस उद्देश्य से करती है कि नकद राशि के अंतरण से लोगों के कल्याण में वृद्धि होगी। सरकार के *कार्यक्षेत्र* को बदलने का दूसरा तरीका यह है कि सरकार जिन क्षेत्रों में कार्य करती रही है, उनमें से कुछ क्षेत्र निकाल दिए जाएँ। कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्धनता निवारण जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार के कार्यक्रमों को रोकने से अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। अनेक देशों में सरकार अत्यधिक घाटे का वहन करती है। पूर्व निर्धारित स्तरों पर व्यय में वृद्धि नहीं करने के लिए सरकार स्वयं पर प्रतिबंधों का आरोपण करती है। (बॉक्स 5.1 में भारत में एफ.आर.बी.एम.ए. की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन है)। उपरोक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए इनका परीक्षण करना होगा। हमें यह ध्यान रखना होगा कि वृहत्तर घाटा हमेशा अधिक विस्तारित राजकोषीय नीति का परिणाम नहीं होता है। समान राजकोषीय नीतियाँ बड़े अथवा छोटे दोनों ही प्रकार के घाटों को जन्म दे सकती हैं, जो अर्थव्यवस्था की स्थिति पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी अर्थव्यवस्था में अमंदी और सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट देखने को मिलती है, तो इसका कारण है कि फर्म और परिवार की जब आय कम होती है, तो वे कम कर अदा करते हैं। तात्पर्य यह है कि अमंदी की स्थिति में घाटे में बढ़ोतरी होती है तथा तेज़ी की स्थिति में कमी, जबकि राजकोषीय नीति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

[7] इसे पुन: एक वर्ष 2009-10 के लिए सूचीबद्ध किया गया है, तीव्र राजस्व व्यय कार्यक्रम और आयोजन के पक्ष में योजन की प्राथमिकता के आधार पर मुख्य रूप से शिफ्ट होता है।

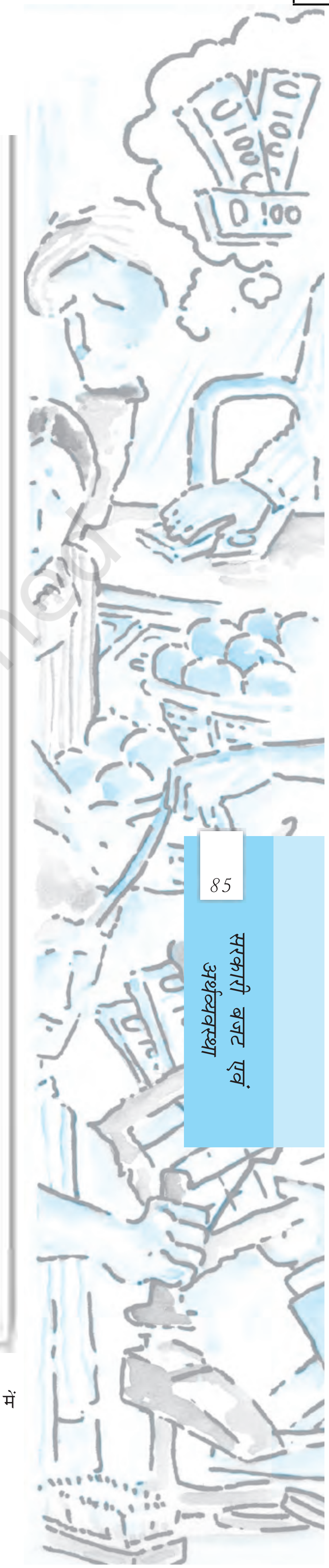

© NCERT not to be republished

सारांश

1. सार्वजनिक वस्तुओं का निजी वस्तुओं से अलग सामूहिक उपभोग होता है। सार्वजनिक वस्तुओं की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं–ये अप्रतिस्पर्धी होती हैं अर्थात एक व्यक्ति दूसरे की संतुष्टि में कमी किए बगैर अपनी संतुष्टि में वृद्धि कर सकता है तथा वे सार्वजनिक वस्तुएँ अवर्ज्य होती हैं अर्थात किसी को इन वस्तुओं का लाभ उठाने से वर्जित करने का कोई संभव तरीका नहीं है। इससे इनके उपयोग का शुल्क संग्रह करना कठिन होता है तथा निजी उद्यम आमतौर पर ऐसी वस्तुओं को मुहैया नहीं कराते हैं। अत: सरकार ही सार्वजनिक वस्तुएँ प्रदान करती है।
2. ये तीन फलन आवंटन, पुनर्वितरण और स्थिरीकरण इन तीनों के कार्यों का संचालन सरकार के व्यय एवं प्राप्तियों के माध्यम से होता है।
3. बजट में सरकार की प्राप्तियों एवं व्यय का विवरण होता है। वर्तमान वित्तीय आवश्यकताओं और देश के पूँजीगत स्टॉक में निवेश के बीच भेद करने की दृष्टि से बजट को दो भागों में विभक्त किया जाता है–(i) राजस्व बजट (ii) पूँजीगत बजट।
4. राजकोषीय घाटे के प्रतिशत में राजस्व घाटे की वृद्धि से निम्न पूँजी निर्माण सहित सरकारी व्यय की प्रकृति में गिरावट प्रदर्शित होती है।
5. आनुपातिक करों से स्वायत्त व्यय गुणक कम होता है क्योंकि करों के बाद शेष आय में से सीमांत उपभोग प्रवृत्ति में कमी आ जाती है।
6. यदि सार्वजनिक ऋण से भविष्य में निर्गत में वृद्धि प्रभावित होती है, तो यह एक प्रकार का बोझ है।

मूल संकल्पनाएँ

सार्वजनिक वस्तुएँ
आभ्यंतरिक स्थिरक
स्वनिर्णयगत राजकोषीय नीति
रिकार्डो की समतुल्यता

बॉक्स 5.2 राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजटीय प्रबंधन अधिनियम, 2003 (एफ.आर.बी.एम.ए.)

बहुदलीय संसदीय प्रणाली में व्यय संबंधी नीतियों के निर्धारण में निर्वाचकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह तर्क दिया जाता है कि विधायी प्रावधान जो सरकार के वर्तमान और भविष्य सब पर लागू होता है, घाटों को नियंत्रित करने में प्रभावकारी होता है। अगस्त, 2003 में एफ.आर.बी.एम.ए. का अधिनियमन वित्तीय सुधार और विवेकपूर्ण वित्तीय नीति का अनुसरण करने के लिए संस्थागत ढाँचे के माध्यम से सरकार को बाधित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ। केंद्र सरकार को यह निश्चय करना चाहिए कि अंतर्पीढ़ीय समता हो और पर्याप्त राजस्व की प्राप्ति से दीर्घकालिक समष्टि-अर्थशास्त्रीय स्थायित्व प्राप्त हो। मौद्रिक नीति के राजकोषीय बाधा को दूर करते हुए और घाटे तथा ऋण-ग्रहण को सीमित करते हुए प्रभावकारी ऋण प्रबंध हो। इस अधिनियम के नियमों को जुलाई, 2004 के प्रभाव से अधिसूचित किया गया।

मुख्य विशेषताएँ

1. यह अधिनियम केंद्र सरकार को राजकोषीय घाटा में सकल घरेलू उत्पाद के 3 प्रतिशत तक और कमी करने के समुचित उपाय करने का आदेश देता है, जिससे 31 मार्च 2009[8] तक का राजस्व घाटे को दूर किया जाए और उसके बाद पर्याप्त राजस्व आधिक्य का निर्माण हो।

[8] मुख्य रूप से राजस्व व्यय के पक्ष में योजनाओं के प्राथमिकता मे बदलाव आये हैं खास तौर से गहन कार्यक्रम और योजनायें। इसे 1 वर्ष के लिए 2009-10 तक पुनर्निधारित किया गया है।

© NCERT not to be republished

2. इसमें प्रत्येक वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का 0.3 प्रतिशत राजकोषीय घाटा में कटौती और 0.5 प्रतिशत राजस्व घाटे में कटौती की आवश्यकता बतलाई गई है। इसकी प्राप्ति यदि कर राजस्व से नहीं होती है, तो व्यय में कटौती से आवश्यक समंजन होना चाहिए।
3. निर्धारित लक्ष्य से अधिक वास्तविक घाटे में बढ़ोतरी केवल राष्ट्रीय सुरक्षा अथवा प्राकृतिक आपदा के आधार पर अथवा अन्य ऐसी आपवादिक स्थितियों, जिसे केंद्र सरकार निर्दिष्ट करती है, के आधार पर ही हो सकती है।
4. केंद्र सरकार भारतीय रिज़र्व बैंक से नकद प्राप्तियों के ऊपर नकद प्रतिपूर्तियों के अस्थायी आधिक्य की पूर्ति के लिए अग्रिम के अलावे अन्य किसी भी प्रकार का ऋण-ग्रहण नहीं करेगी।
5. भारतीय रिज़र्व बैंक वर्ष 2006-07 से केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों के प्राथमिक प्रतिभूतियों को नहीं खरीदेगा।
6. वित्तीय संचालन में अत्यधिक पारदर्शिता लाने के लिए उपाय किया जाना चाहिए।
7. केंद्र सरकार को संसद से दोनों सदनों के सामने वार्षिक वित्तीय विवरण के साथ तीन विवरण– मध्यवर्ती राजकोषीय नीति विवरण, राजकोषीय कार्यनीति संबंधी विवरण और समष्टि अर्थशास्त्रीय ढाँचागत विवरण प्रस्तुत करना होगा।
8. बजट के संबंध में प्राप्तियों और व्यय प्रवृत्तियों की त्रैमासिक समीक्षा संसद के दोनों सदनों के सामने प्रस्तुत करना होगा।

यह अधिनियम केन्द्र सरकार पर लागू होता है। यद्यपि, 26 राज्यों में पहले से राजकोषीय विधि निर्माण की जवाबदेही है जो सरकार के अधिक विस्तृत नियम आधारित राजकोषीय सुधार कार्यक्रम को बनाती है। यद्यपि सरकार इस पर जोर देती है कि एफ.आर.बी.एम.ए. एक महत्त्वपूर्ण संस्थानिक उपाय है जो राजकोषीय समझदारी और समष्टि अर्थशास्त्रीय संतुलन को सहारा प्रदान करती है, इस अधिनियम के द्वारा वांछित लक्ष्य की पूर्ति के लिए कल्याणगत व्यय में कटौती की आशंका व्याप्त रहती है।

FRBM समीक्षा समिति

विगत तरह वर्षों में जबसे FRBM अधिनियम पारित किया गया है, भारतीय अर्थव्यवस्था एक मध्य आय वाला देश हो गयी है। FRBM के पारित होने के समय यह सामान्य धारणा थी कि राजकोषीय नियम स्वेच्छा से बेहतर है। लेकिन तब से विकसित राष्ट्र इस धारणा से आगे निकल गये हैं लेकिन भारत में, सरकार ने FRBM में निहित राजकोषीय सिद्धातों में अपना विश्वास सत्य घोषित कर दिया है। इसलिये 2003 में स्थापित संक्रियात्मक ढाँचें को बनाये रखने के लिये समर्थन प्राप्त है और इसे भारत के बदलते हुए परिदृश्य के अनुसार बदलना और भविष्य में विकास पथ को भी ध्यान में रखना यह वह कार्य है जो FRBM समीक्षा समिति को दिया गया है।

बॉक्स 5.3 वस्तु एवं सेवाकर-एक राष्ट्र, एक कर, एक बाजार

जुलाई 2017 से लागू किया गया, वस्तु एवं सेवाकर, उत्पाद को सेवा प्रदायकों से सीधे ही वस्तु एवं सेवाओं की पूर्ति पर लगाया गया एकल व्यापक अप्रत्यक्ष कर है। यह गंतव्य आधारित उपभोग कर है जिस पर पूर्ति श्रृंखला में आगत जमा की सुविधा प्राप्त है। यह एक ही प्रकार की वस्तुओं/सेवाओं पर एक ही दर वाला पूरे भारत में लागू कर है। इससे बहुत जड़ी संख्या में केंद्रीय एवं राज्यकीय करों और उपकरों को मिला लिया है। इसने वस्तुओं और सेवाओं पर करों को जो वस्तुओं के उत्पादन/बिक्री अथवा सेवाओं के प्रदान करने पर लगाये जाते थे, प्रतिस्थापित कर दिया है।

© NCERT not to be republished

वस्तु एवं सेवक कर लगने से पूर्व की अवधि में, अनेकों मध्यवर्ती वस्तुऐं /सेवाऐं जो अर्थव्यवस्था में उत्पादन कर रही थीं, पर प्रत्येक स्तर पर वर्धित मूल्य पर एवं वस्तु/सेवा के कुल मूल्य पर बिना किसी आगत कर जमा (ITC) के कर लगाये जाते थे। कुल मूल्य में मध्यवर्ती वस्तुओं/ सेवाओं पर दिया गया कर सम्मिलित था। इससे करों का सोपानन हो जाता था। वस्तु और सेवा पूर्ति के प्रत्येक स्तर पर लिया जाता है और पूर्व के स्तर पर दिये गये, कर का क्रेडिट अगली स्टेज पर वस्तु सेवा की पूर्ति के स्तर पर मुजरा दिया जाता है। इस प्रकार यह प्रभावी रूप से पूर्ति के प्रत्येक स्तर पर एक मूल्य वर्जित कर है। हमारी विशाल एवं तेजी से विकसित हो रही अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुऐ, यह पूरे देश में कराधार में समता और मूल्य संवर्धित कर के सिद्धांतों को सभी वस्तुओं और सेवाओं पर स्थापित करता है।

इसने केन्द्र/राज्य/ केन्द्रशासित प्रदशों के द्वारा लगाये गये विभिन्न प्रकार के करों/उपकरों को प्रतिस्थापित कर दिया है। केन्द्र द्वारा लगाये गये कुछ कर केन्द्रीय उत्पादन कर, सेवाकर, केन्द्रीय बिक्री कर, और कृषि कल्याण कर, स्वच्छ भारतकर उपकर थे। राज्य के प्रमुखकर, वाट/सेल्सटैक्स, प्रवेशकर, विलासिता कर, चुँगी, मनोरंजन कर विज्ञापनों पर कर, लौटरी/बैंटिग/जुआकर, वस्तुओं पर राज्यीय कर आदि थे। ये सब वस्तु एवं सेवा में समाहित हो गये हैं।

वर्तमान में पैट्रोलियम पदार्थों को वस्तु एवं सेवा कर से बाहर रखा गया है, लेकिन समय बीतने के साथ इन्हें भी वस्तु एवं सेवाकर में समाहित कर दिया जायेगा। मानव उपयोग के लिये मादक पेयों पर राज्य सरकारें वस्तु और सेवाकर लगाती रहेगी। तम्बाकू तथा तम्बाकू पदार्थों पर वस्तु एवं सेवा कर तथा केन्द्रीय उत्पादन कर दोनों लगेंगे। वस्तु एवं सेवाकर के अर्न्तगत पूरे देश में वस्तुओं और अथवा वस्तुओं पर 6 मानक दरें जैसे, 0% 3%, 5%, 12%, 18% तथा 28% लागू होंगी।

स्वतंत्रता के पश्चात्, वस्तु एवं सेवाकर, देश में सबसे बड़ा कर सुधार है जो 30 जून/ 1 जुलाई 2017 की अर्थरात्रि को संसद के द्वारा देश में लागू किया गया। ग्यारवें संविधान संशोधन अधि नियम को 8 सितम्बर 2016 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। इस संशोधन से संविधान में धारा 246 A शामिल हुआ जिसने संसद तथा राज्यों की विधानसभाओं का वस्तुओं एवं सेवाकर संबंधी कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया। इसके पश्चात् वस्तुओं सेवाकर के लिये GST Act, UTGST Act और SGST Acts पारित किये गये। अधिनियम, प्रक्रियाऐं और पूरे भारत में करों की दरों का मानकीकरण हो गया है। इसने वस्तुओं और सेवाओं के आवागमन की स्वतंत्रता को सुविधाजनक बना दिया है और पूरे भारत में एक 'कॉमन बाजार' का सृजन कर दिया हैं इसका उद्देश्य व्यवसायिक लागत और उपभोक्ताओं पर विभिन्न करों के सोपानन प्रभाव को कम करना है। इसने उत्पादन की कुल लागत को कर कर दिया है जो घरेलू तथा अंर्तराष्ट्रीय बाजारों में भारतीय वस्तुओं एवं सेवाओं और अधिक प्रतियोगी बनायेंगी। इससे आर्थिक विकास बढ़ेगा क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में कोई 2 प्रतिशत की वृद्धि होगी। कर अनुपालन भी अधिक होगा क्योंकि कर अदायगी संबंधी सेवाऐं जैसे पंजीकरण, रिटर्न भरना, कर अदायगी, सभी एक सामान्य पोर्टल www.gst.gov.in पर ऑन-लाइन उपलब्ध हैं। इसने कर आधार को विस्तृत कर दिया है, कर व्यवस्था में अधिक पारदर्शिता ला दी है, सरकार और करदाताओं के बीच मानव अंर्तप्रदेश को कम कर दिया है और व्यवसाय करने की सुविधा को बढ़ावा दे रही है।

अभ्यास

1. सार्वजनिक वस्तु सरकार के द्वारा ही प्रदान की जानी चाहिए, क्यों? व्याख्या कीजिए।
2. राजस्व व्यय और पूँजीगत व्यय में भेद कीजिए।
3. राजकोषीय घाटा से सरकार को ऋण-ग्रहण की आवश्यकता होती है, समझाइए।
4. राजस्व घाटा और राजकोषीय घाटा में संबंध बताइए।
5. मान लीजिए कि एक विशेष अर्थव्यवस्था में निवेश 200 के बराबर है, सरकार के क्रय की मात्रा 150 है, निवल कर (अर्थात् इकमुश्त कर से अंतरण को घटाने पर) 100 है और उपभोग $C = 100 + 0.75Y$ दिया हुआ है, तो (a) संतुलन आय का स्तर क्या है? (b) सरकारी व्यय गुणक और कर गुणक के मानों की गणना करें। (c) यदि सरकार के व्यय में 200 की बढ़ोतरी होती है, तो संतुलन आय में क्या परिवर्तन होगा?
6. एक ऐसी अर्थव्यवस्था पर विचार कीजिए, जिसमें निम्नलिखित फलन हैं:

   $C = 20 + 0.80Y$, $I = 30$, $G = 50$, $TR = 100$ (a) आय का संतुलन स्तर और मॉडल में स्वायत्त व्यय गुणक ज्ञात कीजिए। (b) यदि सरकार के व्यय में 30 की वृद्धि होती है, तो संतुलन आय पर क्या प्रभाव पड़ेगा? (c) यदि इकमुश्त कर 30 जोड़ दिया जाए, जिससे सरकार के क्रय में बढ़ोतरी का भुगतान किया जा सके, तो संतुलन आय में किस प्रकार का परिवर्तन होगा?
7. उपर्युक्त प्रश्न में अंतरण में 10 की वृद्धि और इकमुश्त करों में 10 की वृद्धि का निर्गत पर पड़ने वाले प्रभाव की गणना करें। दोनों प्रभावों की तुलना करें।
8. हम मान लेते हैं कि $C = 70 + 0.70\ YD$, $I = 90$, $G = 100$, $T = 0.10Y$ (a) संतुलन आय ज्ञात कीजिए। (b) संतुलन आय पर कर राजस्व क्या है? क्या सरकार का बजट संतुलित बजट है?
9. मान लीजिए कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.75 है और आनुपातिक आय कर 20 प्रतिशत है। संतुलन आय में निम्नलिखित परिवर्तनों को ज्ञात करें। (a) सरकार के क्रय में 20 की वृद्धि (b) अंतरण में 20 की कमी।
10. निरपेक्ष मूल्य में कर गुणक सरकारी व्यय गुणक से छोटा क्यों होता है? व्याख्या कीजिए।
11. सरकारी घाटे और सरकारी ऋण-ग्रहण में क्या संबंध है? व्याख्या कीजिए।
12. क्या सार्वजनिक ऋण बोझ बनता है? व्याख्या कीजिए।
13. क्या राजकोषीय घाटा आवश्यक रूप से स्फीतिकारी है?
14. घाटे में कटौती के विषय पर विमर्श कीजिए।
15. वस्तु एवं सेवाकर (GST) से आप क्या समझते हैं? पुरानी कर व्यवस्था के मुकाबल GST व्यवस्था कितनी श्रेष्ठ है? इसकी श्रेणियों की व्याख्या कीजिये।

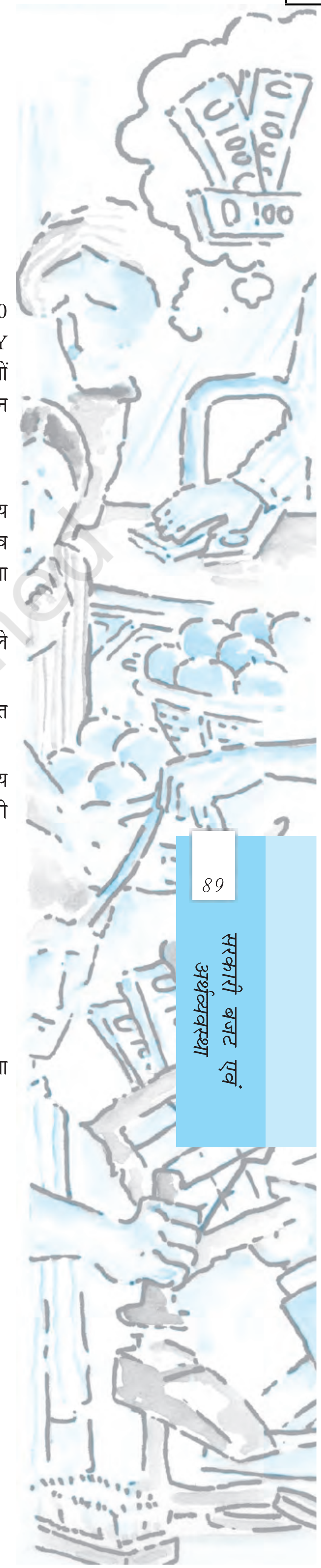

सुझावात्मक पठन

डोर्नबुश आर. और एस. फिशर, 1994 *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* छठा संस्करण, मैक्ग्राहिल।

मानकिव एन. जी., 2000, *मैक्रोइकोनॉमिक्स,* चौथा संस्करण, मैकमिलन।

आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, विभिन्न मुद्दे।

© NCERT not to be republished

अध्याय 6

खुली अर्थव्यवस्था समष्टि अर्थशास्त्र

खुली अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो विभिन्न माध्यमों द्वारा अन्य देशों से अंतर्व्यवहार करती है। अब तक हमने इस पहलू पर विचार नहीं किया था और बंद अर्थव्यवस्था तक सीमित रेखा जिसमें शेष विश्व से कोई जुड़ाव हीं होते ताकि हमारा विश्लेषण सरल रहे और समष्टि अर्थशास्त्र के आधार तंत्र की व्याख्या सरल हो। वास्तव में, अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ खुली हैं। इन जुड़ावों को स्थापित करने के तीन तरीके हैं।

1. निर्गत बाजार– एक अर्थव्यवस्था अन्य देशों से वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार कर सकती है। इससे चयन विस्तृत होता है, इस अर्थ में कि उपभोक्ता और उत्पादक घरेलू और विदेशी वस्तुओं के बीच चयन कर सकते हैं।
2. वित्तीय बाजार– अधिक बार, एक अर्थव्यवस्था, दूसरे देशों से वित्तीय परिसंपत्तियाँ खरीदती है। इससे विनियोजकों को घरेलू तक विदेशी परिसंपत्तियों से चयन की अवसर मिलता है।
3. श्रम बाजार– फर्म यह चयन कर सकती हैं कि उत्पादन को कहाँ किया जाए और श्रमिक चयन कर सकते हैं कि कहाँ काम किया जाय। अनेकों अप्रवासन कानून, श्रमिकों की देशों के मध्य आवागमन को प्रतिबंधित करते हैं।

पारंपरिक रूप से, वस्तुओं के अवागमन को, श्रम आवागमन के स्थापना की भाँति देखा गया है। हम, पहले दो जुड़ावों पर विचार करते है।

इस प्रकार, खुली अर्थव्यवस्था वह है जो अन्य देशों के साथ वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार करती है और बहुधा, वित्तीय परिसंपत्तियों में भी। उदाहरणार्थ, भारतीय चारों ओर विश्व में उत्पादित वस्तुओं का उपभोग कर सकते हैं और भारत से कुछ वस्तुओं का अन्य देशों को निर्यात किया जाता है।

इस प्रकार, विदेशी व्यापार, भारत की समस्त माँग को दो प्रकार से प्रभावित करता है। प्रथम, जब भारतीय विदेशी वस्तुओं को खरीदते हैं तो उनके द्वारा किया गया व्यय समस्त माँग को कम करते हुए, आय के वर्तुल प्रवाह से रिसाव के रूप में निष्कासित होता है। द्वितीय, विदेशों को जो हम निर्यात करते हैं वह घरेलू उत्पादित वस्तुओं के लिये समस्त माँग में वृद्धि करते हुए वर्तुल प्रवाह में अंत क्षेपण के रूप में प्रवेश करता है।

जब राष्ट्रीय सीमाओं के बीच वस्तुओं का आवागमन होता है, सौदों के लिये द्रव्य का उपयोग किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी कोई एक करेंसी नहीं है जो किसी एक बैंक द्वारा निर्गमित की जाती हो। विदेशी आर्थिक एजेंट, किसी राष्ट्रीय करेंसी को तभी स्वीकार करेंगे, यदि वे आश्वस्त हो कि उस करेंसी

© NCERT not to be republished

की एक निश्चित मात्रा से वे जो वस्तुएँ खरीद सकेंगे, उसमें अवसर परिवर्तन नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, करेंसी की क्रय शाक्ति स्थिर रहेगी।

इस विश्वास के बगैर, किसी करेंसी को अंतर्राष्ट्रीय विनिमय के माध्यम के रूप में उपयोग नहीं किया जायेगा और न ही लेखा की इकाई के रूप में उपयोग होगा क्योंकि ऐसा कोई अंतराष्ट्रीय प्रधिकरण नही है जिसके पास यह शक्ति हो कि वह अंतर्राष्ट्रीय लेन देन में किसी करेंसी के उपयोग को लागू कर सके।

भूतकाल में, देशों की सरकारों के द्वारा संभाव्य उपयोगकर्ताओं का विश्वास पाने के लिये यह घोषणा की गई कि राष्ट्रीय मुद्रा निर्वाध रूप से स्थिर कीमत पर दूसरी परिसंपत्तियों में परिवर्तित होंगे, जिसके मूल्य पर जारीकर्ता का कोई नियंत्रण नहीं होगा। यह दूसरी परिसंपत्ति बहुधा सोना या अन्य राष्ट्रीय मुद्राएँ थी। इस वचनबद्धता के दो पहलू हैं जिसने इसकी विश्वसनीयता को प्रभावित किया है- असीमित मात्रा में निर्वाध रूप में परिवर्तन की समता और कीमत, जिस पर परिवर्तन होता है। इन्हीं मुद्रों का निराकरण करने तथा अंतर्राष्ट्रीय लेनदेन में स्थिरता लाने के लिये, अंतराष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली की स्थापना की गई।

लेनदेनों के मात्रा में वृद्धि के साथ, स्वर्ण वह परिसंपति नहीं रहा जिसमें राष्ट्रीय करेंसियों को परिवर्तित किया जा सके। (बॉक्स 6.1 को देखें)। यद्यपि कुछ राष्ट्रीय करेंसियों की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता है, दो देशों के बीच लेन देन में, वह करेंसी महत्वपूर्ण होती है जिसमें व्यापार किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई भारतीय अमेरिका में निर्मित वस्तु खरीदना चाहता है तो लेनदेन को पूरा करने के लिए उसे डॉलरों की आवश्यकता होगी। यदि वस्तु की कीमत 10 डॉलर है तो उसे यह जानना जरूरी होगा कि भारतीय रूपयों में इसकी लागत क्या होगी। एक देश की मुद्रा की किसी अन्य देश की मुद्रा के रूप में कीमत को विदेशी विनिमय दर अथवा सरल रूप में विनिमय दर कहते हैं। इस विषय दर हम खंड 6.2 में विस्तृत चर्चा करेंगे।

6.1 अदायगी-संतुलन

अदायगी संतुलन (BOP) किसी एक देश के निवासियों और शेष विश्व के बीच, एक निश्चित समयावधि में, खासकर 2 वर्ष में, वस्तुओं, सेवाओं और परिसंपत्तियों के लेनदेन का विवरण है। अदायगी संतुलन के दो मुख्य खाते होते हैं- चालू खाता और पूँजी खाता[1]।

6.1.1 चालू खाता

चालू खाता वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार में अंतरण अदायगियों का विवरण है। चित्र 6.1, चालू खाते के घटकों की प्रदर्शित करता है। वस्तुओं के व्यापार में, वस्तुओं के निर्यातों तथा आयातों को शामिल किया जाता है। सेवाओं के व्यापार में उपदान आय तथा गैर उपदान आय लेनदेन को शामिल किया जाता है। अंतरण भुगतान, ऐसी प्रभत्तियाँ हैं जो किसी देश के निकासियों को निशुल्क प्रभाव होती है और बदले में कोई वस्तुऐं अथवा सेवाएँ नहीं देनी पड़ती। इनमें उपहार, प्रेषित जन और अनुदान शामिल हैं। यह सरकार अथवा विदेशों में रहने वाले निजी व्यक्तियों द्वारा दिये जा सकते हैं।

[1]एक नये वर्गीगरण के अंतर्गत अदायगी संतुलन को तीन खातों में विभाजित किया गया है- चालू खाता, वित्तीय खाता तथा पूंजी खाता। यह अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अदायगी संतुलन एवं अंतर्राष्ट्रीय स्थिति मेन्यूअल (BPM6) के छठे संस्कार के अनुसार है। भारत ने भी इस निवेश परिवर्तन को कर लिया है लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक पुराने वर्गीकरण के आधार पर ही समंकों को छाप रहा है।

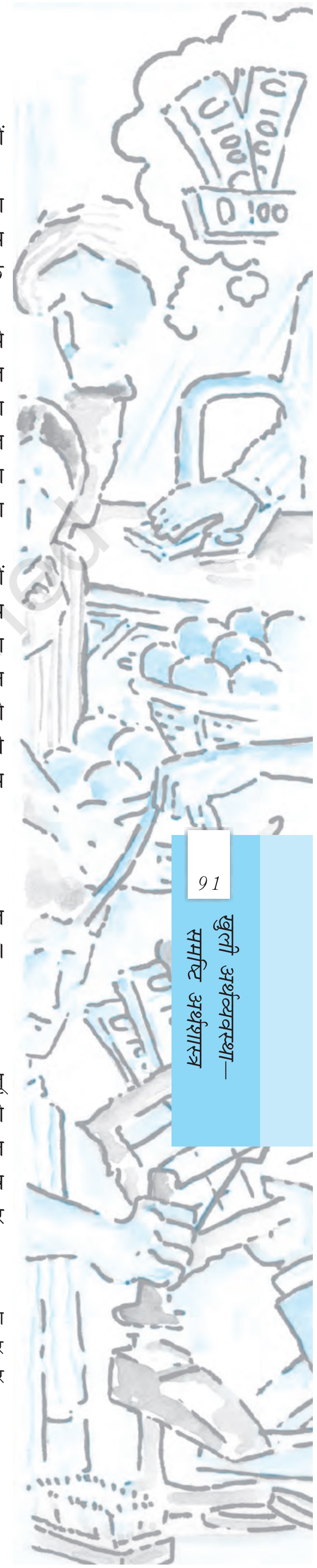

© NCERT not to be republished

विदेशों से वस्तुएँ खरीदना, हमारे देश का व्यय है तथा यह विदेश की आय है। इसलिए, विदेशी वस्तुओं की खरीद अथवा आयात है, हमारे देश में घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की माँग को कम कर देते हैं। इसी प्रकार, विदेशों को माल बेचने अथवा निर्यातों से हमारे देश को आय प्राप्त होती है जो हमारे देश में वस्तुओं और सेवाओं की कुल घरेलू माँग में वृद्धि करते हैं।

चित्र 6.1 **चालू खाते के घटक**

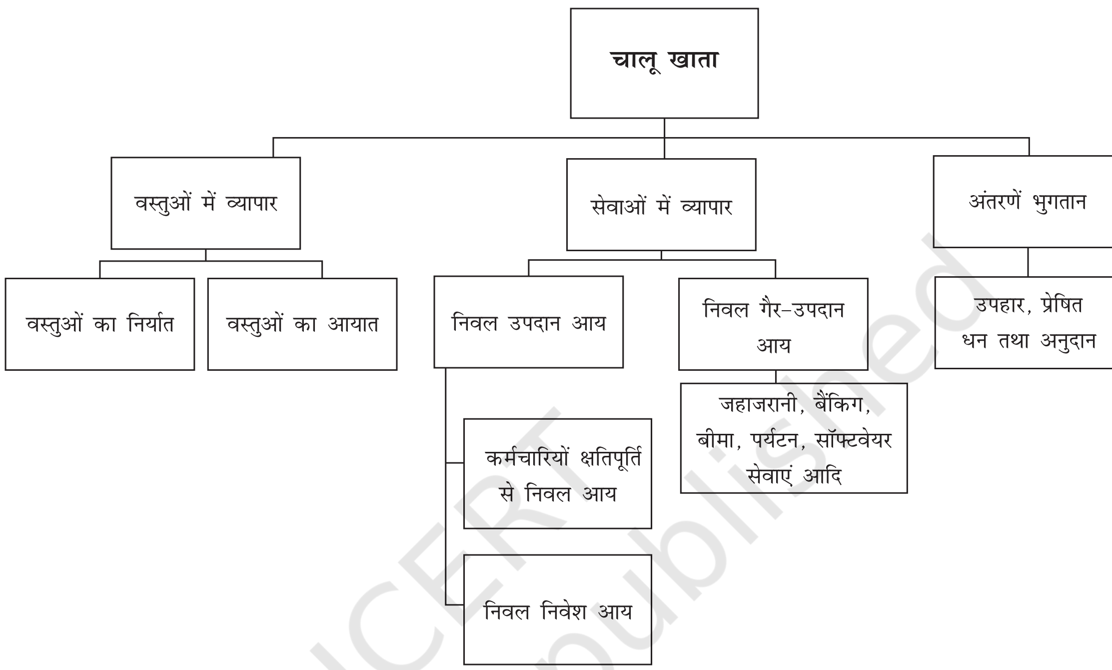

चालू खाते में संतुलन

चालू खाता संतुलन में होता है जब, चालू खाते में प्राप्तियाँ चालू खाते के भुगतानों के बराबर होती हैं। चालू खाते के आधिक्य का अर्थ है कि एक देश को अन्य देशों लेना है और चालू खाते के घाटे का अर्थ है कि देश अन्य देशों की ऋणी है।

चालू खाते का आधिक्य	संतुलित चालू खाता	चालू खाते का घाटा
प्राप्तियाँ > भुगतान	प्राप्तियाँ = भुगतान	प्राप्तियाँ < भुगतान

चालू खाते के संतुलन के दो धरक होते हैं
- व्यापार का संतुलन के दो धरक होते हैं
- अदृश्य मदों का संतुलन

व्यापार संतुलन (BOT) किसी देश के एक निश्चित समयवधि में, निर्यातों और आयातों के मूल्यों की अंतर है। वस्तुओं के निर्यात को BOT में क्रेडिट किया जाता है तथा आयात को BOT में डेबिट किया जाता है। इसका व्यापार संतुलन भी कहते हैं।

BOT को संतुलित कहा जाता है जब वस्तुओं के निर्यात, वस्तुओं के आयात के बराबर होते हैं। BOT में अधिक्य अथवा व्यापार अधिक्य तभी होता है जब कोई देश आयातों की अपेक्षा, वस्तुओं का निर्यात अधिक करता है। घाटे की BOT तब होगा।

© NCERT not to be republished

जब कोई देश निर्यातों की अपेक्षा, वस्तुओं का अधिक आयात करता है। **निवल अदृश्य मदें** एक देश के एक निश्चित अवधि में अदृश्य मदों के निर्यातों एवं आयातों के मूल्यों का अंतर होती हैं। अदृश्य मदों में विभिन्न देशों के बीच होने वाली, सेवाओं, हस्तांतरणों तथा आम प्रवाह शामिल होते हैं। सेवाओं के व्यापार में, उपदान तथा गैर-उपदान आय दोनों शामिल किया जाता है। उपदान आय में उत्पादन के साधनों जैसे व्यय, भूमि तथा पूँजी) से प्राप्त निवल अंतर्राष्ट्रीय आयों को शामिल किया जाता है। सेवा-उत्पादों जैसे जहाजरानी, बैंकिंग, पयर्टन, सॉफ्टवेयर सेवाएँ आदि से प्राप्त निवल बिक्री को गैर-उपदान आय कहते हैं।

6.1.2. पूँजी खाता

पूँजी खाता, परिसंपत्तियों के समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेनदेनों को दर्ज करता है। परिसम्पत्ति धन को रखने का कोई भी रूप होता है। जैसे, मुद्रा, स्टॉक, बंधपत्र, सरकारी ऋण आदि। परिसम्पत्तियों की खरीद पँजी-खाते में डेबिट की जाती है। यदि कोई भारतीय एक यू. के. कार कंपनी को खरीदता है तो वह इस पूंजी खाते के लेनदेन का, डेबिट मद में प्रविष्टी कर देता है (क्योंकि विदेशी विनिमय का भारत से बाह्य प्रवाह हो रहा है)। दूसरी ओर, परिसंपत्ति की बिक्री जैसे, यू. के. से खरीदी गई, एक भारतीय कंपनी के शेयर की बिक्री एक चीनी व्यापारी को बिक्री करना पूंजी खाते की क्रेडिट मद है। चित्र 6.2 उन मदों का वर्गीकरण करता है जो चालू खाते के लेनदेनों का भाग है। यह मदें प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (FIIs) विदेशी संस्थागत विनयोग (FIIs) विदेशी ऋण तथा सहायता हैं।

चित्र 6.2 पूँजी खाते के घटक

- **पूँजी खाता**
  - निवेश
    - प्रत्यक्ष निवेश
      - उदाहरण– FDI, इक्विटी पूँजी, पूर्न-निवेशित आयें तथा अन्य प्रत्यक्ष पूँजी प्रवाह
    - पोर्टफ़ोलियो निवेश
      - उदाहरण– FII, विदेशी फंड
  - विदेशी ऋण
    - उदाहरण– विदेशी व्यापारिक ऋण, अल्पकालिक ऋण
  - विदेशी सहायता
    - उदाहरण– सरकारी सहायता, अंतः सरकारी, बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय ऋण

पूँजी खाता संतुलन

पूँजीखाता संतुलन में होता है जब पूँजी अंर्तप्रवाह (जैसे विदेशों से ऋण प्राप्ति, विदेशी कंपनियों में शेयरों की बिक्री) पूँजी बाह्य प्रवाहों (जैसे ऋणों की भुगतान, विदेशों में कम्पनियों के शेयरों या परिसंपत्तियों का खरीदना) के बराबर होते हैं। पूँजी खाते में आधिक्य तब होता है जब पूँजी अंर्तप्रवाह, पूँजी खाते में घाटा तब होता है जब पूँजी अंर्तवाह, पूँजी बाह्य प्रवाहों से कम होते हैं।

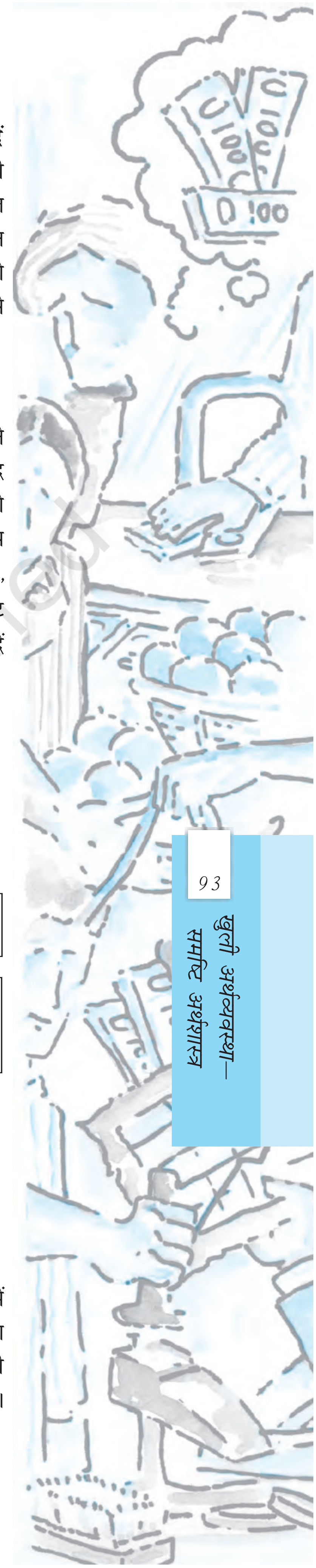

© NCERT not to be republished

6.1.3 अदायगी-संतुलन और घाटा

अंतर्राष्ट्रीय अदायगी का सार है कि जिस प्रकार अपनी आय से अधिक व्यय करने वाले को, परिसम्पत्तियाँ बेचकर अथवा उधार लेकर, आय व्यय के अंतर को पूरा करना पड़ता है, उसी प्रकार कोई देश जिसके चालू खाते में घाटा है (जो शेष विश्व को बिक्री से प्राप्त धन से अधिक धन व्यय करता है। उसे अपनी परिसम्पत्तियों को बेचकर या विदेशों से ऋण लेकर उस कमी को पूरा करना होता है। इस प्रकार, किसी भी चालू खाता घाटे को निवल पूँजी खाता अधिक्य अर्थात् निवल पूँजी प्रवाह से वित्तपोषित करना होता है।

चालू खाता + पूँजी खाता = 0

वैकल्पिक रूप में, एक देश अपने घाटे को संतुलित करने के लिये, अपने विदेशी विनिमय कोषों का उपयोग कर सकता है। जब घाटा होता है तो रिजर्व बैंक विदेशी विनिमय बेचता है। इसे अधिकारिक कोष विक्रय कहा जाता है। अधिकारिक कोषों में कमी (वृद्धि) का कुल अदायगी-संतुलन घाटा (**अधिक्य**) कहते हैं। मूलभूत तथ्य यह है कि अदायगी संतुलन में मौद्रिक अधिकारी अंतिम वित्तपोषक होते हैं (अथवा किसी अधिक्य के अधिग्रही होते हैं)

ध्यातव्य है कि अधिकारिक कोष लेनदेन एक अधिकोलित विनिमय दर अवस्था में, अस्थायी विनिमय दरों की अपेक्षा अधिक प्रासंगिक होते हैं।

स्वायत्त और समायोजित लेनदेन

अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक लेनदेनों को तब स्वायत कहा जाता है जब लेनदेन, अदायगी संतुलन में विषमता को पूरा करने के अलावा, किसी और कारणवश किये जाते हैं, अर्थात जब वे BOP की दशा से स्वतंत्र होते हैं। एक कारण लाभ कमाना हो सकता है। इन मदों को अदायगी संतुलन में 'रोक के ऊपर की मदें' कहते है। जब स्वायत्त प्राप्तियाँ स्वायत्त अदायगियों से अधिक (कम) हों, तो अदायगी संतुलन को अधिवय (घाटा) काहा जाता है।

समायोजित लेनदेनों (रेखाओं के नीचे की मदों) का निर्धारण अदायगी-संतुलन की विषमता द्वारा होता है अर्थात जब अदायगी-संतुलन में घाटा हो अथवा अधिक्य हो। अन्य शब्दों में ये स्वायत्त लेनदेनों के निवल परिणामों द्वारा निर्धारित होते हैं। क्योंकि अधिकारिक कोष लेनदेन BOP की विषमता को पाटने के लिये किये जाते हैं, उन्हें अदायगी-संतुलन में समायोजित मदों के रूप में देखा जाता है (अन्य सभी स्वायत्ता हों)।

त्रुटि और लोपः सभी अंतर्राष्ट्रीय लेनदेनों को सही प्रकार से रिकार्ड करना कठिन है। अतः हमारे पास BOP का एक तीसरा अवयव (चालू और पूंजी खातों के अतिरिक्त) जिसे त्रुटि और लोप का प्रतिबिंबित मानते हैं।

तालिका 6.1 भारत के अदायगी-संतुलन का एक नमूना प्रस्तुत करती है। ध्यान दीजिये, इस तालिका में व्यापार घाटा है, चालू खाते का घाटा है लेकिन पूंजी खाते का अधिक्य है। फलस्वरूप BOP संतुलन में है।

अदायगी-संतुलन घाटा	अदायगी संतुलन संतुलित	अदायगी संतुलन अधिक्य
कुल संतुलन < 0	कुल संतुलन $= 0$	कुल संतुलन > 0
रक्षित परिवर्तन > 0	रक्षित परिवर्तन $= 0$	रक्षित परिवर्तन < 0

© NCERT not to be republished

तालिका 6.1 भारत का अदायगी-संतुलन (मिलियन अमेरिकी डॉलरों में)

संख्या	*मद*	*मिलियन अमेरिकी डॉलर*
1.	निर्यात (केवल वस्तुओं का)	150
2.	आयात (केवल वस्तुओं का)	240
3.	व्यापार संतुलन (2-1)	-90
4.	(निवल) अदृश्य मदें (4a+4b+4c)	52
	(a). गैर-उपदान सेवाऐं	30
	(b). आय	-10
	(c). हस्तांतरण	32
5.	चालू खाते का शेष (3+4)	-38
6.	चालू खाते का शेष (6a+6b+6c+6d+6e+6f)	41.15
	(a). बाह्य सहायता (निवल)	0.15
	(b). बाह्य व्यापारिक ऋण	2
	(c). अल्पकालीन ऋण	10
	(d). बैंकिंग पूंजी (निवल) जिसमें गैर निवासी जमाऐं	15 9
	(e). विदेशी निवेश (निवल) जिसमें (6eA+6eB)	19
	A. प्रत्येक विदेशी निवेश (निवल)	13
	B. पोर्ट फोलियो (निवल)	6
	(f). अन्य प्रवाह (निवल)	-5
7.	त्रुटि एवं लोप	-3.15
8.	कुल संतुलन	0
9.	आरक्षियों में परिवर्तन	0

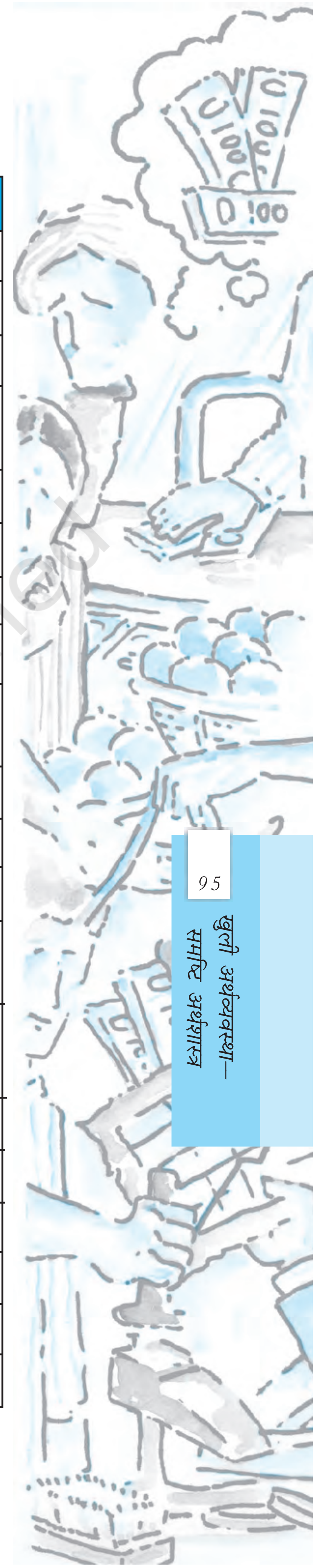

© NCERT not to be republished

बॉक्स 6.1

यहाँ दिखाया गया अदायगी संतुलन लेखा, लेनदेनों को दो खातों में बांटता है–चालू खाता तथा पूंजी खाता। वैसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा Balance of Payments and International Investment Position Manual के छठे संस्करण में नये लेखीय मानदंड लागू किये जाने के पश्चात भारतीय रिजर्व बैंक ने भी, अदायगी–संतुलन की संरचना में परिवर्तन किये हैं। नये वर्गीकरण के अनुसार, लेनदेनों को तीन खातों में बांटा गया है– चालू खाता, वित्तीय खाता तथा पूंजी खाता। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि वित्तीय परिसम्पत्तियों जैसे बांड और इक्विटी शेयरों में व्यापार के कारण, हाने वाले सभी लेनदेनों का अब वित्तीय खाते में रख दिया गया है। लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक अभी भी पुरानी प्रणाली के अनुसार ही अदायगी–संतुलन खातों को प्रकाशित कर रहा है। अत: यहाँ पर नई प्रणाली के विवरणों को नहीं दिया जा रहा। यह विवरण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सितम्बर 2010 में प्रकाशित Balance of Payments Manual में उपलब्ध है।

6.2 विदेशी विनिमय बाजार

अंतर्राष्ट्रीय लेनदेन के लेखांकन पर समस्त रूप में विचार करने के पश्चात् अब हम किसी एकल लेनदेन की चर्चा करते हैं। कल्पना कीजिए कि एक भारतीय निवासी छुट्टी बिताने के लिये लंदन की यात्रा (पर्यटन सेवा का आयात) पर जाना चाहता है। लंदन में ठहरने के लिये उसे पौंड में भुगतान करना होगा। उसे यह जानने की आवश्यकता होगी कि पौंड कहाँ से और किस कीमत पर प्राप्त किये जा सकते हैं। जैसा कि पहले जिक्र किया जा चुका है, इस कीमत को 'विनिमय दर' कहते है। वह बाजार जिसमें राष्ट्रीय मुद्राओं का एक–दूसरे से व्यापार होता है, उसे विदेशी विनिमय बाजार कहते हैं। इस बाजार के मुख्य प्रतिभागी व्यावसायिक बैंक, विदेशी विनिमय दलाल एवं अन्य अधिकाशत डीलर और मुद्रा प्राधिकारी होते हैं। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि प्रतिभागियों के अपने व्यापारिक केंद्र हो सकते हैं, फिर भी यह बाजार अपने आप में विश्वव्यापी होता है। यहाँ व्यापारिक केंद्रों के बीच निकट और निरंतर संपर्क बना रहता है और प्रतिभागी एक से अधिक बाजार में व्यापार करते हैं।

6.2.1. विदेशी विनिमय दर

विदेशी विनिमय दर (जिसे फोटेक्स दर भी कहते हैं) एक मुद्रा की दूसरी मुद्रा में कीमत है। यह विभिन्न देशों की मुद्राओं के बीच कड़ी है और अंतर्राष्ट्रीय लागतों और कीमतों की तुलना करने में सहायक है। उदाहरण के लिए यदि हमें एक डॉलर के लिये रुपये 50 देने पड़ते हैं तो विनिमय की दर रुपये 50 प्रति डॉलर होगी।

इसे और सरल बनाने के लिये, मान लीजिए कि विश्व में दो ही देश यू.एस.ए. और भारत हैं तो एक ही विनिमय की दर निर्धारण की आवश्यकता होगी।

विदेशी विनिमय की माँग

लोग विदेशी मुद्रा की माँग करते हैं क्योंकि वे अन्य देशों से वस्तुएँ और सेवाएँ खरीदना चाहते हैं, वे विदेशों को उपहार भेजना चाहते हैं और वे किसी देश की वित्तीय परिसंपत्तियों को खरीदना चाहते हैं। विनिमय दर में वृद्धि करेगी (रुपयों के रूप में) इससे आयातों की माँग में कमी होती है और फलस्वरूप विदेशी विनिमय की माँग भी कम हो जायेगी यदि अन्य बातें समान रहें।

© NCERT not to be republished

विदेशी विनिमय की पूर्ति

किसी स्वदेश में, विदेशी मुद्रा का प्रवाह निम्न कारणोंवश होता है– एक देश के निर्यातों से, विदेशियों द्वारा घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की खरीद में वृद्धि करते हैं; विदेशी उपहार भेजते हैं तथा विदेशियों द्वारा स्वदेश की परिसंपत्तियाँ खरीदी जाती हैं।

विदेशी विनिमय की कीमत में वृद्धि, विदेशियों की लागतों (USD के रूप में) को कम कर देती है, अन्य बातें समान रहने पर। इससे भारत के निर्यात बढ़ जाते हैं और इसलिए विदेशी विनिमय की पूति बढ़ सकती है (क्या वह वास्तव में बढ़ता है? यह कितने ही कारकों पर निर्भर करता है, विशेषतया नियार्तों तथा आयातों की माँग की लोच)।

6.2.2 विनिमय दर का निर्धारण

अलग–अलग देशों की, अपनी मुद्रा विनिमय दर का निर्धारण करने की अलग अलग प्रणालियाँ हैं। इसको तिरती विनिमय दर स्थिर विनिमय दर अथवा प्रबंधित तिरती विनिमय दर के द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

तिरती विनिमय दर

यह विनिमय दर, बाजार माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। इसे तिरती विनिमय दर भी कहते हैं। जैसा कि चित्र 6.1 में दिखाया गया है। विनिमय दर वहाँ निर्धारित होती है जहाँ माँग वक्र, पूर्ति वक्र को काटती है अर्थात् Y अक्षक e बिंदु पर। X अक्ष पर q, यू.एस. डॉलरों की विनिमय दर पर माँगी जाने वाली माँग और पूर्ति को दिखाता है। पूर्णतया तिरती प्रणाली में, केंद्रीय बैंक विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप नहीं करती।

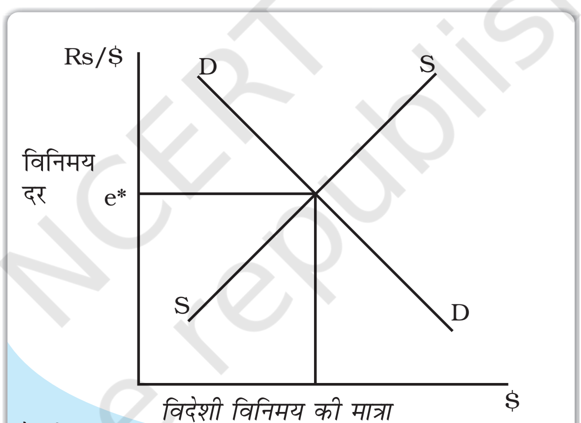

रेखाचित्र 6.1

तिरती विनिमय दर के अंतर्गत संतुलन

मान लीजिये कि विदेशी वस्तुओं और सेवाओं की माँग बढ़ जाती है (उदाहरणार्थ, भारतीयों द्वारा विदेशों में अधिक यात्रा करने के कारण) तो जैसा चित्र 6.2 में दिखाया गया है, माँग वक्र मूल माँग वक्र के सीधी ओर ऊपर की तरफ शिफ्ट कर जाता है। विदेशी वस्तुओं और सेवाओं की माँग में वृद्धि विनिमय की दर में बदलाव लाती है। प्रारंभिक विनिमय दर $e_0 = 50$ जिसका अर्थ है कि हमें रुपये 50 को एक डॉलर से विनिमय करता है। नये संतुलन दर विनिमय दर e_i=70 रुपये हो जाती है। जिसका अर्थ है कि हमें अब डॉलर के लिये और अधिक रुपये देने

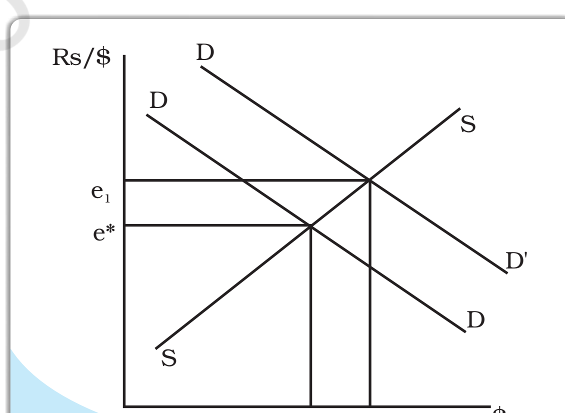

रेखाचित्र. 6.2

विदेशी मुद्रा बाज़ार में आयात की माँग में वृद्धि के प्रभाव

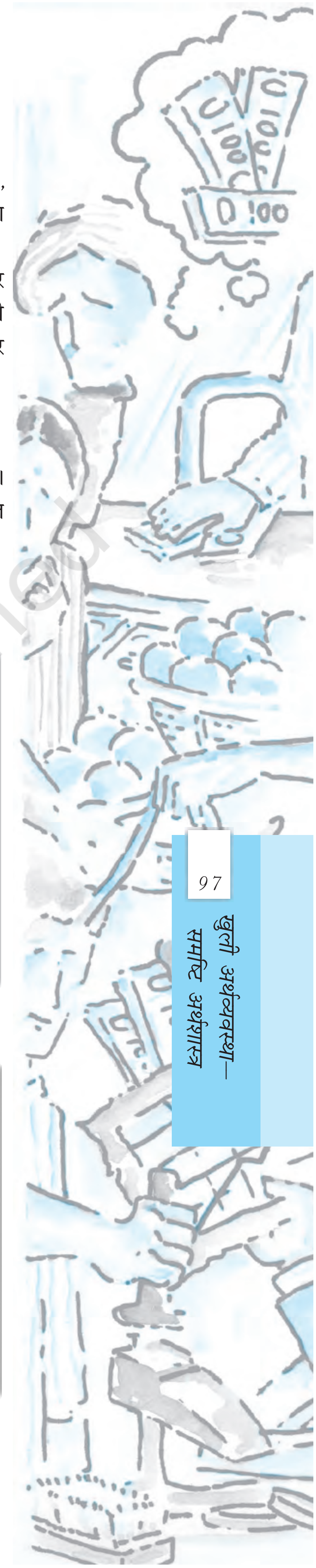

© NCERT not to be republished

होंगे (अर्थात् 70 रुपये) इससे यह इंगित होता है कि डॉलर के संदर्भ में रुपये का मूल्य गिर गया है और रुपये के संदर्भ में डॉलर का मूल्य बढ़ गया है। विनिमय दर में वृद्धि का तात्पर्य है कि विदेशी मुद्रा डॉलर की कीमत, घरेलू मुद्रा (रुपयों) के रूप में बढ़ गई है। इसे घरेलू मुद्रा (रुपयों) का विदेशी मुद्रा (डालरों) के रूप में ह्रास कहते हैं।

इसी भांति, तिरती विनिमय दर व्यवस्था के अंतर्गत, जब घरेलू मुद्रा (रुपयों) की कीमत, विदेशी मुद्रा (डॉलरों) के रूप में बढ़ जाती है तो इसे घरेलू मुद्रा (रुपयों) की, विदेशी मुद्रा (डॉलरों) के रुप में 'मूल्य वृद्धि' कहते हैं।

सट्टेबाज़ी: बाज़ार में विनिमय दर केवल निर्यात और आयात की माँग एवं पूर्ति तथा परिसंपत्तियों में निवेश पर ही निर्भर नहीं करती है बल्कि विदेशी विनिमय के सट्टे पर भी निर्भर करती है, जहाँ विदेशी विनिमय की माँग मुद्रा की मूल्य वृद्धि से प्राप्त संभावित लाभ के लिए की जाती है। किसी भी देश की मुद्रा एक प्रकार की परिसंपत्ति है। यदि भारतीयों को यह विश्वास हो कि ब्रिटिश पौंड के मूल्य में रुपये की अपेक्षा वृद्धि होने की संभावना है, तो वे पौंड को अपने पास रखना चाहेंगे। उदाहरण के लिए, यदि चालू विनिमय दर 80 रुपये प्रति पौंड है और निवेशकर्ताओं को यह विश्वास है कि माह के अंत तक पौंड के मूल्य में वृद्धि होने की संभावना है तथा यह 85 रु॰ प्रति पौंड तक हो सकता है, तो निवेशकर्ता यह सोचेंगे कि यदि वह 80,000 रुपये विक्रेता को दिये होते 1000 पौंड खरीदेगा तो माह के अंत में वह उसे 85,000 रु॰ में बेचकर 5,000 रु॰ का लाभ अर्जित कर लेगा। इस परिकल्पना से पौंड की माँग बढ़ेगी और इससे रुपया पौंड विनिमय दर में वर्तमान में वृद्धि होगी, जिससे उसके विश्वास की स्वतः पूर्ति हो जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण में यह मान लिया जाता है कि ब्याज की दर, आय और कीमत स्थिर रहती है। किंतु इनमें परिवर्तन हो सकता है और इससे विदेशी विनिमय के माँग और पूर्ति वक्र शिफ्ट होंगे।

ब्याज की दरें और विनिमय दर: अल्पकाल में विनिमय दर के निर्धारण में एक दूसरा कारक भी महत्त्वपूर्ण होता है, जिसे *ब्याज* दर *विभेदक* कहते हैं। अर्थात देशों के बीच ब्याज की दरों में अंतर है। बैंक, बहुराष्ट्रीय निगम और धनी व्यक्ति, विशाल निधि के स्वामी होते हैं जिसका अधिक आय प्राप्त करने के लिए ऊँची ब्याज दर की खोज में पूरे विश्व में संचलन होता है। यदि हम कल्पना करें कि एक देश A में सरकारी बंधपत्र पर ब्याज की दर 8 प्रतिशत है जबकि उसी के समान सुरक्षित बंधपत्र पर दूसरे देश B में 10 प्रतिशत की आय होती है, तो ब्याज दर विभेदक 2 प्रतिशत होगा। देश A का निवेशकर्त्ता देश B की उच्च ब्याज दर की ओर आकर्षित होंगे और अपने देश की मुद्रा को बेचकर देश B की मुद्रा का क्रय करेंगे। इस स्थिति में, देश B के निवेशकर्ता भी अपने देश में निवेश करना चाहेंगे और इस प्रकार देश A की करेंसी की कम माँग करेंगे। इसका अर्थ यह है कि देश A की करेंसी का माँग वक्र बायीं ओर तथा पूर्ति वक्र दायीं ओर शिफ्ट होगा। इससे देश A की मुद्रा के मूल्य में ह्रास तथा देश B की मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होगी। अतः किसी देश की आंतरिक ब्याज दर में वृद्धि से घरेलू मुद्रा के मूल्य में वृद्धि होगी। यहाँ यह मान लिया जाता है कि विदेशों की सरकारों के द्वारा बंधपत्रों के क्रय पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

आय और विनिमय दर: जब आय में वृद्धि होती है, तो उपभोक्ता के व्यय में भी वृद्धि होती है तथा आयातित वस्तुओं पर व्यय में भी वृद्धि की संभावना होती है। जब आयात बढ़ता है तो विदेशी विनिमय की माँग वक्र दायीं ओर शिफ्ट होती है। इससे घरेलू मुद्रा के मूल्य में ह्रास होता है। यदि विदेशी आय में भी वृद्धि होती है, तो घरेलू निर्यात में वृद्धि होगी जिससे विदेशी विनिमय का पूर्ति वक्र बाहर की ओर शिफ्ट होगा। संतुलन की स्थिति में घरेलू मुद्रा का मूल्य ह्रास हो

भी सकता है और नहीं भी। यह सब इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या निर्यात आयात से अधिक तेज़ी से बढ़ रहे हैं। आमतौर पर, अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर एक देश जिसकी समस्त माँग शेष विश्व की तुलना में अधिक तेज़ी से बढ़ रही है, प्राय: उसकी मुद्रा के मूल्य में, निर्यात से आयात में अधिक वृद्धि के कारण ह्रास होता है। इसके विदेशी मुद्रा का माँग वक्र पूर्ति वक्र से अधिक तेज़ी से शिफ्ट होती है।

दीर्घकाल में विनिमय दर: दीर्घकाल में नम्य विनिमय दर प्रणाली में विनिमय दर के संबंध में पूर्वानुमान करने के लिए क्रय-शक्ति समता सिद्धांत का उपयोग किया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई व्यापारिक अवरोधक जैसे- टैरिफ (व्यापारिक कर) और कोटा (आयात की मात्रा की सीमा) नहीं होंगे, तो विनिमय दर स्वत: समायोजित हो जाएगी। इससे एक प्रकार के उत्पाद की लागत, चाहे भारत में रुपयों में या संयुक्त राज्य अमेरिका में डॉलर में अथवा जापान में येन में क्यों न हो, समान ही होगी। सिर्फ परिवहन व्यय में अंतर होगा। अत: दीर्घकाल में किन्हीं दो देशों की करेंसियों के बीच विनिमय दर के समायोजन से दोनों देशों के कीमत स्तर के अंतर का पता चलता है।

उदाहरण 6.1

यदि एक कमीज़ की लागत अमेरिका में 8 डॉलर और भारत में 400 रु॰ है, तो रुपया-डॉलर की विनिमय दर 50 रु॰ होगी। अब 50 रु॰ से अधिक किसी भी दर को देखने के लिए हम 60 रु॰ लेते हैं, इसका अर्थ यह है कि अमेरिका में एक कमीज़ की लागत 480 रु॰ और भारत में केवल 400 रु॰ है, तो ऐसी स्थिति में सभी विदेशी उपभोक्ता भारत से कमीज़ खरीदेंगे। इसी प्रकार, प्रति डॉलर 50 रु॰ से कम किसी भी विनिमय दर पर कमीज़ों का समस्त व्यापार अमेरिका के पास चला जाएगा। अब हम कल्पना करते हैं कि भारत में कीमत में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है, जबकि अमेरिका में 50 प्रतिशत की वृद्धि होती है। अब भारत में एक कमीज़ की लागत 480 रु॰ जबकि अमेरिका में 12 डॉलर होगी। इन दोनों कीमतों में समानता तभी होगी, जब 12 डॉलर का मूल्य 480 रु॰ अथवा एक डॉलर का मूल्य 40 रु॰ होगा। अत: डॉलर के मूल्य में ह्रास हुआ। क्रय-शक्ति समता सिद्धांत के अनुसार घरेलू स्फीति और विदेशी स्फीति के बीच अंतर ही विनिमय दर के समायोजन का प्रमुख कारण है। यदि एक देश में दूसरे देश की अपेक्षा स्फीति की दर अधिक है, तो इसकी विनिमय दर का ह्रास होगा।

स्थिर विनिमय दरें

इस विनिमय दर प्रणाली में, सरकार विनिमय दर का एक स्तर विशेष दर पर निर्धारित कर देती है। चित्र 6.3 में बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर 'e' है। फिर भी मान लीजिये कि भारत सरकार किसी कारणवश निर्यातों को बढ़ाना चाहती है, इसके लिये इसे विदेशियों के लिये रुपये को सस्ता करना होगा। वह ऐसा विनिमय दर रुपये 50 प्रति डॉलर की वर्तमान दर से ऊंची विनिमय दर (जैसे रुपये 70 प्रति डॉलर) तय करके कर सकती है। इस विनिमय दर पर डॉलरों की पूर्ति, इनकी माँग से

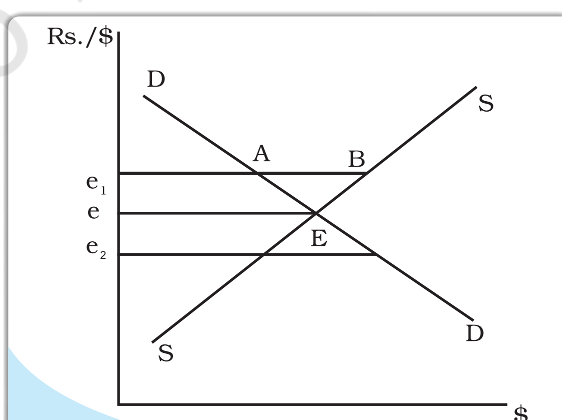

रेखाचित्र 6.3

स्थिर विनिमय दर के साथ विदेशी विनिमय बाज़ार

© NCERT not to be republished

अधिक हो जायेगी। इस अतिरिक्त पूर्ति को जिसे चित्र में AB द्वारा दिखाया गया है, रिजर्व बैंक डॉलरों को रुपयों के बदले बेचकर बाजार में हस्तक्षेप करती है। इस प्रकार, हस्तक्षेप द्वारा सरकार अर्थव्यवस्था में किसी भी विनिमय दर को बनाये रख सकती है। अत: हस्तक्षेप द्वारा, सरकार अर्थव्यस्था में किसी भी विनिमय दर को बनाये रख सकती है। लेकिन जब तक हस्तक्षेप चलेगा, यह ज्यादा और ज्यादा विदेशी विनिमय एकत्रित कर लेगी। दूसरी तरफ यदि सरकार ऐसे स्तर पर विनिमय दर को निर्धारित करती है जैसे e_2, विदेशी विनिमय बाज़ार में डॉलर के अधिक माँग होगी। डॉलरों की इस अधिक माँग को पूरा करने के लिये, सरकार को डॉलरों की पहले से ही एकत्रित स्टॉक से डॉलर निकालने पड़ेगें। यदि यह ऐसा करने में असफल रहती है तो डॉलरों के लिये काला बाज़ार पैदा हो जायेगा।

स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत, जब किसी सरकारी कार्यवाही द्वारा विनिमय दर बढ़ती है (इस प्रकार घरेलू मुद्रा को सस्ता करो) तो इसे 'अवमूल्यन' कहते हैं। दूसरी तरफ, मुद्रा का 'पुर्नमूल्यन' होता है, जब स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अर्न्तगत, सरकार विनिमय दर का घटा देती है।

6.2.3 तिरती और स्थिर विनिमय दर प्रणालियों के गुण और दोष

स्थिर विनिमय दर प्रणाली का मुख्य लक्षण यह विश्वसनीयता है कि सरकार एक निश्चित स्तर पर विनिमय की दर को बनाये रखने में सक्षम होगी। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत बहुध BOP में अधिक्य अथवा घाटा होता है। सरकारी आरक्षित कोषों का उपयोग कर, सरकारें इस लोप को पूरा करने के लिये हस्तक्षेप करती हैं। यदि लोगों को यह पता चल जाये कि सरकार के पास आरक्षित कोष कम हैं तो वे सरकार की स्थिर दरों को बनाये रखने की क्षमता पर संदेह करने लगते हैं। इससे अवमूल्यन का अनुमान बढ़ेगा। जब यह विश्वास, किसी मुद्रा को आक्रामक खरीद में बदल जाता है और सरकार को मुद्रा के अवमूल्यन के लिये बाध्य कर देता है, तो इस मुद्रा पर अनुमानित आक्रमण कहते हैं।

स्थिर विनिमय दरें, इस प्रकार के आक्रमणों के **उन्मुक्त** होती हैं जैसा कि ब्रेटन वुड्स प्रणाली के पतन से पूर्व में देखा गया। स्थिर विनिमय दर प्रणाली, सरकार को अधिक नम्यता प्रदान करती है और उन्हें विदेशी मुद्रा के विशाल कोषों का स्टॉक नहीं रखना पड़ता। तिरती विनिमय दर प्रणाली का एक बड़ा लाभ यह है कि विनिमय दरों में परिवर्तन, BOP के अधिक्य और घाटे की स्वत: देखभाल कर लेते हैं। इसके अलावा भी, देश अपनी मौद्रिक नीतियों के संचालन में स्वतंत्र रहते हैं क्योंकि उन्हें विनिमय दर को बनाये रखने के लिये किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि इनकी देखभाल कर लेता है।

6.2.4 प्रबंधित तिरती

किसी औपचारिक अंतर्राष्ट्रीय समझौते के बिना विश्व में उत्तम विनिमय प्रणाली का उदय हुआ, जिसे उत्तम रूप में प्रबंधित तिरती विनिमय दर प्रणाली कहा जा सकता है। यह नम्य विनिमय दर प्रणाली (तरितभाग) और स्थिर दर प्रणाली (प्रबंधित भाग) का मिश्रण है। *त्रुटिबहुल तिरती* नाम की इस प्रणाली में केंद्रीय बैंक विनिमय दर को उदार बनाने के लिए जब कभी ऐसे कार्य को समुचित समझता है, तब विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय करके हस्तक्षेप करता है। अत: अधिकृत सुरक्षित संव्यवहार शून्य के समान नहीं होता है।

© NCERT
not to be republished

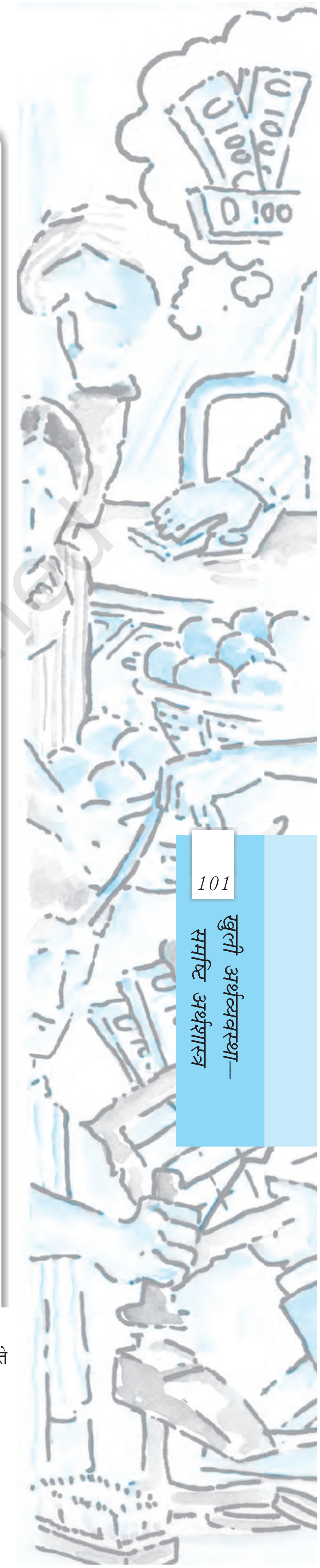

बॉक्स 6.2 विनिमय दर प्रबंधः अंतर्राष्ट्रीय अनुभव

स्वर्णमानः लगभग 1870 से 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के आरंभ होने तक स्वर्णमान ही प्रचलित था, जो कि स्थिर विनिमय दर प्रणाली का सार-तत्व ही था। सभी करेंसियाँ सोने के रूप में परिभाषित की जाती थी। वास्तव में, कुछ तो सोने की ही बनी थी। प्रत्येक सहभागी देश एक निश्चित कीमत पर अपनी मुद्रा को मुक्त रूप से परिवर्तनीयता की गारंटी देने के लिए प्रतिबद्ध था। इसका अर्थ यह था कि प्रत्येक देश के निवासी अपने देश की घरेलू मुद्रा का दूसरी परिसंपत्ति (सोना) के रूप में एक निश्चित कीमत पर मुक्त रूप से परिवर्तन कर सकते थे और सोना अंतर्राष्ट्रीय अदायगी के रूप में स्वीकार्य था। इससे यह भी संभव हुआ कि एक निश्चित कीमत पर प्रत्येक देश की मुद्रा दूसरी किसी भी मुद्रा के रूप में परिवर्तन योग्य बन गई। विनिमय दरों का निर्धारण सोना के रूप में उस मुद्रा के मूल्य के द्वारा होता था (जहाँ सोने की ही मुद्रा होती थी, वहाँ उसकी वास्तविक सोने की मात्रा होती थी)। उदाहरण के लिए, मुद्रा A की एक इकाई का मूल्य एक ग्राम सोना था और मुद्रा B का मूल्य मुद्रा A के मूल्य का दुगुना होता था। आर्थिक एजेंट प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा B की एक इकाई को मुद्रा A की 2 इकाई के रूप में बदल सकता था। इसके लिए उन्हें पहले सोना खरीदने और उसे बेचने की आवश्यकता नहीं होती थी। दरों में एक ऊपरी सीमा और निचली सीमा के बीच उतार-चढ़ाव होता रहता था। इन सीमाओं का निर्धारण दोनों करेंसियों के निर्माण में आयी लागत के अंतर के द्वारा होता था जिनमें उनके द्रवण, प्रेषण और सिक्के की ढलाई की लागत शामिल थी। अधिकृत समता को बनाए रखने के लिए प्रत्येक देश[3] को सोने के पर्याप्त स्टॉक सुरक्षित रखने की आवश्यकता होती थी। स्वर्णमान की स्थिति में सारे देशों की विनिमय दर स्थायी थी।

अब प्रश्न यह उठता है कि अत्यधिक आयात करने पर क्या कोई अपने सोने के सारे स्टॉक को समाप्त नहीं कर देगा (अदायगी-संतुलन में घाटा होने पर)? वणिकवादीय[4] व्याख्या इस प्रकार थी कि जब तक राज्य टैरिफ, कोटा अथवा निर्यात पर उपदान के रूप में हस्तक्षेप नहीं करेगा, तब तक वह देश अपने सोने को समाप्त कर देगा और वह अत्यंत बुरी दुर्घटना को प्राप्त होगा। डेविड ह्यूम एक ख्याति प्राप्त दार्शनिक थे, जिन्होंने 1752 में इस मत का खंडन किया और बतलाया कि यदि सोने के भंडार में कमी हुई, तो सभी प्रकार की कीमतें और लागत भी अनुपातिक रूप से गिरेगी और इससे देश में किसी को भी बुरी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा। घरेलू वस्तुएँ सस्ती हो जाने से आयात घटेगा और निर्यात बढ़ेगा (यह वास्तविक विनिमय दर है, जिससे प्रतिस्पर्धा का निर्धारण होगा)। जिस देश से हम आयात कर रहे थे और सोने में उसको भुगतान कर रहे थे, उसको कीमतों और लागतों में वृद्धि का सामना करना पड़ेगा। अतः उनका महँगा निर्यात घटेगा और पहले वाले देश से सस्ती वस्तुओं का आयात बढ़ेगा। इस धातुवाह कीमत तंत्र (अठारहवीं शताब्दी में कीमती धातुओं को सोना-चाँदी भी कहते थे) का परिणाम आमतौर पर सोने की क्षति उठाकर अदायगी-संतुलन में सुधार लाना होता है और सापेक्षिक कीमत पर जब तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में साम्य की पुनर्स्थापना नहीं होती, तब तक प्रतिकूल व्यापार संतुलन वाले देश के अदायगी-संतुलन को अनुकूल व्यापार संतुलन वाले देश के अदायगी-संतुलन को समकक्ष लाता है। इस संतुलन से आगे शुद्ध सोने का प्रवाह नहीं होता है और आयात निर्यात संतुलन बना रहता है। बिना किसी टैरिफ और राज्य की कार्रवाई की आवश्यकता के, स्थायी तथा स्वयं सुधार संतुलन बना रहता है। इस प्रकार स्वचालित साम्य तंत्र के माध्यम से स्थिर विनिमय दर को कायम रखा जाता था।

[3] अगर दर में अंतर उन लेन-देन की लागतों से अधिक हो, तो लाभ मनमाने तरीके से हो सकता है- करेंसी को सस्ते दर पर क्रय करने तथा सहज ढंग से बेचने की प्रक्रिया में।

[4] वणिकवादी विचारधारा का जुड़ाव 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ हुआ।

© NCERT not to be republished

स्वर्णमान को समय-समय पर कई संकटों का सामना करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप इसका विखंडन हो गया। इसके अतिरिक्त, विश्व में कीमत का स्तर सोने की खोज के वरदान पर निर्भर करता था। इसकी व्याख्या मुद्रा के अशोधित परिमाण सिद्धांत $M = kPY$ के आधार पर की जा सकती है। इस सिद्धांत के अनुसार, यदि उत्पादन (सकल घरेलू उत्पाद) में हर वर्ष 4 प्रतिशत की दर से वृद्धि होती है, तो कीमत को स्थिर बनाए रखने के लिए हर वर्ष सोने की पूर्ति में 4 प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक होगी। खादानों से इतनी मात्रा में सोने का उत्पादन नहीं होने से 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूरे विश्व में कीमत स्तर में गिरावट आयी, जिससे समाज में असंतोष की भावना बढ़ गई। एक समय सोने के अनुरूपक के रूप में चाँदी का प्रयोग शुरू हुआ। इसे 'द्विधातुमान' कहा गया। सोने के व्यय को कम करने के लिए *खंड सुरक्षित बैंकिंग* से भी मदद मिली। कागज़ी मुद्रा को सोने का पूर्णतः समर्थन नहीं था। कुछ विशिष्ट देशों में ही एक चौथाई सोना कागज़ी मुद्रा के बदले रखा जाता था। सोने की खपत को कम करने की दूसरी पद्धति *स्वर्ण विनिमय मान* को कई देशों में स्वीकार किया गया। इस पद्धति में सोने के सापेक्ष स्थिर कीमत पर मुद्रा का विनिमय किया जाता है, लेकिन उसके लिए सोने की थोड़ी मात्रा अथवा कुछ भी मात्रा नहीं रखी जाती। सोने के बदले वे किसी बड़े देश (संयुक्त राज्य अथवा ब्रिटेन) की मुद्रा रखते थे, जो स्वर्णमान पर आधारित था। इनसे और क्लोंडिक तथा दक्षिण अफ्रीका में सोने की खोज से 1929 तक अवस्फीति को दूर रखने में मदद मिली। कुछ आर्थिक इतिहासकार इस तरलता की कमी के लिए महामंदी को उत्तरदायी मानते हैं। 1914-45 के मध्य किसी भी प्रकार की सार्वभौमिक प्रणाली नहीं रही, लेकिन इस अवधि में स्वर्णमान की ओर झुकाव और नम्य विनिमय दर दोनों का चलन रहा।

ब्रेटन वुड्स प्रणाली: 1944 में ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) और विश्व बैंक की स्थापना हुई तथा स्थिर विनिमय दर प्रणाली की भी पुनर्स्थापना की गई। परिसंपत्तियों के चयन के रूप में यह अंतर्राष्ट्रीय स्वर्णमान से भिन्न था, जिसमें राष्ट्रीय करेंसी को परिवर्तनीय बनाया गया। करेंसियों की परिवर्तनीयता की द्विस्तरीय प्रणाली की स्थापना की गई, जिसके केंद्र में डॉलर को रखा गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के मौद्रिक प्राधिकरणों के द्वारा 35 डॉलर प्रति आउंस सोना की निश्चित दर पर डॉलर के सोने में परिवर्तनीयता की गारंटी प्रदान की गई। इस प्रणाली के दूसरे स्तर में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रत्येक सदस्य देशों की मुद्रा प्राधिकरण के प्रति प्रतिबद्धता थी, जिसके अंतर्गत वे अपनी मुद्रा को एक निश्चित दर पर डॉलर में परिवर्तन करना चाहते थे। इस दूसरे स्तर को अधिकृत विनिमय दर कहा गया। उदाहरण के लिए, यदि फ्रांस की मुद्रा फ्रंक का 5 फ्रंक प्रति डॉलर के रूप में विनिमय किया जा सकता था और 35 डॉलर प्रति आउंस की दर से सोने का विनिमय डॉलर के रूप में किया जा सकता था, तो इस प्रकार फ्रंक का मूल्य 175 फ्रंक प्रति आउंस सोने की दर पर निर्धारित किया जाता था (5 फ्रंक प्रति डॉलर गुणा 35 डॉलर प्रति आउंस)।

विनिमय दर में परिवर्तन की अनुमति केवल देश के अदायगी-संतुलन में आधारभूत असंतुलन की स्थिति में ही दी जाती थी, जिसका अभिप्राय अदायगी-संतुलन में पर्याप्त अनुपात में चिरकालिक घाटे से है। ऐसी विस्तृत परिवर्तनीय पद्धति की आवश्यकता थी, क्योंकि विभिन्न देशों में सोने का आरक्षित भंडार एक समान नहीं था। अधिकृत सोने के आरक्षित भंडार का 70 प्रतिशत केवल संयुक्त राज्य अमेरिका के पास था। अतः अन्य करेंसियों की विश्वसनीय परिवर्तनीयता के लिए सोने के भंडार के पुनर्वितरण की आवश्यकता होती। इसके अतिरिक्त, यह विश्वास किया जाता था कि अंतर्राष्ट्रीय तरलता की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए विद्यमान स्वर्ण भंडार अपर्याप्त था। स्वर्ण भंडार की रक्षा की एक विधि द्वि-स्तरीय परिवर्तन पद्धति थी, जिसमें प्रधान मुद्रा का परिवर्तन सोना में और अन्य करेंसियों का परिवर्तन प्रधान मुद्रा के रूप में होता था।

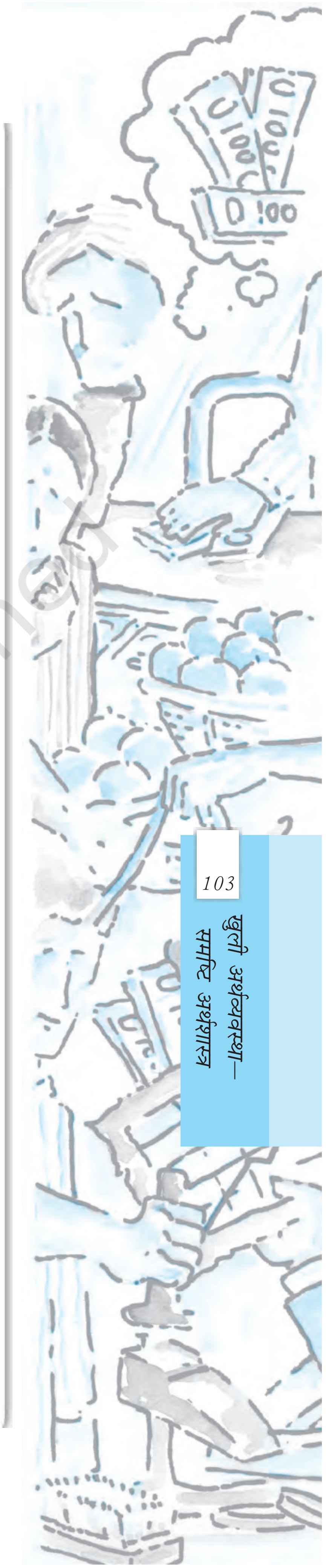

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् युद्ध से विनष्ट देशों के पुनर्निमाण के लिए अत्यधिक संसाधन की आवश्यकता थी। आयात में वृद्धि हुई और घाटे के वित्त पोषण के लिए आरक्षित निधि का उपयोग किया गया। ऐसे देशों में उस समय संयुक्त राज्य की करेंसी डॉलर का उपयोग शेष विश्व के देशों में आरक्षित निधि के रूप में होता था। संयुक्त राज्य में लगातार अदायगी-संतुलन घाटे के परिणामस्वरूप उस आरक्षित निधि में वृद्धि हुई (अन्य देश अपनी मुद्रा और डॉलर के बीच परिवर्तनीयता को बनाए रखने की अपनी प्रतिबद्धता के कारण आरक्षित धन के रूप में डॉलर का संग्रह करना चाहते थे)।

अब समस्या यह थी कि यदि संयुक्त राज्य की अल्पकालिक डॉलर देयता में स्वर्ण भंडार के सापेक्ष वृद्धि निरंतर जारी रहती, तो उसकी स्थिर कीमत पर डॉलर के सोने में परिवर्तन की प्रतिबद्धता की विश्वसनीयता के प्रति विश्वास नहीं रह जाता। इस प्रकार, केंद्रीय बैंक के पास वर्तमान डॉलर के प्रतिधारित को सोने में परिवर्तन करने के लिए प्रचुर प्रोत्साहन होता और उससे संयुक्त राज्य को अपनी प्रतिबद्धता का परित्याग करने को बाध्य होना पड़ता। इसे ब्रेटन वुड्स पद्धति के मुख्य आलोचक राबर्ट ट्रिफिन के नाम से ट्रिफिन दुविधा कहा जाता है। ट्रिफिन ने सलाह दी कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को केंद्रीय बैंकों के 'जमा बैंकों' में बदल देना चाहिए और नई 'आरक्षित परिसंपत्ति' का सृजन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के नियंत्रण में करना चाहिए। 1967 में विशेष आहरण अधिकार (SDRs) के सृजन से सोना विस्थापित हो गया। अंतर्राष्ट्रीय आरक्षित स्टॉक में वृद्धि करने के आशय से विशेष आहरण अधिकार (SDRs) को अंतर्राष्ट्रीय करेंसी के रूप में, 'कागज़ी स्वर्ण' के रूप में भी जाना जाता है। सोने के रूप में परिभाषा में 35 (SDRs) को एक आउंस सोना (ब्रेटन वुड्स पद्धति की डॉलर-सोना की दर) के समान माना गया। 1974 से इसे कई बार पुनर्परिभाषित किया गया है। वर्तमान में प्रतिदिन इसकी गणना पाँच देशों (फ्रांस, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन और अमेरिका) की चार करेंसियों (यूरो, डॉलर, जापानी येन, पौंड, स्टर्लिंग) के डॉलर में मूल्य के भारित योग के रूप में होती है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों के द्वारा आरक्षित मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय करेंसियों के विनिमय के लिए केंद्रीय बैंकों के मध्य भुगतान के साधन के रूप में इसका प्रयोग किए जाने से, इसे शक्ति प्राप्त होती है। विशेष आहरण अधिकार की मूल्य किस्त का वितरण सदस्य देशों के बीच निधि (कोटा का संबंध देश के आर्थिक महत्त्व से संबंधित था, जिसका संकेत उसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मूल्य से मिलता था) में उनके कोटे के अनुसार किया जाता था। यू.एस.ए. ने यह घोषणा कर दी कि वह अब आगे डॉलरों को 35$ प्रति औंस पर परिवर्तन नहीं करेगा।

ब्रेटन वुड्स पद्धति के विखंडन के पहले अनेक घटनाएँ हुईं, जैसे-1967 में पौंड का अवमूल्यन, 1968 में डॉलर से सोने की ओर पलायन से द्वि-स्तरीय स्वर्ण बाज़ार (अधिकृत दर 35 डॉलर प्रति आउंस सोना थी और निजी दर का निर्धारण बाज़ार द्वारा होता था) का सृजन और अंत में अगस्त 1971 में ब्रिटेन ने माँग की कि अमेरिका अपने डॉलर की धारित निधि के स्वर्ण मूल्य की गारंटी दे। इससे अमेरिका ने डॉलर और सोने के बीच के संबंध का परित्याग करने का निर्णय लिया।

1971 में 'स्मिथसोनियन समझौते' से विनिमय दर में नई केंद्रीय दर से 2.5 प्रतिशत ऊपर या नीचे तक के संचलन की अनुमेय बैंड को विस्तार मिला। इससे यह आशा की गई कि घाटे वाले देशों पर दबाव कम होगा। यह केवल 14 वर्षों तक चला। विकसित बाज़ार अर्थव्यवस्था जिसका नेतृत्व यूनाइटेड किंगडम और बाद में स्विटजरलैंड और फिर जापान ने किया, में तिरती विनिमय दरों को 1970 के दशक में स्वीकार करना आरंभ हुआ। 1976 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुच्छेदों की पुनरावृत्ति से देशों को अपने करेंसियों की तिरती रखने अथवा उन्हें अधिकीलित करने की अनुमति मिली (एकल करेंसियों का समूह अथवा SDR अधिकीलित दर)। अधिकीलित दरों के लिए कोई नियम नहीं है और वस्तुत: तिरती दर और विनिमय दरों के पर्यवेक्षण के लिए भी कोई नियम नहीं है।

© NCERT not to be republished

वर्तमान परिदृश्य: वर्तमान में अनेक देशों में स्थिर विनिमय दर हैं। कुछ देश अपनी करेंसियों को डॉलर में अधिकीलित करते हैं। जनवरी, 1999 में यूरोपीय मौद्रिक संघ के सृजन से संघ के सदस्यों की करेंसियों के बीच विनिमय दर स्थायी रूप से निर्धारित हुई और एक नई समान मुद्रा यूरो को जारी किया गया। इसे यूरोपीय केंद्रीय बैंक के प्रबंध में जारी किया गया। जनवरी, 2002 से वास्तविक नोट और सिक्के चलाये गये। अब तक 25 में 12 यूरोपीय संघ के सदस्यों ने यूरो को अपनाया है। कुछ देशों ने अपनी मुद्रा को फ्रांस के फ्रंक में अधिकीलित किया है, इनमें प्राय: अफ्रीका की फ्रांसीसी कॉलोनियाँ हैं। अन्य देशों ने करेंसियों के समूह में अधिकीलित किया है, जिसमें उनके व्यापार की रचना प्रतिबिंबित होती है। प्राय: छोटे देश भी एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक सहभागी के सापेक्ष अपनी विनिमय दर निर्धारित करने का निर्णय लेते हैं। उदाहरण के लिए-अर्जेंटीना ने 1991 में मुद्रा बोर्ड प्रणाली अपनायी। इसके तहत स्थानीय मुद्रा (पेसो) और डॉलर के बीच कानून द्वारा विनिमय दर तय किया गया। केंद्रीय बैंक अपनी जारी सारी घरेलू मुद्रा और आरक्षित निधि के बदले पर्याप्त विदेशी मुद्रा अपने पास रखता है। ऐसी व्यवस्था में कोई देश अपनी इच्छा से मुद्रा की पूर्ति में विस्तार नहीं कर सकता है। यदि कोई घरेलू बैंकिग संकट (जब बैंक को घरेलू मुद्रा ग्रहण करने की ज़रूरत होती है) होता है, तो केंद्रीय बैंक अंतिम ऋण दाता नहीं बना रह सकता। किंतु, संकट के बाद अर्जेंटीना ने मुद्रा बोर्ड का परित्याग कर दिया और जनवरी, 2002 में अपनी मुद्रा को तिरती रहने दिया।

2000 में इक्वेडोर ने *डॉलरीकरण* की नयी व्यवस्था अपनायी और घरेलू मुद्रा को छोड़कर संयुक्त राज्य के डॉलर को स्वीकार किया। सारी कीमतें डॉलर में रखी गई और स्थानीय मुद्रा में लेन-देन बंद हो गया। यद्यपि अनिश्चितता और जोखिम से बचा जा सकता है, किंतु इक्वेडोर ने अपनी मुद्रा पूर्ति का नियंत्रण संयुक्त राज्य के केंद्रीय बैंक-फेंडरल रिज़र्व को दे दिया है और इस तरह वह संयुक्त राज्य की आर्थिक दशाओं पर आधारित होगा।

समस्त रूप से अब अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बहु-प्रणाली के रूप में चित्रित किया जा सकता है। अधिकांश विनिमय दरों में दिन-प्रतिदिन के आधार पर थोड़ा परिवर्तन होता है और बाज़ार की शक्तियाँ आमतौर पर मूल प्रवृत्ति को निर्धारित करती है। यहाँ तक कि जो भी विनिमय दर में अधिक स्थिरता की वकालत करते थे, वे भी यह प्रस्ताव रखा कि सामान्यत: सरकार को एक निश्चित परास के अंतर्गत दर निर्धारित करनी चाहिए, बजाय इसके शाब्दिक निर्धारण के। सोने की भूमिका का भी विलोपन हो गया है। इसके स्थान पर एक ऐसा निर्बाध बाज़ार, जिसमें सोने की कीमत का निर्धारण सोने की माँग तथा पूर्ति जो मुख्यत: ज्वेलरियों, औद्योगिक उपयोगकर्ताओं, दंत चिकित्सकों, सट्टोरिया तथा साधारण नागरिकों से होती है, जो कि ये मानते हैं कि स्वर्ण एक अच्छा मूल्य संग्रह हैं।

© NCERT not to be republished

सारांश

1. उत्पाद और वित्तीय बाज़ारों में खुलापन से घरेलू और विदेशी वस्तुओं के बीच तथा घरेलू और विदेशी परिसंपत्तियों के बीच चयन की छूट होती है।
2. अदायगी-संतुलन में किसी देश का शेष विश्व के साथ लेन-देन का उल्लेख होता है।
3. चालू लेखा शेष सौदा व्यापार, सेवाओं और शेष विश्व से प्राप्त निवल अंतरण का योग होता है। पूँजीगत लेखा शेष, विश्व में होने वाले पूँजीगत प्रवाह, शेष विश्व को होने वाले प्रवाह के घटाव के बराबर होता है।
4. चालू लेखा के घाटे को विदेशों से प्राप्त निवल पूँजी प्रवाह से वित्त पोषित किया जाता है, जिस प्रकार पूँजी खाता आधिक्य से।
5. मौद्रिक विनिमय दर घरेलू मुद्रा के रूप में विदेशी मुद्रा की एक इकाई की कीमत है।
6. वास्तविक विनिमय दर घरेलू वस्तु के रूप में विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमत है। यह मौद्रिक विनिमय

दर के बराबर होती है, जो कि विदेशी कीमत स्तर में घरेलू कीमत स्तर से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में किसी देश की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का मूल्यांकन होता है। जब वास्तविक विनिमय दर एक के बराबर हो, तो दोनों देशों में क्रय-शक्ति समता होती है।

7. स्थिर विनिमय दर व्यवस्था का सार स्वर्णमान था, जिसमें प्रत्येक सहभागी देश एक निश्चित कीमत पर अपने देश की मुद्रा को स्वतंत्र रूप से स्वर्ण में परिवर्तित करने के लिए प्रतिबद्ध रहता था। अधिकीलित विनिमय दर एक प्रकार की परिवर्तनीय नीति है, जिसमें आधिकारिक कार्यवाही (अवमूल्यन) द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है।
8. स्वच्छ तिरती निधि के अंतर्गत विनिमय दर का निर्धारण बाज़ार द्वारा बिना किसी केंद्रीय बैंक के हस्तक्षेप के होता है। प्रबंधित तिरती की स्थिति में केंद्रीय बैंक विनिमय दर में उतार-चढ़ाव को कम करने के लिए हस्तक्षेप करता है।
9. खुली अर्थव्यवस्था में घरेलू वस्तु की माँग, वस्तु की घरेलू माँग (उपभोग, निवेश, सरकारी खर्च) और निर्यात घटा आयात के योग के बराबर होता है।
10. खुली अर्थव्यवस्था गुणक बंद अर्थव्यवस्था गुणक से छोटा होता है, क्योंकि घरेलू माँग का एक हिस्सा विदेशी वस्तुओं के लिए होता है। अत: स्वायत्त माँग में वृद्धि से बंद अर्थव्यवस्था की तुलना में निर्गत में कम वृद्धि होती है। इससे: व्यापार शेष में भी गिरावट होती है।
11. विदेशी आय में वृद्धि से निर्यात में वृद्धि और घरेलू निर्गत में वृद्धि होती है तथा व्यापार शेष में सुधार होता है।
12. यदि किसी देश में ऋण की गई निधि से ब्याज दर की अपेक्षा विकास दर अधिक होता है, तो व्यापार घाटे से किसी प्रकार के खतरे का संकेत नहीं होता।

मूल संकल्पनाएँ

खुली अर्थव्यवस्था
चालू खातागत घाटा
लेन-देन
मौद्रिक और वास्तविक विनिमय दर
नम्य विनिमय दर
ब्याज दर विभेदक
अवमूल्यन
घरेलू वस्तु की माँग
निवल निर्यात
अदायगी-संतुलन
आधिकारिक आरक्षित
स्वायत्त और समंजन लेन-देन
क्रय-शक्ति समता
मूल्यह्रास
स्थिर विनिमय दर
प्रबंधित तिरती
आयात की सीमांत प्रवृति
खुली अर्थव्यवस्था गुणक

© NCERT not to be republished

बॉक्स 6.3 विनिमय दर प्रबंध: भारतीय अनुभव

भारत की विनिमय दर नीति अंतर्राष्ट्रीय और देशीय विकास के साथ विकसित हुई है। स्वतंत्रता के बाद ब्रेटन वुड्स व्यवस्था की दृष्टि से भारतीय रुपया ब्रिटेन के साथ ऐतिहासिक संबंध के कारण पौंड स्टर्लिंग में अधिकीलित हुआ। जून, 1966 में रुपये का 36.5 प्रतिशत अवमूल्यन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। ब्रेटन वुड्स व्यवस्था के विखंडन और भारत के व्यापार में यूनाइटेड किंगडम के अंश के घटने से सितंबर, 1975 में पौंड स्टर्लिंग से रुपये का संबंध-विच्छेद कर दिया गया। 1975 से लेकर 1992 तक की अवधि के दौरान रुपये की विनिमय दर भारतीय रिज़र्व बैंक के द्वारा निर्धारित

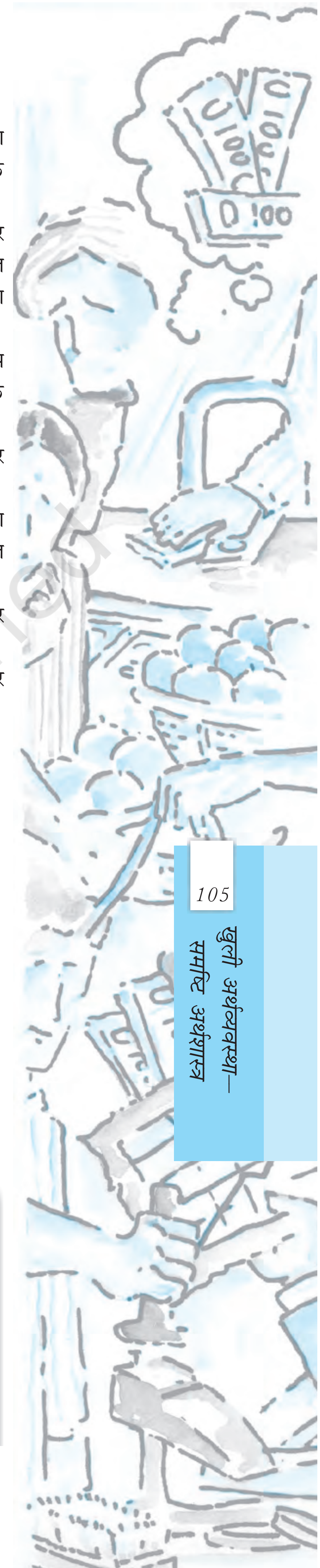

होती थी, जो भारत के प्रधान व्यापारिक हिस्सेदार की मुद्रा के भारित बंडल के +/– 5% नाममात्र के व्यापारिक सहभागियों के अंतर्गत होता था। रिज़र्व बैंक दैनिक आधार पर हस्तक्षेप करता था। जिससे आरक्षित निधि के आकार में व्यापक परिवर्तन होता था। इस अवधि की विनिमय दर व्यवस्था का वर्णन एक पट्टी के साथ नाममात्र अधिकीलित के समायोजन के रूप में किया जा सकता है।

1990 के आरंभ में तेल की कीमत में अत्यधिक वृद्धि हुई और खाड़ी संकट के कारण खाड़ी के क्षेत्र से धन का आना रुक गया। इससे और अन्य देशी और अंतर्राष्ट्रीय विकास से भारत में अदायगी-संतुलन की समस्या गंभीर हो गई। व्यवसायिक बैंकों से उधार लेने की और अल्पकालिक साख की गुंजाइश कम हो जाने के फलस्वरुप चालू लेखागत घाटा के लिए वित्त प्रबंध कठिन हो गया। भारत की विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधि अगस्त, 1990 के 3.1 बिलयन यू एस डॉलर से तेजी से घटकर 12 जुलाई, 1991 में 975 मिलियन यू एस डॉलर रह गई (हमारी वर्तमान विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि 27 जनवरी, 2006 के अनुसार 139.2 बिलयन यू. एस. डॉलर थी)। विदेशों को सोना भेजने, गैर-जरूरी आयात को कम करने, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा बहु-पक्षीय (और) द्वि-पक्षीय स्रोतों से संपर्क करने, स्थिरीकरण और ढाँचागत सुधार लाने के अतिरिक्त 1 जुलाई और 3 जुलाई, 1991 को रुपये में दो चरणों में 18-19 प्रतिशत का अवमूल्यन किया गया। मार्च, 1992 में दुहरे विनिमय दरों वाला उदारवादी विनिमय दर प्रबंधन व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था के तहत विनिमय आय का 40 प्रतिशत रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित दर से सुपुर्द करना पड़ता था और 60 प्रतिशत का परिवर्तन बाज़ार द्वारा निर्धारित दर पर होता था। दुहरे दरों को 1 मार्च, 1993 को बदल दिया गया और चालू खाते की परिवर्तनीयता की ओर महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए। अंतिम रूप से इसकी उपलब्धि 1994 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष समझौता के अनुच्छेद VIII को स्वीकार कर लेने के बाद मिली। इस प्रकार, रुपये की विनिमय दर बाज़ार के द्वारा निर्धारित होती है और अपने क्रय और विक्रय द्वारा रिज़र्व बैंक विदेशी मुद्रा बाज़ार में स्थिति को विनियमित रखता है।

अभ्यास

1. संतुलित व्यापार शेष और चालू खाता संतुलन में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. आधिकारिक आरक्षित निधि का लेन-देन क्या है? अदायगी-संतुलन में इनके महत्त्व का वर्णन कीजिए।
3. मौद्रिक विनिमय दर और वास्तविक विनिमय दर में भेद कीजिए। यदि आपको घरेलू वस्तु अथवा विदेशी वस्तुओं के बीच किसी को खरीदने का निर्णय करना हो, तो कौन-सी दर अधिक प्रासंगिक होगी?
4. यदि 1 रुपया की कीमत 1.25 येन है और जापान में कीमत स्तर 3 हो तथा भारत में 1.2 हो, तो भारत और जापान के बीच वास्तविक विनिमय दर की गणना कीजिए (जापानी वस्तु की कीमत भारतीय वस्तु के संदर्भ में)। संकेत : रुपये में येन की कीमत के रूप में मौद्रिक विनिमय दर को पहले ज्ञात कीजिए।
5. स्वचालित युक्ति की व्याख्या कीजिए जिसके द्वारा स्वर्णमान के अंतर्गत अदायगी-संतुलन प्राप्त किया जाता था।
6. नम्य विनिमय दर व्यवस्था में विनिमय दर का निर्धारण कैसे होता है?
7. अवमूल्यन और मूल्यह्रास में अंतर स्पष्ट कीजिए।
8. क्या केंद्रीय बैंक प्रबंधित तिरती व्यवस्था में हस्तक्षेप करेगा? व्याख्या कीजिए।
9. क्या देशी वस्तुओं की माँग और वस्तुओं की देशीय माँग की संकल्पनाएँ एक समान है?
10. जब $M = 60 + 0.06Y$ हो, तो आयात की सीमांत प्रवृति क्या होगी? आयात की सीमांत प्रवृति और समस्त माँग फलन में क्या संबंध है?

© NCERT not to be republished

11. खुली अर्थव्यवस्था स्वायत्त व्यय खर्च गुणक बंद अर्थव्यवस्था के गुणक की तुलना में छोटा क्यों होता है?

12. पाठ में इकमुश्त कर की कल्पना के स्थान पर आनुपातिक कर $T = tY$ के साथ खुली अर्थव्यवस्था गुणक की गणना कीजिए।

13. मान लीजिए $C = 40 + 0.8YD$, $T = 50$, $I = 60$, $G = 40$, $X = 90$, $M = 50 + 0.05Y$ (a) संतुलन आय ज्ञात कीजिए (b) संतुलन आय पर निवल निर्यात संतुलन ज्ञात कीजिए (c) संतुलन आय और निवल निर्यात संतुलन क्या होता है, जब सरकार के क्रय में 40 से 50 की वृद्धि होती है।

14. उपर्युक्त उदाहरण में यदि निर्यात में $X = 100$ का परिवर्तन हो, तो संतुलन आय और निवल निर्यात संतुलन में परिवर्तन ज्ञात कीजिए।

15. व्याख्या कीजिए कि $G - T = (S^g - I) - (X - M)$।

16. यदि देश B से देश A में मुद्रास्फीति ऊँची हो और दोनों देशों में विनिमय दर स्थिर हो, तो दोनों देशों के व्यापार शेष का क्या होगा?

17. क्या चालू पूँजीगत घाटा खतरे का संकेत होगा? व्याख्या कीजिए।

18. मान लीजिए $C = 100 + 0.75YD$, $I = 500$, $G = 750$, कर आय का 20 प्रतिशत है, $X = 150$, $M = 100 + 0.2Y$, तो संतुलन आय, बजट घाटा अथवा आधिक्य और व्यापार घाटा अथवा आधिक्य की गणना कीजिए।

19. उन विनिमय दर व्यवस्थाओं की चर्चा कीजिए, जिन्हें कुछ देशों ने अपने बाह्य खाते में स्थायित्व लाने के लिए किया है।

सुझावात्मक पठन

डोर्नवुश, आर, और एस फिशर 1994, *माइक्रोइकोनॉमिक्स,* छठा संस्करण, मैक्ग्राहिल, पेरिस।

आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, 2016-17।

क्रुगमैन, पी. आर. और ओत्सफेल्ड, एम. 2000, *इंटरनेशनल इकोनॉमिक्स थ्योरी एंड पॉलिसी,* पाँचवा संस्करण, पियर्सन एजुकेशन।

© NCERT not to be republished

परिशिष्ट 6.1

खुली अर्थव्यवस्था में आय का निर्धारण

उपभोक्ता एवं फर्मों को घरेलू उत्पादित वस्तुओं और विदेशी वस्तुओं का क्रय करने का विकल्प होता है, इसीलिए देशी वस्तुओं की घरेलू माँग और घरेलू वस्तुओं की माँग के बीच अंतर की आवश्यकता होती है।

खुली अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय का तादात्म्य

बंद अर्थव्यवस्था में घरेलू वस्तुओं की माँग के तीन स्रोत हैं–उपभोग (C), सरकारी खर्च (G), घरेलू निवेश (I)। इसे इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$Y = C + I + G \tag{6.1}$$

खुली अर्थव्यवस्था में निर्यात *(X)* से घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की माँग के अतिरिक्त स्रोत की रचना होती है, जो विदेशों से आता है और इसलिए इसे समस्त माँग में जोड़ा जाना चाहिए। घरेलू बाज़ारों में आयात से पूरक पूर्ति होती है और इससे घरेलू माँग के उस भाग की रचना होती है, जिससे विदेशी वस्तुओं और सेवाओं की माँग पर असर होता है। अतः राष्ट्रीय आय, एक खुली अर्थव्यवस्था में तादात्म्य है:

$$Y + M = C + I + G + X \tag{6.2}$$

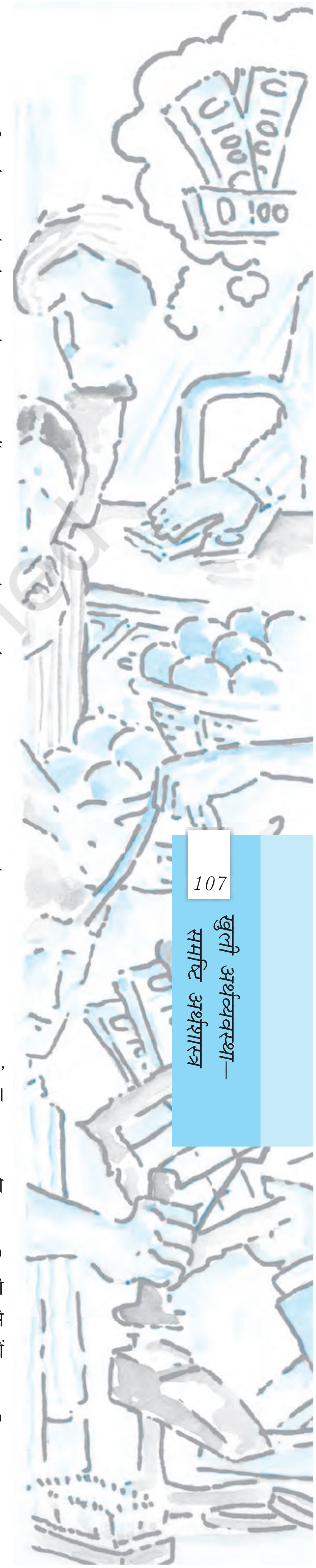

पुनर्गठन करने पर

$$Y = C + I + G + X - M \tag{6.3}$$

या,

$$Y = C + I + G + NX \tag{6.4}$$

जहाँ *NX* **निवल निर्यात** (निर्यात-आयात) है। एक धनात्मक निवल निर्यात (निर्यात, आयात से ज़्यादा) से व्यापार अधिशेष और ऋणात्मक निवल निर्यात (आयात, निर्यात से ज़्यादा) से व्यापार घाटा सूचित होता है।

किसी खुली अर्थव्यवस्था में साम्य आय के निर्धारण में आयात और निर्यात की भूमिका की जाँच करने के लिए हम उसी प्रक्रिया को अपनाते हैं, जिस प्रक्रिया का प्रयोग हमने बंद अर्थव्यवस्था के मामले में किया। अर्थात् हम निवेश और सरकार के स्वायत्त व्यय को लेते हैं। इसके अतिरिक्त हमें आयात और निर्यात के निर्धारकों को भी स्पष्ट करने की आवश्कता होती है। आयात की माँग घरेलू आय (Y) और वास्तविक विनिमय दर (R) पर निर्भर करती है। उच्च आय होने पर अधिक आयात किया जाता है। वास्तविक विनिमय दर को घरेलू वस्तु के रूप में विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमत के रूप में परिभाषित किया जाता है। उच्च विनिमय दर से विदेशी वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक महँगी हो जाती हैं और इस प्रकार आयात की मात्रा में कमी आती है। अत: आय (Y) का आयात पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है और वास्तविक विनिमय दर (R) का ऋणात्मक। परिभाषा से एक देश का निर्यात दूसरे देश का आयात होता है। इस प्रकार, हमारे निर्यात से विदेशी आयात की रचना होती है। यह विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर पर निर्भर करेगा। विदेशी आय में वृद्धि से हमारी वस्तुओं की विदेशी माँग में वृद्धि होगी, जिससे अधिक निर्यात होगा। विनिमय दर (R) में वृद्धि से घरेलू वस्तु सस्ती होगी और हमारे निर्यात में वद्धि होगी। विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर का निर्यात पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, निर्यात और आयात घरेलू आय, विदेशी आय और वास्तविक विनिमय दर पर निर्भर करते हैं। हम कल्पना करते हैं कि कीमत स्तर और मौद्रिक विनिमय दर स्थिर है, तो वास्तविक विनिमय दर भी स्थिर होगी। हमारे देश के मामले में विदेशी आय और इसलिए निर्यात को बहिर्जात ($X = \bar{X}$) समझा जाता है। इस प्रकार आयात की माँग आय पर निर्भर मानी जाती है और इसका एक स्वायत्त घटक होता है।

$$M = \bar{M} + mY \text{ जहाँ } \bar{M} > 0 \text{ स्वायत्त घटक है } 0 < m < 1। \tag{6.5}$$

यहाँ m आयात की सीमांत प्रवृत्ति है। आय का एक अतिरिक्त रुपया आयात पर खर्च करने से प्राप्त अनुपात है। यह सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के सादृश्य होता है।

साम्य आय इस प्रकार होगा–

$$Y = \bar{C} + c(Y - T) + \bar{I} + \bar{G} + \bar{X} - \bar{M} - mY \tag{6.6}$$

स्वायत्त घटकों को $\bar{A}$ के रूप में एक साथ लेने पर प्राप्त होता है,

$$Y = \bar{A} + cY - mY \tag{6.7}$$

या,

$$(1 - c + m)Y = \bar{A} \tag{6.8}$$

या,

$$Y^* = \frac{1}{1-c+m}\bar{A} \tag{6.9}$$

आय व्यय ढाँचे में विदेशी व्यापार की अनुमति के प्रभाव की परीक्षा करने के क्रम में हमें बंद अर्थव्यवस्था के मॉडल में साम्य आय के लिए समतुल्य अभिव्यक्ति के समीकरण (6.10) की तुलना करनी होगी। दोनों समीकरणों में साम्य आय को दो पदों, स्वायत्त व्यय गुणक और स्वायत्त व्यय स्तरों के गुणनफल के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। हम यह विचार करें कि खुली अर्थव्यवस्था के संदर्भ में इनमें से प्रत्येक में कैसे परिवर्तन होता है।

© NCERT not to be republished

क्योंकि आयात की सीमांत प्रवृत्ति शून्य से अधिक होती है, इसलिए खुली अर्थव्यवस्था में हमें छोटा गुणक प्राप्त होता है। इसे निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है:

$$\text{खुली अर्थव्यवस्था गुणक} = \frac{\Delta Y}{\Delta \bar{A}} = \frac{1}{1-c+m} \qquad (6.10)$$

उदाहरण 6.2

यदि $c = 0.8$ और $m = 0.3$, तो बंद और खुली अर्थव्यवस्था गुणक क्रमशः इस प्रकार प्राप्त होगा,

$$\frac{1}{1-c} = \frac{1}{1-0.8} = \frac{1}{0.2} = 5 \qquad (6.11)$$

और

$$\frac{1}{1-c+m} = \frac{1}{1-0.8+0.3} = \frac{1}{0.5} = 2 \qquad (6.12)$$

घरेलू स्वायत्त माँग में यदि 100 की वृद्धि हो, तो बंद अर्थव्यवस्था में निर्गत में 500 की वृद्धि होगी जबकि खुली अर्थव्यवस्था में केवल 200 की।

अर्थव्यवस्था को खोलने से स्वायत्त व्यय गुणक के मूल्य में गिरावट की व्याख्या हम गुणक प्रक्रम के अपनी पूर्व चर्चा के आधार पर कर सकते हैं (अध्याय-4)। उदाहरण के लिए, स्वायत्त व्यय में परिवर्तन और सरकारी व्यय में परिवर्तन का आय पर प्रत्यक्ष प्रभाव और उपभोग पर प्रेरित प्रभाव पड़ेगा, जिससे पुन: आय प्रभावित होगी। *सीमांत उपभोग प्रवृत्ति* के शून्य से अधिक होने पर उपभोग पर प्रेरित प्रभाव के अनुपात से *विदेशी वस्तुओं* की माँग का सूचक होगा, न कि घरेलू वस्तुओं की। अत: घरेलू वस्तुओं की माँग तथा घरेलू आय पर प्रेरित प्रभाव कम होगा। आय के प्रति इकाई आयात में वृद्धि से गुणक प्रक्रिया के प्रत्येक चक्र में घरेलू आय के वर्तुल प्रवाह से एक अति632रिक्त लीकेज होता है तथा स्वायत्त व्यय गुणक के मूल्य में कमी होती है।

समीकरण 6.10 में दूसरा पद दर्शाता है कि बंद अर्थव्यवस्था के लिए अवयवों के अतिरिक्त खुली अर्थव्यवस्था के लिए स्वायत्त व्यय में निर्यात का स्तर और आयात का स्वायत्त घटक शामिल होता है।

इस प्रकार, उनके स्तरों में परिवर्तन अतिरिक्त आघात होते हैं, जिससे संतुलित आय में परिवर्तन होते हैं। समीकरण 6.10 से हम $\bar{X}$ और $\bar{M}$ में परिवर्तन के गुणक प्रभाव का आकलन कर सकते हैं।

$$\frac{\Delta Y^*}{\Delta \bar{X}} = \frac{1}{1-c+m} \qquad (6.13)$$

$$\frac{\Delta Y^*}{\Delta \bar{M}} = \frac{-1}{1-c+m} \qquad (6.14)$$

हमारे निर्यात की माँग में वृद्धि से निर्गत के घरेलू उत्पादन की समस्त माँग में वृद्धि होती है और उससे माँग में वृद्धि होगी, साथ ही सरकारी खर्च अथवा निवेश में स्वायत्त वृद्धि होगी। इसके विपरीत, आयात माँग स्वायत्त रूप से बढ़ने के कारण घरेलू निर्गत की माँग गिरेगी और इससे संतुलन आय में भी गिरावट होगी।

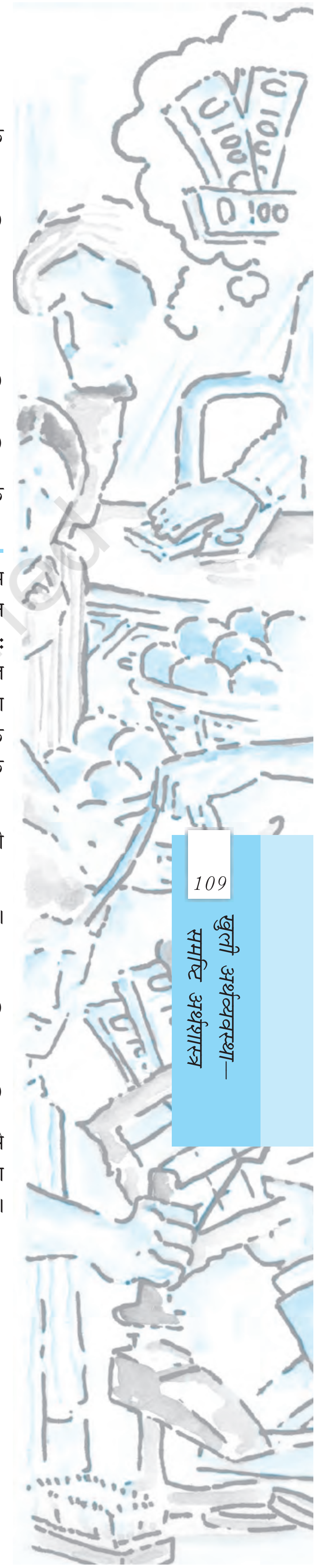

© NCERT not to be republished